छायावाद का छंदोऽनुशीलन

डॉ० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र'
एम० ए० (त्रितय), डी० लिट्०

शब्दपीठ
आनन्द भवन के सामने, इलाहाबाद—२११००२

प्रकाशक
शब्दपीठ
आनन्द भवन के सामने
कर्नलगंज, इलाहाबाद—२११००२

•

मुद्रक
विशाल प्रिंटर्स
५५० के० एल०, कीटगंज
इलाहाबाद—२११००३

•

आवरण
सत्यसेवक मुकर्जी

•

प्रथम संस्करण
१९७० ईसवी

•

मूल्य : पचहत्तर रुपये

छायावाद के प्रवर आलोचक

डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह, एम० ए०, डी० लिट्०

को

जिनकी सतत प्रेरणा से

छायावाद का छंदोऽनुशीलन

सहज संभव हो सका

सप्रेम समर्पित

भूमिका

अपने शोध प्रबंध 'सूर-साहित्य का छन्दःशास्त्रीय अध्ययन' में सूरदास-द्वारा प्रयुक्त समस्त छन्दों की गणना कर लेने के अनंतर यह जानने की अभिलाषा हुई कि हिन्दी के अन्य प्रतिनिधि कवियों ने अपने साहित्य की सृष्टि कितने छन्दों में की है तथा संपूर्ण हिन्दी-साहित्य में कितने छन्दों का प्रयोग हुआ है ? इसी अभिलाषा की तृप्ति में दो ग्रंथों—'हिन्दी साहित्य का छन्दोविवेचन' और 'छायावाद का छन्दोऽनुशीलन'—का प्रणयन हुआ। प्रथम ग्रंथ का प्रथम अध्याय तो मात्र अपभ्रंश काव्य से गृहीत हिन्दी-छन्दों की पूर्व-परंपरा को दिखलाने के लिए लिखा गया; पर शेष अध्यायों में प्रत्येक युग एवं काव्य-धारा के प्रतिनिधि कवियों के छन्दोनिरूपण-द्वारा हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त छन्दों की गणना करने का प्रयास किया गया। क्योंकि प्रायः एक युग में उन्हीं छन्दों का विशेषतः प्रयोग होता रहा है, जो उस युग के प्रतिनिधि कवि ने अपने साहित्य में प्रयुक्त किए हैं। कबीर ने अपने पदों में जिन छन्दों का व्यवहार किया है, उन्हीं को हम प्रायः सभी संत कवियों में (एक सुन्दरदास को छोड़कर, जिन्होंने कवित्त और सवैये को अपने भावों का वाहक बनाया है) पाते हैं। सूरदास-द्वारा प्रयुक्त छंदों में ही सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी वाणी को प्रवाहित किया है। तुलसीदास की 'गीतावली' और 'श्रीकृष्णगीतावली' के पदों में भी वे ही छंद मिलते है, जिनका प्रयोग 'सूरसागर' में हुआ है। अपभ्रंश की कड़वक-बद्ध शैली में रचित 'पद्मावत' में जिस प्रकार चौपाइयाँ और दोहे उपलब्ध होते हैं; उसी प्रकार तुलसी के 'रामचरितमानस', सबलसिंह चौहान के 'महाभारत', ब्रजवासीदास के 'ब्रजविलास' आदि प्राचीन ग्रंथों में तथा आधुनिक युग में द्वारका प्रसाद मिश्र के 'कृष्णायन' में भी प्राप्त होते हैं। अवश्य तुलसीदास ने 'मानस' में कतिपय और छंदों का भी विनियोग किया है। रीतिकाल के प्रायः सभी रीतिकवियों ने अपने काव्यों की रचना मुख्यतः कवित्त और सवैये में की है। केशवदास ने कवित्त-सवैया-निबद्ध 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' के अतिरिक्त 'रामचंद्रिका' और 'विज्ञानगीता' की भी रचना की है, जिनमें अनेक हिन्दी-संस्कृत के छंद प्रयुक्त हुए हैं; और जो छंदोदृष्टि से

'पृथ्वीराजरासो' जैसे बहुछंदी काव्य की परंपरा में रखे जा सकते हैं। अतः रीतिकाल के अंतर्गत लिखित अन्य बहुछंदी काव्यों (गुमान मिश्र का 'नैषध-काव्य', सूदन का 'सुजानचरित' आदि) को ध्यान में रखते हुए रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में केशव के साहित्य का छंदोनिरूपण किया गया। भारतेंदु-युग के प्रत्येक कवि ने प्रायः उन्हीं छंदों को ग्रहण किया है, जो भारतेंदु-द्वारा प्रयुक्त हुए है। द्विवेदी-युग के कवियो के छंद, दो-चार को छोड़कर, उस युग के दो प्रतिनिधि कवियो—हरिऔध और मैथिलीशरण-द्वारा प्रयुक्त छंदों की परिधि से बाहर नहीं। इस प्रकार प्रथम ग्रंथ में प्रत्येक युग के प्रतिनिधि कवि-कवियों के छंदोनिरूपण-द्वारा द्विवेदी-युग तक के हिन्दी साहित्य के छंदों की गणना का प्रयास किया गया है। इस बात पर ध्यान नहीं देकर इस ग्रंथ में अमीर खुसरो, नंददास, भूषण, पद्माकर, रत्नाकर आदि प्रसिद्ध कवियों का छंदोनिरूपण नहीं देखकर कोई विद्वान् सहसा चौंक पड़े, और ग्रंथ के नामकरण की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। ऐसे विद्वान् को यह देखना चाहिए कि इस ग्रन्थ मे हिन्दी के प्रत्येक कवि के छन्दोनिरूपण का नहीं, हिन्दी साहित्य के छंदोनिरूपण का प्रयास किया गया है। वे विद्वान् यदि ग्रन्थ की भूमिका पढ़ने का कष्ट उठाते, तो तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता। पर आजकल पढ़कर आलोचना थोडे ही की जाती है! अमीर खुसरो, नन्ददास, पद्माकर तथा रत्नाकर मे कौन ऐसा छंद है, जिसका प्रयोग ग्रन्थ के विवेचित कवियों ने नहीं किया। यदि इन कवियों में वैसे कतिपय नूतन छंद मिलते, तो केशवदास की तरह इनका भी पृथक् रूप से विवेचन होता। भूषण में अवश्य कुंडलिया का एक अन्य रूप मिलता है, जो अमृतध्वनि छंद कहा जाता है और जिसका प्रयोग विवेचित कवियों में प्राप्त नहीं होता। पर छंद की विविधता के अभाव मे मात्र एक नूतन प्रयोग के निमित्त भूषण के छन्दोविवेचन की आवश्यकता नहीं समझी गई।

द्विवेदीयुगीन कविता निरंतर छन्द के राजमार्ग पर चलती रही। वह उससे कभी हटी नहीं। छायावादी काव्यधारा उस मार्ग पर अग्रसर तो होती रही, पर उसने अपने लिए कुछ नूतन पगडंडियाँ भी ढूँढ़ निकालीं। इन पगडंडियों की खोज में वह कभी-कभी राजमार्ग से हट भी गई है। इसी राजमार्ग के परित्याग और पगडंडियों के ग्रहण में छायावाद की छन्दःक्रांति देखी जा सकती है। छायावाद के छन्दोविवेचन में छन्दःक्रांति के स्वरूप का दिग्दर्शन कराना था तथा हिन्दी साहित्य के सभी छन्दों की गणना के लिए छायावादेतर कविय

के नूतन प्रयोगों पर भी प्रकाश डालना था। अतः पुस्तक की कलेवर-वृद्धि को ध्यान में रखते हुए 'हिन्दी-साहित्य के छंदोविवेचन' में समाविष्ट नहीं कर इसे एक पृथक् पुस्तक का रूप दिया गया। इस प्रकार 'छायावाद का छंदोऽनुशीलन' 'हिन्दी साहित्य का छन्दोविवेचन' का द्वितीय भाग माना जा सकता है।

इस ग्रन्थ में मुख्यतः छायावाद के चार स्तम्भ—प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी—के छन्दों का विवेचन किया गया है। प्रसाद पहले द्विवेदीयुगीन थे, फिर छायावादी हुए। निराला और पंत छायावादी से प्रगतिवादी और फिर क्या-क्या हो गए। अवश्य महादेवी प्रारंभ से अंत तक छायावादी बनी रहीं। इस प्रकार प्रथम-तीन कवियों में हम एक से अधिक काव्यधाराओं को पाते हैं। मैंने इनके छन्दों के विवेचन को छायावादी काव्य-धारा तक ही सीमित नहीं रखा है, वरन् इनके समस्त साहित्य को अपना प्रतिपाद्य बनाया है। इन चार कवियों के अतिरिक्त इस ग्रंथ में छायावादेतर कहे जा सकने वाले कवियों के उन नूतन प्रयोगों का भी विवेचन किया गया है, जो उक्त चार कवियों में नहीं मिलते। इस प्रकार यहाँ छायावाद शब्द एक विशेष काव्य-धारा के लिए प्रयुक्त नहीं होकर, एक युग-विशेष के निमित्त प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः वह युग आंशिक रूप से द्विवेदी-काल से (प्रसाद के प्रारंभिक काव्य से) प्रारम्भ होकर छायावाद-प्रगतिवाद से गुजरता हुआ प्रयोगवादी कविता के पूर्व तक चला जाता है। ऐसा इसलिए हुआ कि प्रगतिवाद का छायावाद से विरोध काव्य-वस्तु को लेकर था, छन्द को लेकर नहीं। छायावादी कवियों की छायावादेतर कविता में कुछ ऐसे छन्द भी मिलते हैं, जिनका प्रयोग उन्होंने छायाकाव्य में नहीं किया था। अतः उनके समस्त ग्रन्थों में प्रयुक्त सभी छन्दों के सांगोपांग विवेचन के निमित्त छायावाद शब्द का प्रयोग एक युग-विशेष के लिए हो गया। और हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त सारे छन्दों की गणना के लिए छायावादेतर कवियों के नूतन प्रयोग भी समाविष्ट हो गए।

छायावाद-प्रगतिवाद के अनन्तर जिस काव्यधारा का आविर्भाव हिन्दी साहित्य में हुआ, वह प्रयोगवाद की धारा कही जाती है। समस्त हिन्दी साहित्य के सारे छन्दों की गणना हेतु इस काव्यधारा के छन्दों का अनुशीलन भी अभीष्ट था। पर इसके कवि राजमार्ग का बिलकुल परित्याग कर पगडंडियों की नूतनता के भूलभुलैए में ऐसे पड़ गये कि उनकी कविता से छंद एकदम

लुप्त हो गया। इलियट के स्वतंत्र छन्द (Free Verse) के अंधानुगामी इन कवियों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि अंग्रेजी और हिन्दी छन्दों की अंतरात्मा भिन्न है, दोनों भाषाओं का वाक्य-संगठन भी एक समान नहीं। अतः जहाँ अंग्रेजी का पद्य गद्य के पास पहुँचकर भी पद्य बना रह सकता है, वहाँ हिन्दी का पद्य गद्य तक घसीट लाने के प्रयास में अपनी पद्यात्मकता खो देता है। इसीलिए जहाँ इलियट की छोटी-बड़ी सभी पंक्तियों में एक लय अनुस्यूत है, वहाँ इन तथाकथित प्रयोगवादियों की कविता लय-विहीन हो गई है। जब लय ही नहीं है, तो फिर छन्द की खोज क्या की जाय? अतः कहा जायगा कि ये कवि जो कुछ लिखते है, वह गद्य है। वह पद्य नहीं; अतः उसमें छन्द की तलाश बेकार है। अवश्य इस काव्यधारा में कोई एकाध रचना या कोई दो-एक पंक्ति ऐसी मिल जाती है, जिसमें लय की प्रतीति होती है। ऐसी लय-युक्त पंक्तियाँ निराला-द्वारा उद्‌भावित स्वच्छन्द अथवा मुक्त छन्द की कोटि में सहज आ जाती हैं। उदाहरण के रूप में धर्मवीर 'भारती' का 'अंधायुग' लिया जा सकता है; जिसकी कुछ पंक्तियाँ तो राधिका छन्द में निबद्ध हैं, और अधिकांश छोटी-बड़ी पंक्तियाँ जिस रूप में लिखी गई हैं, वे किसी प्रकार 'निराला' के मुक्त छन्द के अंतर्गत आ जाती हैं। पर ऐसी बात सभी प्रयोगवादी कविता के साथ नहीं। ऐसी स्थिति में इस कविता का छन्दो-निरूपण क्या होगा? जहाँ लय नही, वहाँ छन्द नहीं। जहाँ किंचित् है, वहाँ वह स्वच्छन्द अथवा मुक्त छन्द के अंतर्गत है। इस प्रकार लय के अभाव में—किसी नूतन छन्द के अभाव में इस काव्य-धारा का विवेचन छोड़ दिया गया। कतिपय विद्वानों को इस गद्य-रचना में भी एक लय मिलती है। संसार के सारे व्यापार लयात्मक हैं। समुद्र के गर्जन में, निर्झर के प्रपात में, तरंगों के आवर्तन-प्रत्यावर्तन में, पत्रों के मर्मर में तथा विहंगों के कलकूजन में भी योगी के कान संगीत-स्वर को सुन लेते है। फिर कैसे कहा जाय कि गद्य में लय नहीं है। पर पद्य और गद्य में जो अंतर है, वह इसी लयात्मकता को लेकर है। पद्य में स्वरों का नियमित-क्रमबद्ध आरोह-अवरोह का जो नैरन्तर्य है, वही लय को जन्म देता है और यह लय पद्य की विशेषता है। उसी में यह लय रह सकती है, गद्य में नहीं। क्योंकि गद्य में स्वरों का विन्यास नियमित एवं क्रमबद्ध नहीं रहता।

इस ग्रंथ का लेखन प्रसाद से प्रारम्भ हुआ, क्योंकि उनमें छंदों का विशेष वैचित्र्य नहीं मिलता। 'झरना' की कुछ कविताओं के अतिरिक्त प्रायः उनकी

समस्त रचनाएँ छन्द के राजमार्ग पर ही चली हैं। महादेवी के साथ भी प्रायः वही बात है। अवश्य उनका छन्दःप्रयोग गीत-शैली में ('नीहार' तथा 'रश्मि' के अतिरिक्त) हुआ है। इन दोनों कवियों ने नए छंदों की उद्भावना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसी समानता के कारण प्रसाद के बाद महादेवी के छन्दों का विवेचन किया गया। निराला ने सब से अधिक छन्द-बंध को तोड़ा है। साथ ही नये छन्दों की उद्भावना भी की है। अतः उन दोनों के बाद निराला के छन्दों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। निराला के छन्दों के अध्ययन के बाद पन्त का छन्दोऽनुशीलन बहुत कुछ सरल हो गया। अवश्य कुछ छंद पंत में ऐसे मिले, जो निराला में अनुपलब्ध हैं। इन सब के अध्ययन के उपरांत छन्दःक्रांति का जो स्वरूप प्रोद्भासित हो उठा; वह 'छायावाद की छन्दःक्रांति' के रूप में प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद छायावाद-चतुष्टय के अतिरिक्त अन्यान्य कवियों के नूतन प्रयोगों का विवेचन कुछ दूर तक कर चुका था कि अचानक मैं ज्वराक्रांत हो गया। मेरे जीवन की आशा बहुत क्षीण हो गई और मैं अस्पताल में भर्त्ती किया गया। हिन्दी साहित्य को मेरे द्वारा यह ग्रन्थ मिलना था। अतः मै छह दिनों के पश्चात् यम के दरवाजे से लौटकर घर आया। पर कमजोरी इतनी थी कि तीन-चार मास तक मैं पढ़ने-लिखने में समर्थ नहीं हो सका। परन्तु जिस क्रम से शरीर साथ नहीं देता था, उसी क्रम से मन भी नहीं मानता था। निदान किसी तरह अन्तिम अध्याय की पूर्त्ति में मैं लग गया। मेरे पुत्र चि० जय प्रकाश मिश्र, बी० एस-सी० ने भागलपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय से उन सारी पुस्तकों को, जो वहाँ उपलब्ध हो सकीं, प्रस्तुत कर इस कार्य में मेरी बड़ी सहायता की। इस सहायता के बिना अंतिम अध्याय का लिखा जाना संभव नहीं था। इस प्रकार इस ग्रन्थ का लेखन-कार्य नवम्बर '७३ से प्रारम्भ होकर, बहुत समय के बाद ४ अप्रैल '७६ को (विश्वविद्यालय मे सेवा निवृत्त होने के पूर्व) समाप्त हुआ। और संपूर्ण हिन्दी साहित्य ३७५ छन्दों में (मात्रिक २४१, वर्णिक १३४) निबद्ध है, यह जानकर चित्त की उत्कट अभिलाषा भी पूरी हुई। इन छन्दों में ३७१ (उन छन्दों को छोड़कर जो केवल अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं) तो उक्त दोनों पुस्तकों में वर्त्तमान हैं। शेष चार में एक (अमृतध्वनि) भूषण-द्वारा और तीन (चंचरीकावलि, मेघविस्फूर्जिता, चकोर सवैया) लाला भगवान 'दीन' द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार और भी कतिपय छन्द हो सकते हैं, जिन पर मेरी दृष्टि नहीं पड़ सकी हो। आधुनिक काल के कुछ

कवियों की दो-एक पुस्तकों के नहीं मिलने का मुझे हार्दिक दुःख है। संभव है, उन पुस्तकों में कोई नया छन्द मिल जाता। इससे यह दावा तो कदापि नहीं किया जा सकता कि संपूर्ण हिन्दी साहित्य में बस इतने ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। दो-चार-दस इससे अधिक भी हो सकते हैं, पर कम नहीं; यह निश्चित है।

यद्यपि यह ग्रंथ आज से चार वर्ष पूर्व लिखा गया था, पर इसका प्रकाशन, प्रकाशकों की उदासीनता के कारण, आज हो रहा है। इसके लिए परिमल प्रकाशन के अध्यक्ष श्री शिवकुमार सहाय जी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इसे प्रकाश में लाने का अपूर्व उत्साह दिखलाया है। इस ग्रंथ के प्रणयन में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उनके लेखकों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। स्वास्थ्य के अननुकूल रहने पर भी इस ग्रन्थ-लेखन में मैंने जो अथक परिश्रम किया है, उसे मैं सफल समझूँगा; यदि इससे पाठकों की छायावादी काव्य की छन्दोविषयक जिज्ञासा का कुछ दूर तक भी समाधान हो सका। अस्तु।

नन्दन
भीखनपुर, भागलपुर
(विहार)
१५ अगस्त १९८०

श्री गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'

विषय-सूची

छायावाद की छंदःक्रांति

'छंदों के क्षेत्र में सबसे बड़ी क्रांति छायावाद-युग में हुई।'
—दिनकर (मिट्टी की ओर)

द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न छायावाद ने जहाँ भाषा, भाव तथा अभिव्यंजना के क्षेत्रों में उथल-पुथल मचा दी, वहाँ छंद के क्षेत्र में भी कम क्रांति नहीं की। पर जहाँ भाव, भाषा और अभिव्यंजना में किए गए छायावादी प्रयोगों के विवेचन में विद्वानों ने बड़े-बड़े ग्रंथ लिख डाले, वहाँ छंदोविषयक क्रांति के स्वरूप को समझने-समझाने का प्रयास बिलकुल नहीं किया। इस क्रांति को बतलाने के लिए कभी तो मुक्त छंद का नाम ले लिया गया और कभी यह कह दिया गया कि इस युग के कवियों ने कितने ऐसे छंद रचे हैं, जो नवयुग की भावाभिव्यंजना के लिए बहुत समर्थ सिद्ध हुए हैं। मुक्त छंद तथा अभिनव छंदःसृष्टि का उल्लेख क्रांति के विध्वंसात्मक तथा सर्जनात्मक—दोनों पक्षों को अऋजु रूप से संकेतित करते हैं। अब इन दोनों पक्षों को दृष्टि में रखते हुए यह देखने का प्रयास किया जाता है कि छायावाद ने छंद के क्षेत्र में वस्तुतः कितनी क्रांति की है ? राज्य-क्रांति प्रथम-प्रथम ध्वंस का शंखनाद करती आती है, जिससे प्राचीन समस्त कला-कौशल, विलास-वैभव, पुरानी परंपराएँ, धारणाएँ, मान्यताएँ, रूढ़ियाँ आदि ध्वस्त हो जाते हैं; और फिर उन्हीं के खँड़हर पर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं और प्रासादों का निर्माण होता है, तथा नई संस्कृति एवं नवीन सभ्यता के प्रसार में नए-नए विचार और विश्वास जन्म ग्रहण करते हैं। छंद के क्षेत्र में हुई क्रांति के इन दोनों रूपों को हम प्राचीन छंदों एवं उनके नियमों के त्याग तथा नवीन छंदों के निर्माण एवं तत्संबंधी नए तथ्यों के ग्रहण में देख सकते हैं। छायावाद ने इन दोनों पक्षों में क्या काम किया है और उसकी छंदःक्रांति का क्या स्वरूप है ? इस बात को दोनों पक्षों के अंतर्गत दीख पड़ने वाले निम्न तथ्यों की परीक्षा कर हम बहुत दूर तक समझने में समर्थ हो सकते हैं—

(१)	युग-विशेष के प्रचलित छंदों का त्याग ।	विध्वंसात्मक
(२)	यति-नियम का उल्लंघन ।	
(३)	शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय ।	
(४)	शास्त्रनिर्दिष्ट पादांत गुरु-लघु में विपर्यय ।	
(५)	युग विशेष के अप्रचलित एवं उपेक्षित छंदों का ग्रहण ।	सर्जनात्मक
(६)	नूतन छंदों का निर्माण एवं नई अर्थ-यति ।	
(७)	वर्णवृत्त का मात्रिक रूप में प्रयोग ।	
(८)	तुक-योजना के नए ढंग ।	
(९)	तुक के विशिष्ट क्रमायोजन द्वारा अनुच्छेद का निर्माण ।	
(१०)	कई छंदों के मेल से बने प्रगाथ छंद ।	
(११)	नए आकार-प्रकार के गीत ।	
(१२)	भिन्नतुकांतता और पादान्तर प्रवाहिता ।	
(१३)	स्वच्छंद छंद ।	
(१४)	मुक्त छंद ।	

आगे की पंक्तियों में प्रत्येक तत्त्व का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर यह देखने की चेष्टा की जाती है कि अमुक तथ्य कहाँ तक परंपरानुमोदित है और कहाँ तक छायावाद का नूतन प्रयास है ?

१. युग-विशेष के प्रचलित छंदों का त्याग

प्रत्येक युग अपनी परिस्थिति, अपने विचार और अपनी भावधारा के अनुकूल छंदों को ग्रहण करता है। भक्ति-काल आत्म-साधना का युग था। इसीलिए उस काल के संतों तथा भक्तों ने तत्त्व-निरूपण के लिए दोहा जैसे छोटे छंद को अपनाया और अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए आत्मनिष्ठ गेय पद का सहारा लिया, जिसमें सामान्यतः सरसी, सार, मरहट्ठामाधवी, ताटंक, वीर, समानसवैया आदि का व्यवहार होता रहा। जिन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए किसी कथा का आश्रय लिया, उन्होंने अपभ्रंशकालीन कड़वक-बद्ध शैली को अपनाकर चौपाई-दोहों में अपने काव्य की रचना की। जैसे सूफी कवियों के मृगावती, पद्मावत आदि काव्य तथा तुलसी का रामचरितमानस। रीतिकाल राज-प्रसादन का युग था। अतः

आत्मप्रेरणा के अभाव में उस युग में कला-चमत्कार का प्राबल्य रहा। फलस्वरूप उस काल में मुक्तक काव्य की रचना हुई, जिसके लिए कवित्त और सवैया जैसे विस्तृत भाव-भूमि पर संचरण करने वाले छंद अपनाए गए। इस काल के संत तथा भक्त अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए उसी प्रकार पद का सहारा लेते रहे, जैसा भक्ति-काल के संतों ने लिया था। और इस युग के प्रबंधकार—सबल सिंह चौहान, ब्रजवासीदास आदि भी अपने प्रबंध की रचना उसी कड़वक-बद्ध शैली में करते रहे, जैसा उनके पूर्ववर्ती कवि कर चुके थे। भारतेंदु-युग में विषय प्राचीनता के साथ कुछ नूतन भाव और नए विचार भी आए। शृंगारात्मक कवित्त-सवैयों तथा भक्त्यात्मक पदों के अतिरिक्त कुछ मुक्तक प्रबंध भी लिखे गए और नाटकों की भी रचना हुई। फलस्वरूप सरसी, सार, ताटंक आदि छंद भी यदा-कदा अपनाए गए। पर भारतेंदु-युग तक इन छंदों का प्रयोग मुक्तक-प्रबंध में प्रायः कम ही हुआ। ये अधिकतर पदों में ही प्रयुक्त होते रहे। हाँ, संतों तथा भक्तों के द्वारा उपेक्षित रोला और छप्पय का प्रचलन अवश्य अधिक परिमाण में हुआ।

द्विवेदी-युग में भाव और भाषा दोनों क्षेत्रों में क्रांति हुई। शृंगारात्मक तथा भक्त्यात्मक पद्यों के स्थान पर अब अधिकतर मुक्तक प्रबंधों एवं कथात्मक काव्यों की रचना होने लगी। भारतेंदु द्वारा किया गया राष्ट्रीयता का शंखनाद अब उग्र से उग्रतर होने लगा और ब्रजभाषा को पद-च्युत कर काव्य-भाषा के आसन पर खड़ी बोली विराजने लगी। भाव और भाषा की इस क्रांति ने छंद के क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोड़ा। मुक्तक काव्य में कवित्त और सवैये इस काल में भी जीते रहे। पर कथात्मक काव्य के लिए कवियों ने सार, सरसी, ताटंक, वीर, रूपमाला आदि उन छंदों का खुले दिल से स्वागत किया, जो अब तक प्रायः पदों में जीवित चले आ रहे थे। पदों की ओट में पड़े इन छंदों ने भारतेंदु-युग के मुक्तक प्रबन्धों में अपने दर्शन अवश्य दिए थे, पर द्विवेदी-युग के कथात्मक काव्यों में इन्होंने अपने पृथक् अस्तित्व को पूर्णतः उद्घोषित कर दिया। भक्तिकाल के उपेक्षित और भारतेंदु-काल के प्रचलित रोला और छप्पय को भी द्विवेदी-युग ने सम्मान दिया। तुलसी और भारतेंदु के प्रिय छंद हरिगीतिका और उससे बने गीतिका छंद को मैथिलीशरण तथा रामचरित उपाध्याय ने इतना प्रश्रय दिया कि ये दोनों छंद दिवेदी-युग के प्रमुख छंदों में गिने जाने लगे। मध्यकालीन दीनदयाल तथा गिरिधर द्वारा प्रयुक्त कुंडलिया की परंपरा भारतेंदु-युग तक

(भारतेन्दु[१], विनायक राव,[२] अंबिकादत्त व्यास[३]) तो चलती ही रही; द्विवेदी-युग के कुछ कवियों को भी (राय देवीप्रसाद पूर्ण,[४] सैयद अमीर अली 'मीर',[५] मैथिलीशरण[६]) इसने आकर्षित किया। सोरठा (बदरीनाथ भट्ट, मैथिलीशरण) तथा बरवै (मैथिलीशरण; रामचरित उपाध्याय) को भी इस युग ने नही छोड़ा। इस प्रकार द्विवेदी-युग ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए यदि अनेक पूर्ववर्त्ती छंदों को ग्रहण किया; तो कुछ का त्याग भी किया। भारतेंदु-काल तक पदों में निरंतर प्रयुक्त होने वाले उपमान, मुक्तामणि तो एकदम विस्मृत हो गए और झूलना, विजया, हरिप्रिया आदि मात्रिक दंडकों का द्विवेदी-युग ने एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया। अपवाद रूप में वियोगी हरि में विजय[७] और लाला भगवानदीन में हरिप्रिया[८] अवश्य मिल जाती है।

छंद के क्षेत्र में द्विवेदी-युग में सबसे बढ़कर बात यह हुई कि नई काव्य-भाषा के हो जाने के कारण इस काल के कवियों ने नए छंदों की ओर भी दृष्टि दौड़ाना शुरू किया। संस्कृत के संस्कार से अभिसिंचित होने के कारण खड़ी बोली में जहाँ वर्णानुसार उच्चारण होता है, (ब्रजभाषा के समान गुरु का ह्रस्वोच्चारण नहीं होता) वहाँ शब्दों को विकृत करने की उस स्वच्छंदता का भी पूरा अभाव है, जो ब्रजभाषा की सामान्य विशेषता मानी जा सकती है। इसलिए द्विवेदी-युग के कवि जब खड़ी बोली में पद्य-रचना करने को तत्पर हुए, तो संस्कृत के छंद उन्हें विशेष उपयोगी प्रतीत हुए। परिणामस्वरूप चंदबरदाई और केशवदास द्वारा सम्मानित वर्णवृत्तों ने हिन्दी काव्य पर एक बार फिर अपना आधिपत्य जमाया। इस काल के अधिकांश कवियों ने हिन्दी छन्दों के साथ-साथ संस्कृत वर्णवृत्तों में भी रचना की। ऐसे कवियों में

१. भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खंड, सं० ब्रजरत्नदास : सतसई श्रृंगार, पृ० ३२६-३५६।
२. कविता-कौमुदी, भाग २, सं० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० २२।
३. वही, पृ० ७८।
४. वही, पृ० २५१।
५. वही, पृ० २६१।
६. शकुंतला तथा साकेत, पृ २८६।
७. कविता-कौमुदी : अनुराग-वाटिका, पृ० ५७५।
८. दीन ग्रंथावली : प्रथम भाग, सं० रामचंद्र वर्मा आदि, पृ० ६४२।

श्रीधर पाठक,[१] महावीरप्रसाद द्विवेदी,[२] अयोध्या सिंह उपाध्याय,[३] लाला भगवानदीन,[४] राय देवीप्रसाद पूर्ण,[५] कन्हैयालाल पोद्दार,[६] रामचरित उपाध्याय,[७] गिरिधर शर्मा,[८] रूपनारायण पांडेय,[९] रामचंद्र शुक्ल,[१०] लोचनप्रसाद पांडेय,[११] लक्ष्मीधर वाजपेयी,[१२] गोपालशरण सिंह,[१३] वियोगी हरि,[१४] गोविंद दास,[१५] मैथिलीशरण[१६] आदि के नाम लिए जा सकते हैं। हरिऔध ने तो 'प्रियप्रवास' की आद्योपांत रचना संस्कृत वर्णवृत्तों में कर हिन्दी साहित्य में भारी उथल-पुथल मचा दी। प्रियप्रवास केवल भाव के क्षेत्र में ही नहीं, छंद के क्षेत्र में भी अपने युग का एक क्रांतिकारी काव्य रहा। प्रियप्रवास से पूर्व हिन्दी साहित्य में ऐसा एक भी प्रबंध काव्य नहीं, जो आद्योपांत संस्कृत छन्दों में रचित हो और अंत्यानुप्रास से सर्वथा मुक्त हो। आगे चलकर अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' की रचना कर प्रियप्रवास की कड़ी को आगे बढ़ाया।

खड़ी बोली उर्दू-पद्य में पहले बहुत कुछ मँज चुकी थी। भारतेन्दु-युग के कुछ कवियों ने (भारतेन्दु, प्रतापनारायण) उर्दू-रचनाएँ तो कीं ही, जब

१. कविता-कौमुदी—गोपिका-गीत से, पृ० ११६।
२. वही, विचार करने योग्य बातें, कर्त्तव्य पंचदशी से।
३. प्रियप्रवास (संपूर्ण) पारिजात।
४. दीनग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० २३३-२४८, २५८, २६४ आदि।
५. कविता—कौमुदी : मृत्युंजय। कविता-कलाप : रंभा शुक-संवाद।
६. वही, —कोकिल, बंबई का समुद्रतट, मेघदूत का अनुवाद।
७. वही, —विधि विडंबना, पूर्व स्मृति, अंगद और रावण।
८. वही, —पुस्तक प्रेम।
९. वही, —दलित कुसुम।
१०. वही, —शिशिर पथिक, उपदेश।
११. वही, — काल कौतुक, ग्राम गौरव।
१२. वही, —सज्जनों का स्वभाव।
१३. वही, —हृदय की वेदना, विरही।
१४. वही, —शिखरिणी।
१५. वही, —वर्षा, उषा का विवाह।
१६. पत्रावली आदि।

कभी उन्होंने खड़ी बोली में हाथ आजमाया तो उर्दू छंदों (बहरों) को ही ग्रहण किया। अत: अपनी नई भाषा के लिए द्विवेदी-युग के कवि भी उर्दू बहरों की ओर झुक पड़े। श्रीधर पाठक की 'सुसंदेश',[१] अयोध्यासिंह उपाध्याय की 'प्रभु प्रताप'[२] आदि, बालमुकुंद गुप्त की 'उर्दू को उत्तर',[३] भगवानदीन की 'चाँदनी', 'मेंहदी', 'आँख' आदि,[४] सैयद अली मीर की 'दशहरा',[५] रामदास गौड़ की 'मिलिंद पदावली',[६] मन्नन द्विवेदी की 'उद्‌बोधन',[७] बदरीनाथ भट्ट की 'यह स्वार्थ-तम का परदा',[८] तथा माधव शुक्ल की 'वे दिल में आता है उठ खड़े हो·· ' एवं 'कलियुगी साधु'[९] आदि कविताएँ उर्दू बहरों में ही रचित हैं। उर्दू बहरों में यों तो इस काल के अनेक कवियों ने कविताएँ रचीं; पर उन सब में लाला भगवानदीन अग्रगण्य रहे। आद्योपांत उर्दू बहरों में रचित (दो-चार कविताओं को छोड़कर) उनका 'वीर-पंचरत्न', तो लगता है, जैसे उर्दू-पद्य की ही पुस्तक हो। आधुनिक हिन्दी में प्रयुक्त उर्दू की बहरें तीन प्रकार की मानी जा सकती हैं—१. एक प्रकार की बहरें तो वे हैं, जिनकी लय से साम्य रखने वाले छंद हिन्दी-संस्कृत में पहले से ही विद्यमान थे। गीतिका और भुजंगप्रयात से लय-साम्य रखने वाली बहरें इसी कोटि में रक्खी जा सकती हैं। २. दूसरे प्रकार की बहरें वे हैं, जो उर्दू से तो आईं; पर विजात, पीयूषवर्षी, सुमेरु, दिगपाल, सिंधु, विधाता आदि नाम पाकर कुछ कवियों के हाथों में (जैसे मैथिलीशरण, गोपालशरण सिंह आदि) उन्होंने अपना विजातीयपन खो दिया और हिन्दी के छंद हो गए; पर कुछ कवियों में (जैसे हरिऔध, भगवानदीन आदि) अपना जातीय रंग (उर्दूपन) बनाए रक्खा। ३. तीसरे प्रकार की वे बहरें हैं, जो अभी तक हिन्दी में

१. कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० ११९।
२. वही, पृ० १५९।
३. वही, पृ० २०९।
४. वही, पृ० २३२-२३५।
५. वही, पृ० २८९।
६. वही, पृ० ३६६।
७. वही, पृ० ४२४।
८. वही, पृ० ५४०।
९. वही, पृ० ३६९।

घुल-मिल नहीं सकी हैं, यद्यपि उन्हें मिलाने का यत्किंचित् प्रयास हो रहा है।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी-युग में संस्कृत वर्णवृत्तों और उर्दू वहरों का भी काफी वोलबाला रहा।

अब द्विवेदी-युग में प्रयुक्त इन सारे छन्दों के परिप्रेक्ष्य में छायावाद का अध्ययन कर हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि छायावादी कवियों ने अपने पूर्व युग के कितने छंदों को त्याग कर क्रांति का आह्वान किया था। छायावाद के चार स्तम्भों में प्रसाद तो द्विवेदी और छायावाद युग के संगम-स्थल थे। अत: उनके काव्य में द्विवेदी-युग में प्रचलित प्राय: सारे छंद मिल जाते हैं। छंद के क्षेत्र में क्रांति का आह्वान करने वाले वस्तुत: निराला और पंत हैं। द्विवेदी-युग के प्रचलित छंदों में ताटंक और वीर का प्रयोग तो दोनों ने विशद रूप से किया है, पर कवित्त, सवैया, छप्पय (निराला में छप्पय का केवल एक पद्य उपलब्ध होता है), कुंडलिया, दोहा, सोरठा आदि छंदों का पूर्णरूप से वहिष्कार कर दिया है। रोला और सरसी दोनों के काव्यों में मिलते हैं; पर आगे चल कर पंत ने रोला और सार को जो गौरव प्रदान किया, उसका शतांश भी निराला द्वारा इन्हें नहीं मिला। रोला में निवद्ध कुछ कविताएँ निराला में अवश्य मिलती हैं, पर सार का स्वतन्त्र प्रयोग उन्होंने प्राय: नहीं किया। यों तो द्विवेदी-युग में अनेक छंदों का प्रयोग हुआ, पर गीतिका, हरिगीतिका की कुछ विशेष प्रमुखता रही। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न छायावाद के कवि निराला ने पहले इन दोनों छंदों का परित्याग किया; पर जब क्रांति की आँधी का वेग कम हो गया, तो गीतिका-हरिगीतिका के साथ रूपमाला ने भी उनके काव्य में प्रवेश पाया। सवैया निराला में नहीं मिलता, पर मदनहर घनाक्षरी (मनहरण नहीं) के रूप में कवित्त की-सी रचना प्राप्त हो जाती है। द्विवेदी-युग में प्रचलित उर्दू वहरों ने भी उनका दुलार पाया और वाद में उनका वह दुलार इतना वेहद हो गया कि 'वेला' में उर्दू शायरों से हाथ मिलाने को वे तैयार हो गए। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निराला ने क्रांति के अरुणोदय में द्विवेदीकालीन जिन प्रचलित छंदों का परित्याग किया था; उन छंदों में अनेक को धीरे-धीरे वाद में वे प्रश्रय देते चले गए। पंत की दशा निराला से

---

१. द्रष्टव्य—आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना : डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल विहंग, पुराण और बेला छंद, पृ० २६७, २७२, २८५।

बिलकुल भिन्न रही। आगे चल कर उन्होंने रोला और सार को अवश्य बहुत सम्मान दिया। पर द्विवेदी-युग की गीतिका-हरिगीतिका को कभी अपने पास तक फटकने नहीं दिया। यों उनके स्वच्छंद छंद में लिखित सप्तकाधृत छंद की कतिपय पंक्तियाँ अवश्य मिल जाती हैं; पर स्वतन्त्र रूप से पीयूषवर्षी तथा एक कविता मे माधवमालती को छोड़ कर उन्होंने किसी सप्तकाधृत छंद को नही अपनाया। जहाँ निराला ने सप्तकाधृत रूपमाला में कई गीतों की रचना की है, वहाँ पंत-काव्य में उनकी केवल १६-१७ पंक्तियाँ मिलती हैं। उर्दू से आये पीयूषवर्षी छंद को छोड़ कर पंत-काव्य में कोई उर्दू छंद भी प्राप्त नहीं होता। द्विवेदी-युग में प्रचलित वर्णवृत्तों का प्रयोग तो केवल प्रसाद में ही उपलब्ध होता है। निराला, पंत तथा महादेवी ने उनका यत्किंचित् जो प्रयोग किया है, वह मात्रिक रूप में ही। वर्णिक रूप में दो पद्यों में महादेवी ने सवैये का प्रयोग अवश्य किया है। कवित्त, छप्पय, कुंडलिया, दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग तो इन्होंने भी नहीं किया; पर गीतिका, हरिगीतिका, मरहट्ठामाधवी आदि को अपनाए रहीं। उर्दू बहर में तो नहीं, पर उर्दू से आए पीयूषवर्षी के अतिरिक्त विजात और विधाता में भी इन्होंने रचनाएँ कीं। इस प्रकार इनमें भी द्विवेदी-युगीन प्रचलित छंदों के त्याग की प्रवृत्ति उतनी नहीं दिखलाई पड़ती। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि क्रांति का विध्वंसात्मक स्वरूप जितना मुखर पंत में दिखलाई पड़ता है, उतना अन्य छायावादियों में नहीं। यदि निराला क्रांति के सर्जनात्मक पक्ष के उन्नायक हैं, तो पंत विध्वंसात्मक पक्ष के उत्थापक।

२. यति-नियम का उल्लंघन

जयकीर्त्ति[1] तथा कविदर्पणकार[2] के अनुसार यति दो प्रकार की होती है—(क) पादांत यति, और (ख) पादमध्य यति या अन्तर्यति। पादांत यति तो सभी छंदों में (आधुनिक पादांतर प्रवाही छंदों को छोड़कर) होती है। किन्तु अन्तर्यति के लिए विभिन्न छंदों में विभिन्न नियम है। बिना पादांत यति के चरण पूरा नहीं होता। अतः यह सभी आचार्यों को मान्य है। अन्तर्यति पाठ को श्रुति-मधुर बना देती है। इसलिए इसकी सत्ता प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक बराबर पाई जाती है।

---

१. छंदोऽनुशासन १।१०।

२. कविदर्पण १।७।

माडव्य, भरत, काश्यप, सैतव आदि आचार्य[1] अन्तर्यति को नहीं मानते। पर पिंगल आदि संस्कृत के सभी छंदःशास्त्रियों ने छोटे छंदों की अन्तर्यति का निर्देश चाहे न किया हो; किन्तु बड़े छंदों की अन्तर्यति का निर्देश परिभाषा के साथ अवश्य किया है। प्राकृत छंदःशास्त्री विरहांक ने केवल एक जगह अधिकाक्षरा छंद के लक्षण में यति का निर्देश किया है—निर्दिष्टा कविवरैः रवि त्रयोदश विश्रामा।[2] अपभ्रंश छंदःशास्त्री स्वयंभू ने भी एकाध स्थल पर ही यति की चर्चा की है।[3] कविदर्पण में यति का संकेत केवल वर्णवृत्त के प्रकरण में हुआ है।[4] प्रा० पैं० के लक्षण-पद्यों में वर्णिक छंदों में प्रायः यति का संकेत नहीं किया गया है।[5] मात्रिक छंदों में कुछ ही छंद हैं, जिनके लक्षणों में यति-विधान पाया जाता है। हिन्दी के प्राचीन आचार्य केशवदास वर्णिक छंदों में यति का निर्देश नहीं करते। मात्रिक छंदों में भी 'छंदमाला' में तीन ही छंद हैं, जिनमें यति-विधान पाया जाता है। भिखारीदास ने मात्रिक छंदों की यति-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके 'छंदार्णव' में कुछ ही छंदों में यति-व्यवस्था मिलती है। किन्तु, वर्णिक छंदों के लक्षणों में वे यति-स्थान को नहीं भूलते। भानु ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों में यति-व्यवस्था पर बराबर ध्यान रक्खा है।

आचार्य अपने लक्षणों में चाहे यति की व्यवस्था करें या न करें; उनके उदाहरण-पद्यों में यति-व्यवस्था पूर्ण रूप से विद्यमान है। और अपभ्रंश तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के कवियों ने अपनी रचनाओं में इसका ध्यान सदैव रक्खा है। इसका कारण यह है कि अंतर्यति पद्य-पाठ के लिए अत्यन्त आवश्यक है। छोटे छंदों के चरण का पाठ बिना रुके—एक साँस में हो जाता है। पर बड़े छंदों का चरण बिना रुके पढ़ा नहीं जा सकता। उनके चरणों के कुछ अंश पर जिह्वा किंचित् विश्राम कर आगे बढ़ती है। यत्र जिह्वा स्वेच्छया विरमति तत्र यतिरित्यर्थः। निजेच्छया उच्चारयितुरिच्छया।[6]

१. द्रष्टव्य—स्वयंभूच्छंदः १।७१, छंदोऽनुशासनः जयकीर्त्ति १।१३।
२. वृत्त जाति समुच्चय ४।२४।
३. स्वयंभूच्छंदः की टीका : डॉ० वेलंकर, पृ० १८१।
४. कवि-दर्पण की भूमिका, वही, पृ० ७।
५. प्रा० पैं० (भाग ४) डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ० ३१०।
६. छंदोमंजरी : गंगादास १।१२ की टीका।

इसीलिए बड़े छंदों में यति अनिवार्य हो जाती है।

हिन्दी में रीतिकाल के पूर्व संभवत: कोई छंद:शास्त्र रचा नहीं गया। फिर भी भक्तिकाल के कवियों के पद्यों में एक यति-व्यवस्था सदैव-सर्वत्र पाई जाती है। सम्भव है, उन कवियों के सामने अपभ्रंश के छंद:शास्त्र रहे हों। पर उनके कर्त्ताओं की यति विषयक उदासीनता की चर्चा पीछे हो चुकी है। इससे यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि यति छंद का एक आवश्यक अंग है, जिसका अवलम्बन पद्य-पाठ की सुकरता के लिए कवि को अवश्य लेना पड़ता है। रीतिकाल में छंदोग्रंथों का निर्माण अवश्य हुआ; पर उस काल के छंद:-शास्त्रियों ने भी प्रत्येक छंद की यति-व्यवस्था नहीं बतलाई। फिर भी रीति-काल की कविताओं में यति का एक नियम बराबर पाया जाता है। यति की इस व्यवस्था की ओर भारतेंदु-काल के कवियों ने भी बराबर ध्यान दिया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यति-विधान जितना शास्त्रकृत नहीं, उतना स्वयं कवि-द्वारा निर्धारित है। द्विवेदी-युग में जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने अपने छंद:शास्त्र 'छंद:प्रभाकर' की रचना की, जिसमें उन्होंने प्रत्येक छंद की यति का निर्देश किया। अत: इस काल के कवियों की कविताओं में यति-विधान का कठोर पालन होना ही चाहिए। पर यति-भंग एक ऐसा दोष है, जिससे सर्वांशत: कोई कवि बच नहीं सका है। भावावेश के कारण, रचना-सौविध्य के निमित्त, कवि-प्रयत्न-शैथिल्य के परिणामस्वरूप अथवा शब्द-संकट-वश कवि के काव्य में स्थल-विशेष पर यति-भंग दोष हो ही जाता है। भानु ने स्पष्ट रूप से सार और हरिगीतिका दोनों में १६वीं मात्रा पर यति का विधान किया है। पर रामनरेश त्रिपाठी और मैथिलीशरण ने निम्न-लिखित पंक्तियों में—

उसी समय कमनीय एक स्व/र्गीय किरन सी वामा।

× × ×

जाकर चकित हुई तट पर प्रिय/तम दर्शन की प्यासी।

—पथिक

मानस-भवन में आर्यजन जिस/की उतारें आरती।

—भारत भारती

जीवनमयी, सुखदायिनी, प्रा/णाधिके, प्राणप्रिये।

—जयद्रथवध

यति-नियम का स्पष्ट उल्लंघन किया है। अब तो उक्त प्रकार के दोप दोष ही नहीं माने जाते, वे मनोहारी विविधता (Variation) में परिगणित होते हैं।[1] ऐसी पंक्तियों में पाये जाने वाले दोप चाहे मनोहारी विविधता मान लिए जायँ, फिर भी यह इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्राचीनकाल से लेकर आज तक कवियों में यत्र-तत्र यति-भंग दोष से पीड़ित पंक्तियाँ असंदिग्ध रूप से उपलब्ध होती हैं, क्योंकि अनेक पंक्तियाँ मनोहारी विविधता की परिधि से भी बाहर चली जाती हैं।

जब प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के सभी कवि न्यूनाधिक मात्रा में यति-भंग के दोषी हैं; तो फिर छायावाद में इस क्षेत्र में कौन-सी स्वच्छंदता आई, जो छन्दःक्रांति का एक अंग बन गई। पूर्ववर्त्ती कवियों के समान छायावादी कवियों ने भी यति-व्यवस्था पर बराबर ध्यान रक्खा है, और उन्हीं के समान इनके पद्यों में भी यति-दोष से पीड़ित पंक्तियाँ पाई जाती हैं। अन्तर दोनों में प्राप्त होने वाली ऐसी पंक्तियों के परिमाण में है। जहाँ पूर्ववर्त्ती कविताओं में यति-दोप से ग्रस्त पंक्तियाँ यत्र-तत्र—स्थल-विशेष पर मिलती हैं, वहाँ छायावादियों में प्रचुरता से प्राप्त हैं। फिर भी यह कहा जायगा कि पंत की प्राथमिक कृतियों (वीणा, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना) तथा निराला के 'परिमल' और 'गीतिका' में यति-दोष से पीड़ित पंक्तियाँ बहुत कम हैं। महादेवी के संपूर्ण काव्य में ऐसी पंक्तियाँ विरल हैं। आगे चलकर पंत और निराला में ऐसी दोषयुक्त पंक्तियों के लिखने की प्रवृत्ति बढ़ती गई और प्रसाद में प्रायः प्रारंभ से ही (करुणालय, महाराणा का महत्त्व तथा प्रेम-पथिक से ही) यह प्रवृत्ति रही। बाद में यह प्रवृत्ति अवश्य कुछ कम हो गई। ऐसी यति-हीन पंक्तियों की अधिकता के कारण ही यह कहा जा सकता है कि इन कवियों ने यति-नियम के पालन में स्वच्छंदता दिखला कर क्रांति की है। इस स्वच्छंदता का प्रदर्शन भी इन्होंने मुख्यतः तीन-चार छंदों में विशेष रूप से किया है। वे छंद हैं—चांद्रायण-प्लवंगम, हंसगति और रोला।

चांद्रायण और प्लवंगम दोनों २१ मात्राओं के छंद हैं। भानु के अनुसार चांद्रायण में ११वीं और प्लवंगम में ८वीं मात्रा पर यति होती है, और दोनों के अंत में ।ऽ रहता है। दोनों के चरणों के मेल से बने पद्य को तिलोकी

---

१. द्रष्टव्य—आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना, पृ० २०९।

कहते हैं।[1] ये दोनों प्रसाद के प्रिय छंदों में हैं। पर पृथक् रूप से इन दोनों में किसी का प्रयोग उन्होंने नहीं किया। दोनों के चरणों के मेल से बने तिलोकी का प्रयोग उन्होंने 'करुणालय' और 'महाराणा का महत्त्व' में तो किया ही है; 'झरना' और 'कानन-कुसुम' की भी कई कविताएँ इसी छंद में लिखी है। पर तिलोकी में निबद्ध उनकी रचनाओं में कुछ ऐसे चरण भी मिलते हैं, जिनमें न तो चांद्रायण के, और न प्लवंगम के यति-नियम का पालन किया गया है। यथा—

नव तमाल श्यामल नीरद माला भली
श्रावण की राका रजनी में घिर चुकी।
अब उसके कुछ बचे / अंश आकाश में
भूले भटके पथिक / सदृश हैं घूमते।

× ×

मुक्त व्योम में / उड़ते-उड़ते डाल से
कातर अलस पपीहा की वह ध्वनि कभी—
निकल निकल कर / भूल या कि अनजान में,
लगती है खोजने / किसी को प्रेम से।

—झरना (पावस प्रभात)

यहाँ तीसरी, चौथी और आठवीं में चांद्रायण की तथा पाँचवीं-सातवीं में प्लवंगम की यति मानी जा सकती है। शेष पंक्तियाँ यति-विहीन हैं। तिलोकी का प्रयोग 'हरिऔध' ने भी 'वैदेही वनवास' में विशद रूप में किया है और उनके तिलोकी की भी यही दशा है। यथा—

सुन वनवास चतुर्दश-वत्सर का हुए
अल्प भी न उद्विग्न / न म्लान वदन बना।—(११-१०)
तृण समान साम्राज्य / को तजा सुखित हो—(११-१०)
हुए कहाँ ऐसे महनीय-महा-मना।

—वैदेही वनवास (सर्ग १५। ६८)

कहना नहीं होगा कि दोनों कवियों के जो चरण यति-विहीन हैं, उनमें वह अप्रतिहत लय नहीं; जो प्लवंगम-चांद्रायण के लिए अपेक्षित है। 'हरिऔध'

---

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ५७-५८।

ने तो यति वाले (२रे, ३रे) में भी शब्द-संस्थापन में त्रुटि कर लय को चौपट कर दिया है।

हंसगति छंद का प्रयोग महादेवी के अतिरिक्त तीनों छायावादियों में पाया जाता है। पर इसका प्रयोग जितने विपुल परिमाण में पंत ने किया है, उतना और किसी ने नहीं। भानु के अनुसार हंसगति में २० मात्राएँ होती हैं और ११वीं मात्रा पर यति होती है। पंत ने भानु की इस यति-व्यवस्था को सर्वत्र नहीं माना है। यथा--

प्राण सलिल में हृदय / कमल पर शोभित, (११-९)
स्वयंप्रभे, सित भाव / रूप, अंतः स्थित, (११-९)
ध्यान मौन तन्मयता / में तुम करती (१२-८)
अर्थोन्मुख अव्यक्त / सत्य स्वर-व्यंजित। (११-९)

--लोकायतन, पृ० ५

यहाँ प्रथम-द्वितीय एवं चतुर्थ पंक्तियों में यति-नियम का पालन किया गया है, तृतीय में नहीं। पर तृतीय में गति का अभाव नहीं है। डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने लिखा है-- '× × पीयूषवर्षी (१९ मात्राएँ) योग (२० मात्राएँ, उनका योग वास्तव में हंसगति है) प्लवंगम (२१ मात्राएँ) आदि छोटे छंद प्रायः बिना अन्तर्यति के प्रवाहित होते हैं।'[1] कहने का तात्पर्य यह है कि छोटे छंदों में यति की विशेष आवश्यकता नहीं होती। पर उनमें मनोवांछित लय लाने के लिए कवि-कौशल की अपेक्षा अवश्य रहती है। प्लवंगम, चांद्रायण तथा हंसगति समप्रवाही छंद हैं। अतः सम के बाद सम और विषम के बाद विषम को रख कर ही हम उस समप्रवाहिकता की रक्षा कर सकते हैं, चाहे ११वीं मात्रा पर यति दें, या १०वीं या १२वीं पर। उपर्युद्धृत पंक्तियों में प्रसाद और पंत ने इस बात पर ध्यान रक्खा है, इसीलिए उनमें गति है। 'हरिऔध' ने नहीं रक्खा। त्रिकल के बाद चौकल और पंचकल रखने के कारण उनकी 'वैदेही वनवास' की उक्त दो यतिनियम-विहित पंक्तियाँ भी गति-शून्य हो गई हैं। तुलसीदास ने भी 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' में हंसगति का प्रयोग पंत के समान ही किया है, इसीलिए उनमें गति-भंग दोष नहीं आ पाया है। यथा--

---

१. आ० हि० का० में छंद-योजना, पृ० २११।

गिरि तरु वेलि सरित सर / विपुल विलोकहिं । (१२-८)
धावहिं बाल सुभाय / विहग मृग रोकहिं । (११-९)
सकुचहिं मुनिहि सभीत / बहुरि फिरि आवहिं । (११-९)
तोरि फूल-फल किसलय / माल बनावहिं । (१२-८)

—जानकी मंगल, पद्य ३३, ३४

यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखें, तो ऐसी १२-८ वाली पंक्तियाँ भानु के मतानुसार यति-भंग दोष से पीड़ित अवश्य कही जायँगी । पर भिखारीदास के अनुसार ऐसी पंक्तियाँ सर्वथा निर्दोष हैं । क्योंकि उन्होंने हंसगति के लक्षण में स्पष्ट कहा है—'बीसै कल बिन नियम हंसगति सोहै ।' और अपने उदाहरण की प्रथम तीन पंक्तियों में यदि ११-९ पर यति दी है, तो चतुर्थ में १२-८ पर ।[1]

रोला के संबंध में पंत ने अपने 'रजतशिखर' की विज्ञप्ति में लिखा है—'नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एवं तेरह-ग्यारह (ग्यारह-तेरह-होना चाहिए) के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ों का रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है ।' अब देखना है कि पंत का ऐसा प्रयास शास्त्रानुमोदित भी है अथवा सर्वथा नूतन है ? प्रा० पैं० में रोला की यति के संबंध में तो कुछ नहीं कहा, पर छप्पय के लक्षण में ११-१३ का स्पष्ट निर्देश किया है—

छप्पअ छंद छइल्ल सुणहु अक्खर संजुत्तउ ।
ए आरह तसु विरह त पुणु तेरह णिब्भंतउ ।[2]

और रोला और छप्पय के लक्षण तथा उदाहरण के पद्यों में केवल रोला के लक्षण के अंतिम दो चरणों को छोड़कर (जिनमें १२-१२ पर यति है) शेष सभी चरणों में ११-१३ पर यति-व्यवस्था का निर्वाह किया है । 'वाणी भूषण' में तो रोला की यति के संबंध में स्पष्ट लिखा है—

एकादशमधिविरतिरखिल जन चित्ताहरणम् ।

कवियों में चंदबरदाई, विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी तथा केशव सब ने (छप्पय और कुंडलिया के अंतर्गत भी) ११-१३ की यति-व्यवस्था रक्खी है । इन कवियों में दाल में नमक के बराबर दो-चार ऐसे चरण भी मिल जाते हैं;

---

१. द्रष्टव्य—छंदार्णव ५।१७२-१७३।
२. प्रा० पैं० १।१०५ ।

जिनमें दस या चौदह पर यति मानी जा सकती है। यथा—

(क) इक नायक कर धरि पिनाक धर भर रज रष्षह।[१] —चंदबरदाई

(ख) उग्रसेन सब लै कुटुंब ता ठौर सिधायौ।[२] —सूरदास

(ग) जय-जयंत जयकर अनंत सज्जन-जन-रंजन।[३] —तुलसीदास

(घ) तरु तालीस ताल तमाल हिंताल मनोहर।[४] —केशवदास

यों तो १२-१२ वाले चरण दो-चार सूरदास में भी मिल जाते हैं; पर नंददास ने 'रासपंचाध्यायी' में ऐसे चरणों का प्रयोग धड़ल्ले से किया। फिर तो भिखारीदास ने रोला को अनियम उद्घोषित कर (अनियम ह्वहै रोला—छंदार्णव ५।२०२) उदाहरण में १२-१२ पर यति रक्खी। पर सूरदास और नंददास के विपरीत १२वीं के बाद चौकल नहीं रख कर (दो त्रिकल रखकर) रोला के निर्झर के-से प्रवाह को कुंठित कर दिया।[५] यों उन्होंने रोला को तो अनियम उद्घोषित कर १२-१२ पर यति रक्खी, पर काव्य, (रोला का भेद) छप्पय और कुंडलिया में ११-१३ पर यति दी।[६] १२-१२ वाली पंक्तियाँ भारतेन्दु में भी मिलती हैं, पर १२वीं मात्रा के बाद चौकल रख कर उन्होंने उन्हें गति-भंग दोष से बचा लिया है। आगे चल कर भानु ने, श्रुति-मधुरता लख कर, फिर ११-१३ पर यति का विधान किया। फिर भी रोला की यति-व्यवस्था पर विद्वान् एकमत नहीं हो सके। कविवर 'रत्नाकर' ने उद्घोषित किया—'रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है, यदि हो तो अच्छी बात है।'[७] द्विवेदी-युग के कवि 'हरिऔध' 'रत्नाकर' से सहमत प्रतीत होते हैं; क्योंकि 'वैदेही वनवास' में प्रयुक्त रोला में अनेक पंक्तियाँ १२-१२ की हैं। उनके समसामयिक मैथिलीशरण ने प्रायः सर्वत्र ११-१३ पर यति रक्खी है। ८+८+८ वाले रोला का किसी शास्त्र

---

१. पृथ्वीराज रासो : सं० डॉ० कृष्णचन्द्र अग्रवाल : पद्मावती समय, पद्य ३।

२. सूरसागर : ना० प्र० स०, काशी, पद ४७८१।

३. कवितावली : उत्तरकांड, पद्य ११३।

४. रामचन्द्रिका : प्रकाश ३, पद्य १।

५. छंदार्णव ५।२०७।

६. वही, ७।३७, ३८, ३९, ४१।

७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८१, पृ० ८१ (आ० हिं० का० में छंद-योजना से उद्धृत)।

में तो उल्लेख नही है; पर अमृतध्वनि छंद में दोहे के बाद रक्खे जाने वाले जो चार चरण तीन अष्टकों में विभाजित होते हैं, वे वस्तुत: रोला के ही चरण हैं। भिखारीदास ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है—

सिंह विलोकिन रीति दै, दोहा पर रोलाहि।
कुंडलिया, उद्धतवरन त्रिजति अमृतधुनि चाहिं।

—छंदार्णव ७।४०

इस प्रकार हम देखते हैं कि रोला का यति-स्थान बड़ा विवादास्पद है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रोला के चरण का निर्माण ८+८+८, १०+१४, ११+१३, १२+१२ और १४+१० सब प्रकार से हो सकता है। इसी बात को दृष्टि में रख कर डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने लिखा है—'राधिका (२२ मा०) रोला (२४ मा०) आदि मध्यवर्ग के छंदों में सुविधानुसार कवि अंतर्यति रख सकता है।'[1] निदान प्रसाद, पंत, निराला आदि का यति-विषयक ऐसा प्रयोग क्रांति की अंगीभूत किसी स्वतंत्रता या नवीनता का द्योतक नही। वह शास्त्रानुसार एवं कवि-जन-अनुमोदित है। हाँ, ऐसे प्रयोग में जो गतिहीनता का दोष आ गया है, वह अवश्य उनकी स्वच्छंदता—उच्छृंखलता का सूचक है।

३. शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय

संस्कृत के आचार्यो ने प्रत्येक छंद को गण-बंधन में इस प्रकार आवद्ध कर दिया है कि वहाँ विपर्यय का कोई प्रश्न ही नही उठता। प्राकृत-अपभ्रंश में जब मात्रिक छंदों का प्रचलन हुआ, तो विरहांक और स्वयंभू ने उनका लक्षण-निर्धारण त्रिकल, चतुष्कल, पंचकल, षष्ठकल आदि के द्वारा किया। यदि विरहांक ने रास छंद का लक्षण इस प्रकार दिया—

प्रथमे गजेंद्र विनियोजितैर्द्वितीय तृतीयक तुरंगमैः।
जानीहि विरमेस्थित कर्णैः सुंदरि रासानां पादैः।[2]

अर्थात् रास के चरण का निर्माण गजेंद्र (चतुर्मात्रिक) तुरंग (चतुर्मात्रिक) तुरंग (चतुर्मात्रिक) और कर्ण (ऽऽ) से होता है; तो स्वयंभू ने महानुभाव को यों परिभाषित किया—

---

१. आ० हि० का० में छंद-योजना, पृ० २११।
२. वृत्त जाति समुच्चय ४।८५ का संस्कृत रूपांतर।

बारहमत्ते पाए। ति च आरा छच्छो वा।
(द्वादश मात्रे पादे । त्रयश्चकाराश्छछौ वा)[1]

अर्थात् द्वादशमात्रापादी महानुभाव में तीन चतुर्मात्रिक गण या दो षष्ठ-मात्रिक गण होते हैं। (च = चतुर्मात्रिक, छ = षष्ठमात्रिक) कविदर्पणकार ने भी इसी प्रणाली को अपनाया है। यथा—

चउ चा टगणो मुत्तावलिया।
चत्वारस्त्रिमात्रा एकश्चतुर्मात्रो मुक्तावलिका।[2]

अर्थात् ४ च (त्रिमात्रा) और १ ट (चतुर्मात्रा) का मुक्तावलिका छंद होता है। इस प्रणाली के अतिरिक्त मात्रा-गणना के आधार पर भी कुछ छंद कवि-दर्पण में परिभाषित किए गए हैं। यथा—

त्रयोदशैकादशभिस्तु दोहक एतस्य समपादयोरन्ते गुरुलघू कुरुः।[3]

अर्थात् १३ और ११ मात्राओं का दोहक होता है, जिसके सम पादों के अन्त में गुरु-लघु रहते हैं।

भिखारीदास ने मात्रिक छंदों के लक्षणों में प्रायः मात्रा-गणना का ही आधार लिया है, और वर्णवृत्तों के लक्षणों में अष्ट गण (मगण, जगण आदि) के अतिरिक्त कर्ण (SS) 'विप्र (।।।।) नन्द (S।) आदि शब्दों का भी उपयोग किया है। भानु ने वर्णवृत्तों के लक्षणोदाहरण की पहली पंक्ति में ही उनका लक्षण बता दिया है, जिसका आधार केवल अष्ट गण है। यथा इंद्रवज्रा का लक्षण—

ताता जगो गोकुलनाथ गावो।

यहाँ ताता जगो गो से स्पष्ट हो जाता है कि इंद्रवज्रा वृत्त त त ज ग ग का होता है। मात्रिक छंदों के लक्षणोदाहरण में उन्होंने भी पारिभाषिक शब्दों (गुण, भुज, शास्त्र, वेद आदि) के सहारे मात्रा-गणना बतलाई है। यथा—

गुणहु भुज शास्त्र वेद गोपी।

---

१. स्वयंभूच्छंदः ६।१२५।
२. कवि दर्पण २।२१।
३. वही, २।१५ का संस्कृत रूपांतर।

अर्थात् गुण ३+भुज २+शास्त्र ६+वेद ४=१५ मात्राओं का गोपी छंद होता है।

इतना लिखने का अभिप्राय यह है कि जहाँ गण-बद्ध होने के कारण अपभ्रंश के लक्षणों के अनुसार पद्य-रचना करने में शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय होना संभव नहीं था; वहाँ हिन्दी के आचार्यों के द्वारा दिये गए केवल मात्रा निर्दिष्ट लक्षणों से उसके होने का भय बना रह गया। चतुर्मात्रिक गणों में जगण (। ऽ ।) कहीं-कहीं (अधिकतर समप्रवाही छंदों में) लय का विघातक सिद्ध हो जाता है। इसीलिए अपभ्रंश छंद:शास्त्री चतुर्मात्रिक गण के योजना-निर्देश में यह भी बता दिया करते थे कि यहाँ चतुर्मात्रिक में जगण नही होना चाहिए। पद्‌मावती और मनहरा छंदों में प्राकृत-पैंगलकार ने स्पष्टत: जगण रखने का निषेध किया है। भानु भी कहीं-कहीं ऐसा निर्देश करते दिखलाई पड़ते है। पर हिन्दी छंद:शास्त्रियों के लक्षण प्रधानतया मात्रानिर्दिष्ट ही हैं। इसका अर्थ यह नही कि हिन्दी कवियों में जगण-विषयक गतिहीनता बहुलता से मिलती है। रचना-काल में कवि की दृष्टि मात्रा या वर्ण पर उतनी नही रहती, जितनी लय पर। अत: लय-रक्षा के लिए प्राचीन कवि अपनी रचना में जगण को भी ऐसे स्थान पर रखते थे कि गति-भंग नहीं हो पाता था। कवि का यह कौशल निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है—

(क) ज्यों **कुरंग**-नाभी कस्तूरी, ढूँढत फिरत भुलायौ।
(ख) राज **कुमारि** कंठमनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायो।
(ग) और त्रिया नखसिख **सिंगार** सजि, तेरे सहज न पूरै।
(घ) गिरिधर वर मैं नैकु न छाँड़ौ, मिली **निसान** वजाई।
(ङ) तृन की अगिनि, धूम को मंदिर, ज्यों **तुषार**-कन-पानी।
} सूरदास

(च) जौ **अनाथ** हित हम पर नेहू।
(छ) सरद **मयंक** वदन छवि सींवा।
(ज) तव प्रभु रिषिन्ह **समेत** नहाए।
(झ) प्रबल **तुषार उदार** पार मन।
(ञ) जग जनमइ वायस **सरीर** धरि।
} तुलसीदास

यहाँ 'ख', 'घ', 'छ', तथा 'ज' में जगण दो त्रिकलों के बीच में रक्खा गया है, जिससे समप्रवाहिकता की रक्षा हो जाती है। शेष अष्टकाधार नहीं

टूटने के कारण गतिहीनता के दोष से बच गए हैं। पर कहीं-कहीं इन दोनों नियमों के उल्लंघन के कारण चरण का प्रवाह किंचित् प्रतिहत हो गया है। यथा—

(क) जैसे घर **बिलाव** के मूसा, रहत विषय-बस वैसो।
(ख) तब न कियौ **प्रहार** प्राननि कौ, फिरि-फिरि क्यों चहिवो। } सूरदास

(ग) नारि हानि **बिसेष** छति नाहीं।
(घ) अगनित श्रुति **पुरान** बिख्याता। } तुलसीदास
(ङ) जब उर बल **बिराग** अधिकाई।

फिर भी ऊपर की पंक्तियों में गति की शिथिलता चाहे जो हो, पर प्रवाहहीनता नहीं है। मेरे इस कथन की सत्यता 'प्रसाद' की निम्न पंक्तियों को उक्त पंक्तियो के सामने रखने से स्पष्ट हो जायगी।

(क) हाँ, **अभाव** का **अभाव** होकर आवश्यकता पूरी है। प्रेमपथिक, पृ० ९
(ख) **वसंत** का भी पवन दोपहर मे ज्वाला बरसाता था। वही, पृ० २०
(ग) संध्या अपना फैलाती थी **प्रभाव** प्रकृति विहारों में। वही, पृ० २१
(घ) है जिसके **समीप** आश्रम ऋषिवर्य का। कानन कुसुम, भरत, पृ० १०५
(ङ) लक्ष्मण की **पुकार** तब तक यह सुन पड़ी। वही, चित्रकूट, पृ० १०२
(च) सरसों के पीले कागज पर **वसंत** की आज्ञा पाकर। झरना : पाईबाग
(छ) रण यह, यज्ञ पुरोहित ! ओ **किलात** औ' आकुलि। कामायनी : संघर्ष

इस प्रकार छायावादियों का ऐसा प्रयोग कुछ दूर तक परंपरागत कहा जा सकता है। पर प्राचीन कवियों के विपरीत इन कवियों ने अन्य प्रकार से भी शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय किया है। समप्रवाही छंदों के बीच में पंचकल, पद्धरि-पदपादाकुलक के प्रारम्भ में त्रिकल तथा शृंगार और चौपाई के अन्त में दो त्रिकल रख कर इन कवियों ने तत्तत् छंद की लय को चौपट कर दिया है। मैथिलीशरण तो इस छायावादी प्रभाव से बचे रहे। पर 'हरिऔध' अपने को इससे बचाकर नहीं रख सके। फलस्वरूप उनके 'वैदेही वनवास' और 'पारिजात' में (संभवतः ये दोनों ग्रंथ छाया-काल में ही निर्मित हुए है) ऐसी त्रुटि-पूर्ण पंक्तियाँ विपुल परिमाण मे पाई जाती हैं। प्रसाद में तो यह प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही रही। पर पंत में 'युगांत' से और निराला में 'गीतिका' से इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ, और उत्तरोत्तर यह प्रबल से प्रबलतर होती गई। महादेवी में यह प्रवृत्ति दिखलाई नहीं पड़ती। यों उनके काव्य में दो-

चार पंक्तियाँ ऐसी मिल जाती हैं। इन कवियों की ऐसी त्रुटि-पूर्ण पंक्तियों के उदाहरण आगे इनकी छंदोयोजना के प्रसंग में प्रस्तुत किए जायँगे।

४. शास्त्र-निर्दिष्ट पादांत गुरु-लघु में विपर्यय

पादांत गुरु-लघु के विपर्यय के तीन कारण माने जा सकते हैं।

१. आचार्यों के लक्षण में एकरूपता का अभाव।

२. कवि-प्रयोग के आधार पर नहीं, प्रस्तार-भेद पर लक्षण का निर्माण।

३. कवि की निरंकुशता।

१. सभी आचार्यों के द्वारा दिए गए किसी विशेष छंद का लक्षण और उदाहरण कभी-कभी एकरूप नही होकर भिन्न-भिन्न होते हैं। इसीलिए कवियों की रचना में गुरु-लघु का विपर्यय दृष्टिगोचर होने लगता है। उल्लाला का सर्वप्रथम उल्लेख १३वीं शती के 'कवि-दर्पण' में कर्पूर नाम से हुआ है, जिसके अनुसार इसके दोनों चरणों के दोनों खंडों के अन्त में तीन लघु रहते हैं।[1] आगे चलकर १४वीं शती के प्राकृतपैंगलकार ने इसकी गण-व्यवस्था ४-४-४-३।६-४-३ तो बतलाई; पर अन्तिम त्रिकल के संबंध में कुछ नहीं कहा।[2] उदाहरण-पद्य में छप्पय के अन्तर्गत उल्लाला के जो दो चरण आए हैं, उनमें तीन लघु वाले नियम का पालन नहीं किया गया है।(१।११९) छप्पय के लक्षणोदाहरण में जो चार पद्य हैं (१।१०५—१०८) उनमें १०६, १०७, १०८ में तीन लघु अवश्य मिलते हैं, पर १०५ में नहीं। चंदबरदाई और विद्यापति के अधिकांश छप्पयों में 'कवि-दर्पण' के नियम का पालन हुआ है। पर ऐसे चरण भी हैं, जहाँ स्पष्ट नियमोल्लंघन है। यथा—

(क) ए सब अजात सता जुही, परी इछ्छ मछ्छी मुही।
परि पै प्रसन्न परतीत करि, नव काढ़त ग्रावह जुही।[3]

---

1. × × So that both the parts of Pada, Caused by the presence of yati, end in three short letters in actual practice.
—Kavidarpan, Brief notes, Prof. H. L. Velan-Kar, Page 130

२. प्रा० पैं० १।११८।

३. पृथ्वीराज रासो : सं० कृष्णचंद्र अग्रवाल : दिल्ली किल्ली कथा, पद्य २६।

(ख) ताकि रहै तसु तीर लै वैठाव मुकदम वाँहि धै ।
जो आनिअ आन कपूर सम तबहु पियाजु पियाजु पै ।[1]

इन पंक्तियों को देखते हुए १४-१५वीं शती के विद्यापति के संबंध में तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने १३वीं शती के 'कवि-दर्पण' के नियम का निर्वाह करते हुए भी तीन लघु पर विशेष बल नहीं दिया । पर १२वीं शताब्दी के चंदवरदाई के लिए क्या कहा जायगा ? संभव है, स्वयंभू के कुंजरविलसित का (१५-१३), जिसमें अंतिम त्रिकल के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है, प्रयोग चंदवरदाई ने कहीं तीन लघु और कहीं ।ऽ रख कर किया हो ।

भिखारीदास ने हरिप्रिया के अन्तर्गत (इसके अन्तर्गत २०, २१ और २२ मात्राओं के तीन छन्द हैं) त्रिकल पर चलने वाले जिस २० मात्रापादी गुर्वन्त छन्द का उल्लेख किया है;[2] वह वस्तुतः भानु का योग छंद है । पर भानु को केवल अंत्य गुरु से संतोष नहीं हुआ । उन्होंने उसके अन्त में यगण (।ऽऽ) का विधान किया ।[3] अब कवि वेचारे क्या करें ? वे योग के अन्त में केवल एक गुरु दें या यगण रक्खें ?

२. चौदह मात्रापादी सखी छंद के अंत में भानु ने मगण (ऽऽऽ) अथवा यगण (।ऽऽ) का विधान किया है ।[4] सखी का प्रयोग कबीर और सूरदास में मिलता है । दोनों ने अधिकांश चरणों के अंत में मगण अथवा यगण रक्खा है । इसी आधार पर, संभव है, भानु ने ऐसा विधान कर दिया हो । पर दोनों कवियों में कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी हैं, जिनके अंत में सगण (।।ऽ) है । यथा—

जब दरसन देखा चहिए । तव दरपन माँजत रहिए ।
—कबीर वचनावली, पद १५१ ।

देखत सुतप्त जल तरसै । जसुदा के पाइनि परसै ।

× × × ×

---

१. विद्यापति : अनुशीलन और मूल्यांकन, खंड २, सं० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० १६ ।
२. छंदार्णव ६।२०-२१ ।
३. छंदःप्रभाकर, पृ० ५६, ४६ ।
४. वही ।

जब पूरी सुन हरि हरष्यो। तव भोजन पर मन करष्यो।

— सूरसागर, पद ८०१।

जब इन दोनों पदों में सगणांत पंक्तियाँ भी मिलती है (अवश्य उनकी संख्या बहुत कम है) तो भानु को अथवा में सगण का भी उल्लेख कर देना चाहिए था। अब यदि प्रसाद के 'आँसू' में सगणांत पंक्तियाँ मिलती हैं—

इस करुणा कलित हृदय में
क्यों विकल रागिनी बजती ?

तो इनमें अंत्य वर्णों का विपर्यय क्यों कर माना जाय ?

सूर-तुलसी आदि के पदों में प्राप्त सरसी और रूपमाला के अन्त में ऽ। के साथ।ऽ और ।।। भी मिलते हैं।[1] फिर भी भिखारीदास (हरिपद और रूपमाल) और भानु ने इन दोनों छंदों के अन्त में केवल ऽ। का विधान किया। अब यदि हम देवीप्रसाद 'पूर्ण' की निम्नांकित रूपमाला—

हरित मनि के रंग लागी भूमि मन को हरन ।
× × ×
विमल बगुलन पाँति मनहु विसाल मुक्तावली।

—कविता-कौमुदी : वर्षा का आगमन, पृ० २४५

के अन्त में नगण (।।।) और।ऽ पाते हैं, तो उन्हें अंत्य वर्णों के विपर्यय के दोषी किस प्रकार कह सकते हैं ?

भानु ने कवि-प्रयोग पर ध्यान नही देकर अंत्य गुरु-लघु के आधार पर अनेक छंदों की व्यर्थ सृष्टि की है। उनके अनुसार ३० मात्रापादी छंद के अन्त में यदि तीन गुरु हों तो ताटंक, दो गुरु हों तो ककुभ और जिसमें लघु-गुरु का कोई बंधन नहीं हो वह लावनी छंद है।[2] पर सूर-तुलसी आदि कवियों के काव्यों में शायद ही कोई ऐसा पद मिले, जिसके पादांत में आद्योपांत मगण (ऽऽऽ) रक्खा गया हो। भानु के अनुसार तीनों छंदों की मिली-जुली पंक्तियाँ ही उनके पदों में दिखलाई पड़ती हैं। अतः लय के आधार पर ऐसी सभी पंक्तियाँ एक ही छंद की मानी जानी चाहिए। और अधुनिक

१. द्रष्टव्य: सूरसागर, पद २०२, ३०२२: विनयपत्रिका, पद १६० (रूपमाला)। सूरसागर पद ३४२२, ३५२६ : भारतेन्दु-ग्रंथावली, होली पद-४७ (सरसी)।

२. द्रष्टव्य : छंद:प्रभाकर, पृ० ७२-७३।

कवियों के ऐसे प्रयोग में अंत्य विपर्यय का दोष नहीं देखना चाहिए।

३. अब दो-एक उदाहरण 'निरंकुशाः कवयः' के भी देख लिए जायँ। तोमर का उल्लेख प्रा० पैं० में वर्णवृत्त (स ज ज) के रूप में हुआ है। चंदबरदाई ने इसका प्रयोग मात्रिक रूप में तो किया, पर अन्त में बराबर ऽ। (अधिकतर जगण, और दो-चार स्थलों पर तगण) ही रक्खा। तुलसीदास ने इसके मात्रिक प्रयोग में जगण और तगण (ऽ ऽ ।) को तो मान्यता दी ही, कतिपय चरणों में नगण (। । ।) का भी व्यवहार किया। **यथा**—

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन।

—मानस (गीता प्रेस) अरण्यकांड, पृ० ५७३

चंदबरदाई द्वारा प्रयुक्त २१ मात्रापादी चंद्रायन यदि केदार भट्ट द्वारा उल्लिखित चंद्रौरस (म भ न य ल ग)[1] का मात्रिक रूप हो, तो उसके पादांत में लघु गुरु और यदि वह स्वयंभू का रास छंद [2] हो, तो उसके चरणांत में तीन लघु होने चाहिए। पर पृथ्वीराज रासो में चंद्रायन का प्रयोग दोनों रूपों में दृष्टिगोचर होता है। यथा—

(क) छत्तिय हथ्थ धरंत नयंनत चाहुयौ।
दासिय दष्षिन हथ्थ सु वंचि दिषाययौ। [3]

(ख) विजय विहसि द्रिगपाल पायननि पंचकिय।
विरहिन विस गढ़ दहन मघव धनु अग्र लिय। [4]

पद्धरि प्राचीन छंद है; जिसके अंत में जगण का विधान प्रायः सभी आचार्यों ने किया है। चंदबरदाई ने इसका जगणांत प्रयोग ही किया है। पर रासो में कतिपय पंक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं, जिनके अंत में हम तगण पाते हैं। यथा—

सुनि हंस बैन उर लगी बत्त। विधिना लिषंत क्यों मिटै पत्त।[5]

फिर तो यह एक प्रकार से नियम हो गया और सूर-तुलसी से लेकर आज तक के कवि पद्धरि के चरणांत में जगण और तगण दोनों का व्यवहार

---

१. वृत्त रत्नाकर ३।७७-८।

२. स्वयंभूच्छंद ८।२५।

३—५. पृथ्वीराजरासो : सं० डॉ० कृष्णचंद्र अग्रवाल, पृ० १४०, १५२,७०।

करते रहे। तुलसीदास के निम्न पद में जो नगण का प्रयोग हुआ है—

विज्ञान भवन गिरि-सुता रवन। कहु तुलसि दास मम त्रास-समन।
—विनय पत्रिका, पद १३

वह पदपादाकुलक के अंतिम । ऽ के स्थान पर माना जा सकता है।

सभी आचार्यो ने हरिगीतिका के अंत में । ऽ का विधान किया है। चंदबरदाई से लेकर मैथिलीशरण तक के काव्य-प्रयोग में संभवत: इस नियम का विपर्यय मुझे दिखलाई नहीं पड़ा। पर रामचरित उपाध्याय में दो-चार ऐसी पंक्तियाँ भी मिलीं जिनके अन्त में । ऽ की जगह ।।। है। यथा—

मृग पर चले मृगराज ज्यों उत्साह-पूर्वक हो निडर,
ज्यों वज्र टूटे इंद्र का अंगार-सा गिरि-शृंग पर।
—रामचरितचिंतामणि : सर्ग १६।५६

फिर यदि आज कोई छायावादी कवि निम्नलिखित नगणांत पंक्तियाँ लिखता है—

नव क्षीरनिधि की उर्मियों से रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेनमय मुक्तावली से तैरते तारक अमित।
—महादेवी (नीरजा, गीत ६)

तो वह अपने पूर्ववर्त्ती कवि का ही अनुसरण करता है।

गोपी छंद शृंगार के अंतिम लघु को निकाल कर बनाया गया है। अत: उसके अन्त में गुरु अवश्य चाहिए। पर पंत आदि के काव्यों में गोपी की ऐसी पंक्तियाँ भी मिलती हैं—

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन।
—पल्लव : उच्छ्वास।

अधिक उदाहरण की आवश्यकता नहीं। इतने से ही बात स्पष्ट हो गई होगी कि पद्य-रचना-काल में कवि का ध्यान लय पर रहता है। यदि लय ठीक है, तो वह शास्त्रीय नियम की यत्किंचित् अवहेलना भी कर देता है। पादांत गुरु-लघु का विपर्यय प्राचीन काल से लेकर अद्यपर्यन्त होता आया है। अत: छायावाद का ऐसा प्रयोग परंपरा-पोषित ही कहा जायगा।

५. युग-विशेष में अप्रचलित एवं उपेक्षित छंदों का ग्रहण

कवि-प्रयोग में एक बार जब कोई छंद आ जाता है, तो वह न सर्वथा विलुप्त होता है और न वह एकदम उपेक्षित रहता है। युग-विशेष में उसका प्रचलन कम आवश्य हो जाता है, और युग के अनेक कवियों के द्वारा प्रयुक्त नहीं होने के कारण उसे थोड़ी उपेक्षा भी सहनी पड़ती है। छायावाद के युग में कुंडलिया और दोहा वहिष्कृत हो गये। पर आज भी काका हाथरसी की विनोदात्मक रचनाएँ कुंडलिया में निवद्ध रहती हैं और बच्चन ने आज भी अपनी वाणी को दोहे में अभिव्यक्त किया है।[१] अतः अप्रचलित को कम प्रचलित और उपेक्षित को कम कवियों के द्वारा प्रयुक्त न्यूनता-बोधक अर्थ में ही ग्रहण करना समीचीन है।

सरहपा आदि सिद्ध कवि अपनी खंडनात्मक उक्तियों और उपदेशों को अधिकतर दोहा-चौपाई में और अपने आध्यात्मिक अनुभवों को पदों में अभिव्यक्त किया करते थे। इस प्रकार दोहा, चौपाई और पदों में प्रयुक्त सरसी, सार, मरहट्ठामाधवी आदि छंद सिद्ध-काल के प्रमुख छंद थे। अपभ्रंश के प्रबंध कवियों ने अपनी कथा को अभिव्यक्त करने के लिए पद्धरि को अपनाया। पद्धरि में लिखित उनकी कड़वक-बद्ध रचनाओं के बीच अन्यान्य छन्द भी आ जाते थे। चौपाई को तो कहीं-कहीं वे स्थान दे देते थे, पर दोहा उनके द्वारा एक प्रकार से उपेक्षित-सा रहा। मुक्तक के रूप में दोहा अवश्य उस काल में भी सम्मान पाता रहा। चंदबरदाई ने दोहा और गाथा का तो अपने रासो में खुलकर प्रयोग किया, पर चौपाई एक प्रकार से उपेक्षित रही। बीच-बीच में कतिपय पंक्तियाँ चौपाई की रासो में अवश्य मिल जाती हैं। इन छंदों के साथ उन्होंने अपने वीर भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अपभ्रंश प्रबंध कवियों के प्रिय पद्धरि को तो अपनाया ही, साथ-साथ वीररस-व्यंजक रोला, छप्पय, प्रमाणिका, मौक्तिकदाम, भुजंगप्रयात, पंचचामर आदि छंदों को भी प्रश्रय दिया। गोरखनाथ ने चंदबरदाई-द्वारा तिरस्कृत चौपाई को फिर सम्मान दिया। साथ ही पदों में प्रयुक्त सार, ताटंक आदि में भी अपने को अभिव्यक्त किया। भक्तिकाल के कबीर, जायसी और तुलसी के हाथों से अपभ्रंश प्रबन्ध कवियों के द्वारा उपेक्षित चौपाई-दोहे ने उनकी रमैणी, पद्मावत तथा मानस में अपना आधिपत्य स्थापित किया। चौपाई ने इनके यहाँ वही स्थान प्राप्त किया, जो स्थान पद्धरि को अपभ्रंश प्रबंध काव्यों में

१. द्रष्टव्य : खादी के फूल, पद्य ६०।

उपलब्ध था। इसके साथ ही कबीर, सूर, तुलसी अदि भक्तिकालीन कवियों ने रासोकार-द्वारा उपेक्षित सार, सरसी, ताटंक आदि छंदों का तो हृदय से स्वागत कर सिद्धों और गोरखनाथ की परम्परा को आगे बढ़ाया; पर मौक्तिकदाम, पंचचामर आदि छंदों का बहिष्कार कर दिया। पद्धरि, रोला और छप्पय भी इन कवियों के यहाँ एक प्रकार से उपेक्षित ही रहे। इन कवियों में इनका जो यत्किंचित् प्रयोग मिलता है, वह दाल में नमक के बराबर है।

रीतिकाल में केशव की रामचन्द्रिका और विज्ञानगीता की तरह कुछ और बहुछन्दी काव्य लिखे गए। सबालसिंह चौहान, व्रजवासीदास आदि ने तुलसी के मानस की परम्परा को आगे बढ़ाया। पर आचार्य-कवियों ने सूर-द्वारा उद्भावित कवित्त को तथा अपभ्रंश कवि एवं चन्दवरदाई द्वारा-व्यवहृत क्रमशः किरीट और दुर्मिल सवैये के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सवैयों को अपनी वाणी का वाहन बनाया। लक्षण-निरूपण में दोहे को भी प्रतिष्ठा दी। यों उनके लक्षण-ग्रंथों की भूमिका-रूप में कुछ छप्पय, हरिगीतिका आदि अन्य छंद भी मिल जाते हैं; पर यह बिना हिचकिचाहट के कहा जा सकता है कि रीतिकालीन आचार्य-कवियों ने भक्तिकालीन रूपमाला, सरसी, सार, मरहट्ठामाधवी, ताटंक, वीर, समानसवैया आदि छंदों का सर्वथा बहिष्कार कर दिया।

भारतेंदु-युग का एक पैर भक्तिकाल पर था, तो दूसरा रीतिकाल पर। अतः एक ओर यदि उसने रीतिकाल-द्वारा उपेक्षित सरसी, सार, मरहट्ठा-माधवी, ताटंक, समानसवैया आदि में पदों की रचना की, तो रीतिकालीन कवित्त और सवैये को भी अपना दुलार दिया। इसके अतिरिक्त इस युग में भक्तिकाल-द्वारा उपेक्षित रोला और छप्पय ने भी उचित सम्मान पाया। इस युग में सबसे बड़ी बात यह हुई कि यह युग वर्त्तमान की ओर भी उन्मुख था। अतः आधुनिक विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए इसने पदों में जीते चले आते हुए सार, ताटंक आदि को मुक्तक प्रबन्ध में स्थान देकर उनके स्वतंत्र अस्तित्व की सूचना दी।

सरहपा से लेकर छायावाद तक पद की अखंड परम्परा रही। अवश्य किसी युग में उसे विशेष सम्मान मिला, तो किसी युग में उसकी थोड़ी उपेक्षा हुई। द्विवेदी युग में पद का जमाना एक प्रकार से लद गया, इसीलिए झूलना आदि बड़े-बड़े छंद तो प्रायः लिखे ही नहीं गए। द्विवेदी-युग मुख्यतः 'इतिवृत्त

का युग था। इस इतिवृत्त की अभिव्यक्ति के लिए भारतेंदु-युग के मुक्तक प्रबन्धों में दर्शन देने वाले सरसी, सार, ताटंक आदि अत्यन्त उपयुक्त समझे गए और इनका प्रयोग आख्यानक-काव्य में धड़ल्ले से हुआ। भक्ति, रीति तथा भारतेंदु-काल में जो वर्णवृत्त एक प्रकार से उपेक्षित हो गये थे, पर जिन्होंने चंदवरदाई एवं केशव का प्यार पाया था, उनका फिर से जमकर प्रयोग होने लगा। चूँकि यह काल इतिवृत्तात्मक था, इसलिए इस समय छोटे छंदों का अपेक्षाकृत बहुत कम प्रयोग हुआ। छोटे छंदों में चौपई, चौपाई, पीयूषवर्षी आदि कुछ छंद ही अधिकतर प्रयुक्त होते रहे। पद्धरि-पदपादाकुलक का प्रयोग भी कम ही हुआ। बड़े छंदों में रोला, रूपमाला, गीतिका, सरसी, सार, हरिगीतिका, ताटंक का अधिक बोलबाला रहा।

छायावाद प्रगीत मुक्तक को लेकर आविर्भूत हुआ। प्रगीत मुक्तक के लिए उसने ऐसे छंदों की खोज की; जो छोटे हों, साथ-साथ गेय भी हों। ऐसे छंदों में उसे कुछ छंद तो ऐसे प्राप्त हुए, जो अब तक कवियों के द्वारा उपेक्षित होकर छंदःशास्त्रों में ही पड़े हुए थे। और कुछ ऐसे भी मिले जो कवि-प्रयोग में आने पर भी अल्पता के कारण अप्रचलित-से हो गए थे। शिखंडी हेमचन्द्र के 'छंदोऽनुशासन' में (शिखंडिनी नाम से) शशिवदना और महानुभाव स्वयंभू के स्वयंभूच्छंदः में, छवि और अणिमा (हीरंकी नाम से)[1] भिखारीदास के छंदार्णव में तथा सुगति, गंग, शिव, तांडव एवं योग भानु के छंदःप्रभाकर में अभी तक पंख ही फड़फड़ा रहे थे। छायावाद ने शास्त्रों से निकाल कर इन्हें काव्य-वाटिका में विचरण करने का अवसर प्रदान किया। इनका कहीं स्वतंत्र और कहीं मिश्रित प्रयोग कर काव्य में इनकी सत्ता का उद्घोष किया। लीला, सखी, मनोरम, गोपी, शृंगार तथा पद्धरि प्राचीन छंद हैं। पद्धरि तो अपभ्रंश प्रबन्ध काव्य का प्रमुख छंद है। चंदवरदाई ने भी इसका विपुल परिमाण में प्रयोग किया है। पर उनके बाद कवियों ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। द्विवेदी-युग के कवि मैथिलीशरण ने इसका और इसके भाई पद-पादाकुलक का प्रयोग, संभवतः छायावाद के प्रभाव-वश, कुछ अधिक परिमाण में अवश्य किया है; पर इन दोनों छंदों की रचना जिस विपुल परिमाण में छायावाद के अन्तर्गत हुई, उतना अपभ्रंश काव्य और पृथ्वीराजरासो के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता। सखी का प्रयोग कबीर, सूर, तुलसी तथा भारतेंदु में

१. छंदार्णव ६।५-६।

अवश्य प्राप्त होता है, पर वह परिमाण में अधिक नहीं। मैथिलीशरण ने भी इसका प्रयोग बहुत कम किया है। संभवत: छायावाद के प्रभाववश हरिऔध के 'पारिजात' में यह अवश्य अनल्प मात्रा में मिलती है। पर छायावाद में इसे जो सम्मान प्राप्त हुआ, वह किसी काल में किसी कवि के द्वारा इसे नहीं मिला था। गोपी और शृंगार जितने छायावाद में लिखे गये, उतने पहले कभी नहीं लिखे गए थे। लीला कृष्णभक्त कवियों में मिलती अवश्य है; पर निराला और पंत ने विपुल परिमाण में इसकी रचना कर इसे महिमा-मंडित कर दिया। लीला, सखी, गोपी, शृंगार, पद्धरि और पदपादाकुलक छायावाद के प्रमुख छंदो में परिगणित हो सकते हैं। मालिका और मनोरम का प्रयोग चंदवरदाई के बाद संभवत: छायावाद में ही हुआ। माली का प्रयोग सूरदास में मिलता है। माली और हंसगति का उल्लेख भिखारीदास ने किया है। पर पंत ने 'लोकायतन' में विपुल परिमाण में रचना कर इन दोनों छंदों को काव्य के उच्चासन पर सदा के लिए प्रतिष्ठित कर दिया। इतनी प्रतिष्ठा इन दोनों छन्दों को कभी किसी के द्वारा नहीं मिली थी। विद्यापति के द्वारा उद्भावित रजनी छन्द का प्रयोग सूरदास ने ११ पदों में किया था; पर कालांतर में यह कवि-दृष्टि से ओझल हो गई। छायावादियों की दृष्टि इस पर एक बार फिर पड़ी। अपभ्रंश छन्द:शास्त्र का हीर हिंदी कवियों के द्वारा सदा उपेक्षित रहा। अनेक छन्दों के सफल प्रयोक्ता मैथिलीशरण तक ने इसकी उपेक्षा की। पर निराला और पंत की सदय दृष्टि पाकर छायावाद में हीर एक बार पुन: चमक उठा। छायावाद में दो और छन्द बहुत प्रचलित हुए, जिन्हें नूतन मानकर डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने शक्तिपूजा और माधवमालती नाम दिए। पर ये दोनों छन्द भी प्राचीन उपेक्षित छन्द हैं। शक्तिपूजा का आयोजन अपभ्रंश कवि पुष्पदंत ने और माधवमालती का आरोपण सूरदास ने किया था। तब से इन दोनों छन्दों की ओर किसी कवि की दृष्टि नहीं गई। शक्तिपूजा की आरती उतारी निराला ने और माधवमालती की सुगंध का अनुभव हुआ महादेवी को। समानसवैया पद-रचयिताओं का प्रिय छन्द रहा। द्विवेदी-युग में पद-रचना की न्यूनता के कारण इसका प्रयोग भी विरल हो गया। संभवत: छायावाद के प्रभाववश हरिऔध की बाद की रचनाओं में इसका अनल्प प्रयोग अवश्य मिलता है। पर छायावादियों ने युग-विशेष के इस उपेक्षित छन्द का भी दिल खोलकर स्वागत किया। मत्तसवैया एक प्रकार से सदा उपेक्षित रहा। कबीर और भारतेंदु-युग के कतिपय पदों के अतिरिक्त इसे कहीं प्रश्रय

नहीं मिला था। प्रसाद ने 'कामायनी' के दो सर्गों (काम और लज्जा) में स्थान देकर इसकी प्रबंधगत क्षमता को बिलकुल स्पष्ट कर दिया।

यों तो प्रत्येक काल में युग-विशेष के अप्रचलित एवं उपेक्षित छन्दों का प्रयोग होता रहा है और इस दृष्टि से छायावाद का यह प्रयास नूतन नहीं कहा जा सकता। पर अनेक अप्रचलित एवं उपेक्षित छन्दों के प्रचार और उद्धार में इस युग ने कुछ ऐसा महत्त्वपूर्ण काम किया है कि वह सर्जनात्मक क्रांति का एक अंग सहज ही माना जा सकता है।

६. नूतन छन्दों का निर्माण एवं नई अर्थ-यति

नूतन छन्दों का निर्माण अति प्राचीन काल से होता आ रहा है। पिंगल द्वारा उल्लिखित थोड़े से छन्द क्रम-क्रम से विकसित होकर आज हजार की संख्या तक पहुँच गए हैं। श्रुतबोध में दिए गए कई छन्दों के लक्षण[1] इस बात की ओर निर्देश करते हैं कि प्राचीन कवियों के द्वारा प्रयुक्त छन्दों में कुछ अक्षरों को घटा-बढ़ाकर अथवा किसी विशेष गुरु की जगह लघु और लघु की जगह गुरु रखकर अनेक नए छन्दों का आविष्कार किया गया है। पिंगल द्वारा उल्लिखित मालिनी[2] के आठवें अक्षर को निकाल कर नंदीमुखी[3] छन्द बनाया गया है। मदाक्रांता, भाराक्रांता औइ हारिणी तीनों छन्द १० वर्ण तक एकरूप हैं, अंतिम सात अक्षरों में ही थोड़ी भिन्नता है। मंदाक्रांता के प्रारंभिक चार वर्णों के बाद एक दीर्घ रखकर १८ वर्णों का कुसुमितलता-वेल्लिता छन्द बना लिया गया है। मंदाक्रांता के आदि में। ऽ रख कर मेघ-विस्फूर्जिता की निर्मिति हुई है। शार्दूलविक्रीड़ित के प्रारंभिक गुरु की जगह दो लघु रख देने से मत्तेभविक्रीड़ित बन गया है। इस प्रकार एक छन्द विशेष के वर्णों में किंचित् हेर-फेर से छंदःशास्त्र में अनेक नूतन छन्द बना लिए गए हैं।

नवीन छन्दों के निर्माण में छन्दःशास्त्रियों के अतिरिक्त कवियों ने भी योग दिया है। वैदिक ऋषियों की भाव-धारा गायत्री आदि छन्दों के मार्ग पर चलती हुई भी कभी-कभी, एक-दो अक्षरों को घटा-बढ़ा कर अपने

---

१. हंसी छंद १६, उपेंद्रवज्रा १९, स्वागता २६, प्रमिताक्षरा २८, हरिणीप्लुता २९, बंशस्थ ३०, इंद्रवंशा ३१।

२. पिंगल छंदःशास्त्र ७।१४।

३. जयकीर्त्ति २।१७० (वसंत) हेमचंद्र २।२२४ (वसंत) स्वयंभू १।११ (नंदीमुखी)।

लिए नूतन मार्ग निकाल लेती थी। इस प्रकार गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुभ, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ्, तथा जगती—इन सात प्रमुख छन्दों से विकसित तथा किन्हीं दो के मिश्रण से निर्मित छन्दों का प्रयोग वैदिक वाङ्मय में प्रचुरता से हुआ है।

लौकिक संस्कृत के कवियों मे भी यह प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है। अश्वघोष के 'सौंदरनंद' में मंदाक्रांता के ११वें-१२वें तथा १३वें वर्णो का (। ऽ ऽ) निकाल कर बनाया गया एक छन्द मिलता है (सर्ग १२।४३, सर्ग १३।५६) जिसे भरत ने शरभललित (नाट्यशास्त्र, १६।१८) कहा है। भट्टि ने नर्दटक और जलोद्धतगति के मिश्रण से एक नया छन्द बनाया है, जिसे अश्वललित कहते हैं।[1] माघ के 'शिशुपाल-वध' में घृतश्री (सर्ग ३।८२) मंजरी (४।२४) अतिशायनी (८।७१) रमणीयक (१३।६९) जैसे अप्रसिद्ध छन्द मिलते हैं। इनमें मंजरी प्रमिताक्षरा और पृथ्वी के तथा रमणीयक रथोद्धता और द्रुतविलंबित के यति-खंडो के योग से बने प्रतीत होते है।[2]

प्राकृत-अपभ्रंश में भी नूतन छन्द निरन्तर बनते रहे हैं। गाथा छन्द के मात्रिक गणोकेहेर-फेरकरनेसे या पूर्व दल या उत्तर दल के हेर-फेर से विग्गाहा, उग्गाहा, गाहिनी, सिहनी, स्कंधक आदि छन्दों की उत्पत्ति हुई है।[3] स्वयंभूच्छन्दः से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि किंचित् गण-परिवर्त्तन से चित्रलेखिका, मल्लिका, दीपिका तथा लक्ष्मी छन्द बन जाते है।[4]

हिन्दी छन्दों के विकास की भी यही रामकहानी है। पद्धरि के अंतिम ऽ। को। ऽ या।।। कर देने से पदपादाकुलक बन गया। इसी की अंतिम दो मात्राओं को निकाल देने से सखी की और प्रारंभिक दो मात्राओ को हटा देने से कज्जल की उत्पत्ति हुई। पद्धरि-पदपादाकुलक के चरणांत में छह मात्राओं के योग से राधिका का और आठ मात्राओं के योग से शक्तिपूजा का आविष्कार हुआ। हरिगीतिका की प्रारम्भिक दो मात्राओं को हटा कर गीतिका और अंतिम दो मात्राओं को निकाल कर गीता बनाई गई। गीतिका की अंतिम दो मात्राओं को हटा देने से रूपमाला की सृष्टि हुई, तो दो मात्राओं को जोड़ देने से माधवमालती बन गई। यदि सार के अंतिम गुरु को हटा कर विष्णुपद का निर्माण किया गया, तो उसके (सार के) अंतिम गुरु को

१—३. प्रा० पैं० भाग ४, सं० भोलाशंकर व्यास, पृ० ३३०, ३३१, ३३५।
४. स्वयंभूच्छंदः पूर्वभाग ३।९, १०, ११, १२।

लघु बनाकर सरसी की सृष्टि की गई। फिर उसी के अन्त में दो मात्राओं के योग से ताटंक और ऽ। के योग से वीरछन्द की निर्मिति हुई। विशेष उदाहरण की आवश्यकता नहीं। इतने से ही बात समझ में आ गई होगी कि कुछ मात्राओं को घटा-बढ़ा कर किस प्रकार हिन्दी में एक छन्द से अनेक छन्द बनाए गए।

इन शास्त्रोल्लिखित छन्दों के अतिरिक्त भी कवियों के काव्यों में ऐसे छन्द मिल जाते हैं, जिनका उल्लेख शास्त्रों में नही मिलता। 'हिन्दी साहित्य का छन्दोविवेचन'[1] नामक ग्रंथ में हम देख आए हैं कि युग-विशेष के प्रत्येक प्रतिनिधि कवि में दो-चार ऐसे नूतन प्रयोग मिल गए हैं, जिनका नामकरण प्रस्तुत लेखक को करना पड़ा है। द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि हरिऔध और मैथिलीशरण के अतिरिक्त उस युग के अन्य कवियों में भी नूतन छन्द के निर्माण की प्रवृत्ति पाई जाती है। श्रीधर पाठक ने पद्धरि के आदि में एक द्विकल रखकर जिस छन्द में निम्नांकित कविता की रचना की है—

ए हो! नव युग वर, प्रिय छात्र वृंद।
भारत-हृदि-नंदन, आनंद-कंद !!
जीवन-तरु सुंदर-सुख-फल अमंद।
भारत - उर - आशा - आकाशचंद !

—कविता कौमुदी, भाग २ : भारत-सुत, पृ० १२३-१२४

वह तो भानु के अनुसार वंदन छंद है।[2] पर मिश्रबंधु ने निम्नांकित रचना के—

है नहीं काज उत्पत्ति हेतु बिन और जगत का काज बड़ा।
यह विश्व-रचयिता के होने का है प्रमान जग मान्य कड़ा।
यदि ईश्वर को भी काज गुनै तो जावे मति चकराय।
उसके रचने वाले का भी कुछ नहीं पता दरसाय।

—कविता कौमुदी, पृ० ३३८ (ईश्वरवाद)

अंतिम दो चरणों में, जो मत्तसवैये के पादांत से तीन मात्राएँ हटा कर बनाए गए हैं, जिस छंद का प्रयोग किया है; उसका कोई नाम शास्त्रों में

1. प्रकाशक : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
2. छंदःप्रभाकर : पृ० ५४।

उपलब्ध नही होता। इसी प्रकार नाम-कुल-गोत्र-विहीन छंद मुकुटधर पांडेय की निम्न कविता में—

आ पड़ा हाय ! संसार कूप में, भाग्य दोष से गिरकर ओस ;
पर हर्षित होकर किया सुशोभित उसने स्फुट गुलाब का कोष।
—क. कौ० (ओस की निर्वाण प्राप्ति) पृ० ५५७

पाया जाता है, जो मत्तसवैये के अंत में एक लघु के योग से बना है। वीर छंद के आदि में एक द्विकल रखने से भी इसका निर्माण हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि नूतन छन्दों के निर्माण में छंदःशास्त्रियों के साथ कवि भी बराबर योग देते रहे हैं। छायावाद का ऐसा प्रयत्न परम्परागत ही है। छायावाद के चार स्तंभों में प्रसाद और महादेवी की प्रवृत्ति इस ओर अधिक नही। निराला और पंत ने अवश्य अनेक नए छदों की उद्भावना की है। किसी नई वस्तु का आतिशय्य क्रांति का सूचक होता है और इस दृष्टि से अनेक नूतन छन्दों का आविष्कार कर छायावाद ने इस क्षेत्र में अवश्य क्रांति की है। पर ऐसी क्रांति हिंदी साहित्य में एक बार छायावाद के बहुत पहले भी हुई थी। सूरदास के पच्चीसों नूतन छंदों में हम इस क्रांति का आभास साफ देख सकते हैं। पर ये छंद पद के आवरण में छिपे पड़े थे। राग-रागिनी की मुहर उन पर लगी हुई थी। इसलिए साहित्य के विद्वानों ने तो उन्हें संगीत की संपत्ति जान कर उनके परीक्षण की ओर से मुख मोड़ लिया और छंदःशास्त्री अनेक नए छंदों के उदाहरण पाकर जो लाभ उठाते, उससे वंचित रह गए। फिर सूरदास-द्वारा उत्थापित इस क्रांति के स्वरूप को कौन देखता ?

नूतन छंद के साथ एक नए प्रकार की यति—अर्थ-यति पर भी विचार कर लेना चाहिए। इसके संबंध में डॉ० शुक्ल ने लिखा है—'भाव और विचार के अनुसार शास्त्र-निश्चित स्थानों के अतिरिक्त भी अंतर्यतियों का प्रयोग किया जा सकता है।[1] × × लय-यति के साथ आधुनिक युग में अर्थ-यति का भी विशेष स्थान है। × × अर्थ-यति निश्चित रूप से स्वल्प काल के लिए गति को स्थिर विराम देती है। ऐसी अर्थ-यति से पाठ में ही सुविधा नहीं होती, भाव-व्यंजना में भी योग मिलता है।'[2] और उदाहरण में निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

१–२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २१०, २१२।

(क) नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन । —कामायनी

(ख) ऐसे गिरि, ऐसे वन, ऐसी नदी, ऐसे कूल,
ऐसा जल, ऐसे थल, ऐसे फल, ऐसे फूल ।
—यशोधरा

(ग) संगर-विनोद, राग-रंग-मोद दोनों में
एक-सा कुशल है, कृती जो गुण-गौरवी ।
—सिद्धराज ।

यह अर्थ-यति अंग्रेजी साहित्य में बहुत महत्त्वपूर्ण समझी जाती है । अंग्रेजी में लय-यति के लिए कोई स्थान निश्चित नहीं है । कवि अर्थ के आधार पर चरण के प्रारंभिक भाग में, मध्य में और अंतिम अंश में कहीं भी यति (विराम) दे सकता है । मिल्टन के 'पैरेडाइज लॉस्ट' की निम्नांकित प्रारंभिक पंक्तियों से इस बात को हम आसानी से समझ सकते हैं—

Of man's first disobedience/ and the fruit
of that forbidden tree/whose mortal taste
Brought death into the world,/and all our woe
with loss of Eden,/till one greater. Man
Restore us,/and regain the blissful seat,
Sing, heavenly Muse,/that on the secret top.

रेस्टोरेशन युग (Restoration period) के कवियों में (ड्रायडन, पोप आदि) यति-स्थल की ऐसी अनियमितता को नहीं देखकर आलोचकों ने उन पर यतिविषयक समरसता (monotony) का लांछन लगाया था । उसी लांछन का मार्जन करते हुए एडिथ सिटवेल (Edith Sitwell) ने पोप की निम्न पंक्तियों के—

The Dog-star rages; may., tis past a doubt,
All Bedlam, or parnassus, is let out;
Fire in each eye, and papers in each hand
They rave, recite, and madden round the land.

संबंध में लिखा है—चतुराई के साथ इसे (यति को) स्थापित कर पोप केवल अपने पद्य के संगीत में विविधता प्रदान करने में ही समर्थ नहीं हुआ है, बल्कि अर्थ को भी ऊँचा उठा दिया है ।[1] इसी से अंग्रेजी साहित्य में

1. By the skilful placing of it, Pope is able not only to vary the music of his verse but so as to heighten the meaning.

अर्थ-यति के महत्त्व को हम समझ सकते हैं।

इस प्रकार की अर्थयति अंग्रेजी-हिन्दी जैसी विश्लेषणात्मक भाषाओं में ही संभव हो सकती है। संधि-समास से युक्त संस्कृत भाषा की संश्लेषणात्मकता और गणबद्ध छंदों के बीहड़पन में संस्कृत कवि को अर्थयति रखने का अवसर सहज प्राप्त नहीं। संभवतः इसी कारण संस्कृत के छंदःशास्त्री अन्तर्यति और पादांत यति का निर्देश करते हुए भी अर्थयति के संबंध में मौन हैं। और हिन्दी के प्राचीन आचार्य उन्हीं का अनुसरण करते हुए इस यति की टोह लेने के लिए कभी कटिबद्ध नहीं हुए। संस्कृत पद्यों में इसकी विरलता चाहे हो, पर बिलकुल अभाव नही है। यह बात निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगी।

(क) अरसिकेषु कवित्व-निवेदनम्
शिरसि मा लिख / मा लिख / मा लिख।
(ख) मन्दं / मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वाम्।
(ग) कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते / पर्वते ते।
(घ) गच्छ / गच्छ / परं स्थानं त्वद्धाम परमेश्वर।
(ङ) माता नास्ति / पिता नास्ति, नास्ति बंधु सहोदरः।
अर्थान्नास्ति / गृहन्नास्ति, तस्माद् जाग्रत / जाग्रत।
(च) जन्म दुःखं / जरा दुःखं, जाया दुःखं / पुनः पुनः।
(छ) माता शत्रुः / पिता वैरी, येन बालो न पाठ्यते।

(क) में प्रयुक्त द्रुतविलम्वित में यति का निर्देश आचार्यों ने नहीं किया है। पर यहाँ अर्थ के आधार पर जिह्वा को तीन स्थानों पर ठहरना पड़ता है।

(ख+ग) में प्रयुक्त मंदाक्रांता छंद में ४थे और १०वें वर्णों पर ही यति का विधान है। पर यहाँ क्रमशः दो तथा तेरह अक्षर के बाद भी जिह्वा कुछ विलम जाती है।

('घ' से 'छ') में प्रयुक्त अनुष्टुप विना यति का छंद है। पर यहाँ प्रत्येक चरण में जिह्वा स्थल-विशेष पर, अर्थ के अनुसार, रुक-रुक कर चलती है।

यह तो संस्कृत की बात हुई। हिन्दी के प्राचीन काव्यों में तो इसके अनेक उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

(क) ना मैं बकरी / ना मैं भेड़ी / ना मैं छुरी गँड़ास में।
नहीं खाल में / नहीं पोंछ में / ना हड्डी / ना माँस में।
ना मैं देवल / ना मैं मसजिद / ना कावे कैलास में।

—कबीरदास

(ख) कै तुमहीं / कै हम ही माधौ, अपने भरोसे लरिहौं।

× × ×

मुख दधि पोंछि / बुद्धि इक कीन्हीं, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि / मुसकाइ यसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।

× × ×

पटकत बाँस / काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल।
उचटत अति अंगार / फुटत फर, झपटत लपट कराल।

—सूरदास

(ग) छमि अपराध / छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ।
कह्यो राज / बन दियो नारि-वस, गरि गलानि गे राउ।

× × ×

सून्य भीति पर चित्र / रंग नहिं, तनु बिना लिखा चितेरे।
धोये मिटै न / मरे भीति / दुख, पाइय इहि तनु हेरे।

—तुलसीदास

(घ) सौंह करै / भौंहनि हँसै, देन कहै / नटि जाय।

× × ×

उतते इत / इतते उतहि, छिनक न कहुँ ठहराति।
जक न परति / चकरी भई, फिरि आवति / फिरि जात।

—बिहारी

(ङ) द्वार में / दिसान में / दुनी में / देस-देसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।

× × ×

औरे रस / औरे रीति / औरे राग / औरे रंग,
औरे तन / औरे मन / औरे वन ह्वै गये।

—पद्माकर

अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। इतने उदाहरणों से ही यह स्पष्ट हो गया कि संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने अर्थयति का निर्देश भले ही न किया हो; पर संस्कृत-हिन्दी के काव्यों में अर्थ-यति वाले चरण अनेक मिलते हैं। फिर आधुनिकों का ऐसा प्रयोग परम्परागत ही माना जायगा।

७. वर्णवृत्तों का मात्रिक रूप में प्रयोग

प्रत्येक भाषा में अपना छंद होता है। गणबद्ध वर्णवृत्त संस्कृत जैसी संश्लेषणात्मक भाषा के लिए सर्वथा उपयुक्त था। इसीलिए उसका ६० प्रतिशत काव्य वर्णवृत्त में निबद्ध पाया जाता है। प्राकृत और अपभ्रंश में भी वर्णवृत्त का थोड़ा-बहुत प्रयोग होता रहा। प्राकृत भाषा में तो गण-विपर्यय प्रायः नहीं मिलता। पर प्राकृत से अधिक विश्लेषणात्मक होने के कारण अपभ्रंश भाषा वर्णवृत्त के गणों के कठोर शासन का भार वहन करने में असमर्थ सिद्ध होने लगी। फलस्वरूप अपभ्रंश के कवियों ने एक गुरु की जगह दो लघु तथा दो लघु के स्थान पर एक गुरु रखने की स्वच्छंदता ग्रहण की। इस प्रकार गण-विपर्यय के द्वारा उन्होंने वर्णवृत्त को एक प्रकार से मात्रिक रूप प्रदान किया। अपभ्रंश (अवहट्ठ) में रचित विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' में तो यह प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती ही है, चंदबरदाई ने भी कुछ वर्णवृत्तों में जहाँ-तहाँ ऐसी स्वच्छंदता ली है। केशव के पद्यों में भी दो-चार स्थल ऐसे मिल जाते हैं। दो-चार उदाहरणों से मेरे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगी।

(क) कडिबद्ध-चल-चीरिआ-चिंघ-जालाइ ।
करधरिय-विप्फुरिय कत्तिय कवा लाइ ।

—हिन्दी काव्यधारा—सं० ; राहुल : पुष्पदंत, पृ० २१८

यहाँ सारंग छंद (त त त त) में रेखांकित दो-दो वर्ण एक-एक गुरु के लिए आये है।

(ख) एंत गच्छंत चिटढंत बहु सज्जणं
लेत वियरंत सुयसंत जण रंजणं

—हि०का०धा०—राहुल (हरि भद्रसूरि) पृ० ३६०

यहाँ स्रग्विणी (र र र र) छंद में रेखांकित दो-दो लघु एक-एक गुरु के लिये रक्खे गए हैं।

(ग) अधर मधुर बिंब, कंठ कलकंठ रावे ।
दलित दलक भ्रमरे, भ्रिग भ्रकुटीव भावे ।

—पृथ्वीराज रासो : स० ४५/१२०

यहाँ मालिनी छंद (न न म य य) में रेखांकित दो-दो लघु एक-एक गुरु के लिए आए हैं।

(ख) न आहव माहव संभु करे।
बाणासुर जुज्झइवत्त भरे।

—कीर्त्तिलता : पल्लव ४/२३७

यहाँ तोटक (स स स स) में रेखांकित 'नं' और 'बा' दो लघु के स्थान पर रक्खे गए हैं।

(ङ) बहु दाम सँवारहि धाम जती।
विषया हरि लीन्हि न रहि विरती।

—मानस उत्तरकांड, पृ० ६३३

यहाँ तोटक में रेखांकित दो लघु एक गुरु के लिए व्यवहृत हुआ है।

(च) पाँछे मघवा मोहि शाप दई।
गंधर्व ते राक्षस देह भई।

—रामचंद्रिका : प्रकाश १२/३४

यहाँ तोटक में रेखांकित गुरु दो लघु के लिए आया है।

(छ) जगदीश अब रक्षा करो।
विपरीत बात सबै हरो।

—रामचंद्रिका : प्रकाश ४/१७

यहाँ संयुता छंद (स ज ज ग) में रेखांकित दो लघु (अब) एक गुरु के लिए और एक गुरु (र) दो लघु के लिए आए हैं।

(ज) कहाँ आज मौला वकस वाजपेई।
कहाँ आज हैं छेन मोहन गुसाईं।

—भारतेंदु ग्रंथावली : भाग २, भारतभिक्षा

यहाँ भुजंगप्रयात (य य य य) में रेखांकित दो-दो लघु एक-एक गुरु के स्थान पर रक्खे गए हैं।

अपभ्रंश काव्य से लेकर भारतेंदु तक संस्कृत वर्णवृत्त की जो गति-विधि दीख पड़ती है, उससे यह स्पष्टतया विदित होता है कि वे धीरे-धीरे मात्रिक रूप धारण कर रहे थे। द्विवेदी-युग में उन पर फिर से गणबद्धता का कठोर

मेंसन कायम हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया छायावाद में हुई। प्रसाद ने तो उन्हें गणवद्ध रूप में ही प्रस्तुत किया। पर अन्य छायावादियों ने उन्हें मात्रिक रूप श लिखा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छायावाद का यह प्रयास भी प्राचीन परम्परा से पृथक् नहीं।

८. तुक-योजना के नए ढंग

वाल्मीकि रामायण के कतिपय पद्यों (सुंदर कांड के पंचम अध्याय के २७ पद्य) स्तोत्रों और जयदेव के 'गीतगोविन्द' के गीतों के अतिरिक्त संस्कृत में तुकांत पद्य उपलब्ध नहीं होता। सारा वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य भिन्न तुकांत कविता से भरा पड़ा है। पालि और प्राकृत साहित्य की भी यही दशा है। स्तोत्र और गीतगोविन्द अपभ्रंश के उत्तरकाल की रचनाएँ हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश-काव्य से तुक का प्रचलन हुआ और तुक पद्य का एक अनिवार्य अंग बन गई। फलतः अपभ्रश का सारा साहित्य अंत्यानुप्रास से विभूषित हो उठा। अपभ्रंश कवियों ने तुक को इतना महत्त्व दिया कि पादांत तुक के साथ अनेक छंदों में अंतर्तुक को भी अनिवार्य बना दिया। अपभ्रंश से विकसित होने के कारण हिन्दी ने भी वह प्रभाव ग्रहण किया। फलस्वरूप अपभ्रंश के समान हिन्दी का प्राचीन साहित्य भी सम्पूर्णतः अंत्यानुप्रास से युक्त है। अपभ्रंश में अंत्यानुप्रास (तुक) का क्रम प्रायः एक ही ढंग का रहा; जिसमें पहले चरण का दूसरे से, और तीसरे का चौथे से अनुप्रास मिलता चलता था। हिन्दी में भी इसी तुक-योजना की (युग्मक अंत्यानुप्रास[१] की) प्रधानता रही। पर उसने कवित्त और सवैये के चारों चरणों में समान तुक को अनिवार्य बना दिया। अपभ्रंश में कवित्त-जैसा कोई छंद लिखा ही नहीं गया और सवैये में चारों चरणों में समान तुक का कोई आग्रह नही रहा[२]। हिन्दी में इन दोनों छंदों के चारों चरणों में समान तुक को (ललित अंत्यानुप्रास[३] को) रखना एक नियम बन गया। पर इस नियम का उल्लंघन भी प्राचीन और आधुनिक—दोनों साहित्यों में कहीं-कहीं पाया जाता है।

केशव की 'रामचंद्रिका' में दो सवैये (प्रकाश १६/११.१४) ऐसे प्राप्त होते हैं, जिनके चारों चरण समतुकांत नही है। यथा—

---

१ + ३. युग्मक और ललित नाम डॉ० शुक्ल ने दिए हैं।
देखिये—आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २२२।

२. द्रष्टव्य: प्रा० पैं०, दुर्मिला २/२०८, २०६, और किरीट २/२१०-२११।

(क) राम को काम कहाँ ? रिपु जीतहि, कौन कबे रिपु जीत्यो कहाँ।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्ब हर्‌यो, द्विज दीन महा।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्रानन हैहय राज कियो।
हैहय कौन ? वहै बिसर्‌यो जिन खेलत ही तोहि बाँधि लियो।
—रामचंद्रिका, प्र० १६/११

आधुनिक कवियों में मिश्रबंधु, मन्नन द्विवेदी एवं जयशंकर प्रसाद के निम्नांकित कवित्त सवैयों में इस नियम का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है। यथा—

(क) कहाँ दिनकर कुल जगत विदित कहाँ
प्रतिमा अलप वारी मति मम रंक है।
केवट विहीन चहै केवल उडुप चढ़ि
तरन अपार मनु जलधि निसंक है।
मंद मति ऐसो तऊ कवि जस लेन चहौं
औसि जग हँसि है विलोकि मो ढिठाई को।
ऊँचे फल हेत जिमि वामन उठाय कर
केवल प्रकासत महान मूढ़ताई को।
—मिश्रबंधु (क० कौमुदी: रघुसंभव से, पृ० ३४२)

(ख) हरियाली निराली दिखाई पड़े
शुभ शांति सभी थल छाई हुई।
पति संजुत सुंदरी जा रही है,
श्रम चिंतित ताप सताई हुई ॥१॥
सरिता उमड़ी तट जोड़ी खड़ी
अति प्रेम से हाथ मिलाये हुए।
सुकुमारी सनेह से सींचती है,
वह प्रीतम भार उठाये हुए ॥२॥
—मन्नन द्विवेदी (क० कौमुदी : चिंता, पृ० ४२४)

(ग) जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी
तब क्यों फिर बात बनाने लगे।
सब रीति प्रतीति उठी पिछली
फिर भी हँसने मुसकाने लगे।
मुख देख सभी सुख खो दिया था
दुख मोल इसी सुख को लिया था।

. . . सर्वस्व ही तो हमने दिया था
तुम देखने को तरसाने लगे।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, तृतीय अंक, पृ० ६०)

इन युग्मक और ललित अंत्यानुप्रास के साथ हिन्दी पद-साहित्य के अन्तर्गत अनेक पदों में एक प्रकार की तुक-योजना और मिलती है; जिसे आच्छादित अंत्यानुप्रास कह सकते हैं। ललित अंत्यानुप्रास में समतुकांतता चार चरणों में ही होती है; पर यह पद के समस्त चरणों में, चाहे उनकी संख्या जितनी हो, समान अनुप्रास का आकांक्षी है। प्राचीन साहित्य में तुक-योजना के ये ही तीन ढंग सामान्यतः प्रचलित थे।

इन तीनों ढंगों के अतिरिक्त सूर-सागर में दो नए ढंग भी दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

(क) रजनी अति प्रेम पीर,
वन गृह मन धरै न धीर।
वासर मग जोवत उर
सरिता वही नैर नीर

—सूरसागर, द्वि० सं० (ना० प्र० सभा) पद ४२२३

यहाँ प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरण समतुकांत हैं, और तृतीय तुकविहीन है।

(ख) सरद सुहाई आई राति। दुहुँ दिसि फूलि रही वन-जाति
देखि स्याम मन सुख भयौ।
ससि गो मंडित जमुना कूल। वरषत विटप सदा फल फूल।
त्रिविध पवन दुख दवन है।

—सूरसागर, पद १७६८

यहाँ प्रथम और द्वितीय चरण समतुकांत हैं और तृतीय तुक विहीन है।

इन प्रकारों के अतिरिक्त प्राचीन हिन्दी साहित्य में तो तुक का और कोई क्रमायोजन नहीं मिलता। पर आधुनिक युग के कवियों ने इस क्षेत्र में भी थोड़ी नवीनता प्रदर्शित की है। यथा—

(क) सावन परम सुहावन, पावन सोभा जोय।
सो विन तुम्हरे आवन, रह्यो भयावन होय।

—श्रीधर पाठक (क० कौ०, घनविनय, पृ० १२०)

यहाँ दोहरा के विषम चरणों में तुक-योजना की गई है।

(ख) बातें न मेरी भूल जाना, ध्यान रखना है कली।
सब का बदलता है जमाना, सच समझना है कली।

—रामचरित उपाध्याय (क० कौ०, कली, पृ० २७६)

हरिगीतिका के पूर्वार्द्ध में इस प्रकार की तुकयोजना संभवतः पहली बार उपाध्याय जी ने ही की है।

(ग) श्री राधावर निज जन-बाधा सकल नसावन।
जाकौ ब्रज मनभावन जो ब्रज को मनभावन।
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुंज।
मोद भरन उर सुख करन, अविचल आनँद पुंज।
रँगीलो साँवरो।

—सत्य नारायण (क० कौ० भ्रमरदूत, पृ० ४१३)

रोला और दोहा के चरणों को मिला कर तथा दस मात्रा की टेक देकर बनाए गए अनुच्छेद का प्रयोग प्राचीन काल में सूरदास तथा नंददास ने और आधुनिक युग में राधाकृष्ण दास[1], लोचन प्रसाद पांडेय[2] तथा सत्यनारायण 'कविरत्न' ने किया है। सत्यनारायण ने दोहे के विषम चरणों में भी तुक रक्खी है, यही नवीनता है।

यह तो पाद-मध्य तुक की बात हुई। आधुनिक युग में उस रुबायात तुक (क क ख क वाली तुक) की भी योजना हुई है, जिसका प्रयोग सूरदास ने केवल एक पद में किया था। यथा—

(क) चित्त के चाव, चोचले मन के,
वह बिगड़ना घड़ी-घड़ी बन के,
चैन था, नाम था न चिंता का,
थे दिवस और ही लड़कपन के।

—गया प्रसाद शुक्ल (क० कौ० लड़कपन, पृ० ३७६)

(ख) आँख है बेचैन रहती हर घड़ी,
आँसुओं की है लगी रहती झड़ी।

१-२. कविता-कौमुदी : प्रताप विसर्जन, पृ० १६०, आत्म त्याग, पृ० ४५८।

यत्न कर कर थक गए निकली नहीं,
हाय ! कैसी किरकिरी इसमें पड़ी ।
—गोपालशरण सिंह (क० कौ० आँख की किरकिरी, पृ० ५२४)

द्विवेदी युगीन कवियों के बाद ऐसी तुक-योजना छायावादियों ने भी की। प्रसाद के 'झरना' के परिचय और 'कामायनी' के स्वप्न सर्ग में इसी प्रकार की तुक-योजना मिलती है। उन्होंने तो राज्यश्री में प्रयुक्त सवैये में भी ललित अंत्यानुप्रास की जगह रुबायात तुक का व्यवहार किया है। (देखिए पीछे) निराला के 'परिमल' की 'नयन' कविता में ऐसी ही तुक मिलती है। पंत के कतिपय पद्यों (पल्लव-पृ० ६, १६, २७; ग्राम्या : गाँव के लड़के; आधुनिक कवि : कलरव) में यह तुक उपलब्ध होती है। यथा—

वे ढाल ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रही मधुर सपने
श्रम-जर्जर विधुर चराचर पर
गा गीत स्नेह-वेदना सने ।
—आ० कवि : कलरव, पृ० ६७

महादेवी में इस प्रकार की तुक-योजना नहीं मिलती ।

इस रुबायात तुक का प्रयोग यों तो सूरसागर के तीन पद्यों में मिलता है। पर यह उमर खैयाम की रुबाइयों की उल्लेखनीय विशेषता है। अंग्रेजी साहित्य में फिट्ज जेराल्ड-द्वारा अनुवादित खैयाम की रुबाइयों के अतिरिक्त ऐसी तुक-योजना देखने में नहीं आई। सूरसागर के इतने पदों के बीच एक पद के तीन पद्यों पर आधुनिकों की दृष्टि गई हो; इसकी संभावना कम देखकर यही अनुमान किया जा सकता है कि यह फारसी साहित्य का प्रभाव है।

उर्दू-फारसी साहित्य का दूसरा प्रभाव है—गजल तुक। इसमें प्रारंभिक दो चरणों में जो तुक रहती है, वही तुक एक-एक पंक्ति के बाद, जो अतुकांत होती है, अंत तक चलती है। गजल में ऐसा प्रयोग काफिया [1] और रदीफ [2]

---

१. काफिया चरणांत में रदीफ के पूर्व का वह सानुप्रास शब्द है, जो सदैव बदलता जावे और उसका अर्थ भी बदलता जावे ।

२. रदीफ—वह एक या अनेक शब्द जो निरंतर चरणों के अन्त में आते जावे उनका एक ही अर्थ रहे ।

—छंदः प्रभाकर, पृ० २४१

के साथ होता है। पर हिन्दी में कुछ पद्यों में तो इस नियम का अक्षरशः पालन हुआ है और कुछ में तुक का केवल वह क्रमायोजन रक्खा गया है, जैसा गजल में होता है। दोनों के एक-एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी।

(१) यह स्वार्थ-तम का परदा अब तो उठा दे मोहन !
अब आत्म-त्याग-रवि की आभा दिखा दे मोहन !
पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति लाली,
सुसमीर एकता की अब तो चला दे मोहन !
मृदु प्रेम की सुरभि को पहुँचा दे हर तरफ तू,
मन-पल्लवों में आशा-बूँदें बिछा दे मोहन !
सद्भाव पंकजों को अब तो जरा हँसा दे,
जातीयता-नलिनि का मुखड़ा खिला दे मोहन !

—बदरीनाथ भट्ट (क० कौ०, पृ० ५४०)

यहाँ उठा दे, दिखा दे आदि काफियाँ हैं और मोहन रदीफ है।

(२) सौभाग्य-श्री हमारी सुख-मूल मोददायी,
जब से गई यहाँ से फिर लौट कर न आई !
क्यों रुष्ट वह हुई थी क्या तुष्ट अब न होगी ?
बीती अनेक सदियाँ खलती बहुत जुदाई।
बल से उसे किसी ने क्या हर लिया यहाँ से ?
या मोह-वश हमीं से वह थी गई चिढ़ाई ?
किंवा किसी कुटिल ने छल से उसे फँसाया ?
या मुग्ध हो किसी पर वह हो गई पराई ?

—गोपालशरण सिंह (क० कौ०, भाग्यलक्ष्मी)

यहाँ काफिया और रदीफ जैसी कोई चीज नहीं हैं। पर तुक का क्रमायोजन गजल के ढंग का ही है। हरिऔध ने 'पद्य-प्रसून' में कई कविताएँ इसी गजल-तुक में लिखी हैं। छायावादियों में प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी—सबकी रचनाओं में तुक का ऐसा क्रमायोजन उपलब्ध होता है। इनके ऐसे प्रयोग के कुछ स्थल निम्नलिखित हैं—

प्रसाद—कानन कुसुम (प्रभो, सरोज, मोहन। उर्दू छंद में काफिया-रदीफ के साथ)

लहर--(शशि-सी वह सुन्दर रूप विभा पृ० ४२, अरे आ गई है भूली-सी, पृ० ४४, निधरक तू ने ठुकराया, पृ० ४६--हिन्दी छंदों में बिना काफिया-रदीफ के)

ध्रुवस्वामिनी--(अस्ताचल पर युवती संध्या--बिना काफिया-रदीफ के)

पंत--वीणा-पद्य ४, १४, २८, ४४, ५८, ६१ (केवल क्रमायोजन)

पल्लव--विसर्जन (केवल क्रमायोजन)

ज्योत्स्ना--लहरों का गीत (केवल क्रमायोजन)

महादेवी--रश्मि (आशा, दुविधा, उलझन--केवल क्रमायोजन)

निराला--वेला के अनेक पद्य (उर्दू छंदों में काफिया-रदीफ के साथ)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तुक-सम्बन्धी जो नया ढंग छायावाद में दिखलाई पड़ता है, वह सर्वथा मौलिक नही। द्विवेदी युगीन कवियों ने भी ऐसा प्रयोग किया था। अवश्य उसे आगे बढ़ाने में छायावादियों ने पूर्ण योग दिया है। आश्चर्य है, आधुनिक युग में रुबायात और गजल तुक के इतने प्रयोगों को देखते हुए भी डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना' नामक ग्रंथ में जहाँ कई प्रकार के अंत्यानुप्रासों का नामकरण किया है,[1] वहाँ इनका कोई संकेत तक नही किया।

८. तुक के विशिष्ट, क्रमायोजन द्वारा अनुच्छेद का निर्माण

वैदिक साहित्य में प्रयुक्त मुख्य छंद सात हैं--गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुभ, वृहती, त्रिष्टुभ, जगती और पंक्ति। गायत्री और उष्णिक में तीन, अनुष्टुभ्, वृहती, त्रिष्टुभ और जगती में चार; तथा पंक्ति में पाँच चरण होते हैं। इन मुख्य छंदों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य में २ (द्विपाद गायत्री आदि) (अत्यष्टि, धृति) और ८ चरण वाले (अतिधृति आदि) छंद भी उपलब्ध होते हैं।[2] इस प्रकार वैदिक साहित्य में २, ३, ४, ५, ६, ७ और ८ चरण वाले छंद प्रयुक्त हुए हैं। सारा वैदिक साहित्य भिन्नतुकांत पद्यों में लिखा गया है। अतः वहाँ अंत्यानुप्रास के क्रमायोजन की कोई बात ही नही है। लौकिक संस्कृत साहित्य में वैदिक संस्कृत की पादगत यह स्वच्छंदता बिलकुल विलुप्त हो गई। यहाँ प्रत्येक छंद में चाहे वह सम हो, अर्द्धसम या विषम, चार चरण निश्चित कर दिए गए।

अपभ्रंश साहित्य में पादगत वैदिक स्वच्छंदता एक बार फिर आई।

---

१. द्रष्टव्य—आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २२१-२२६।

२. " " पृ० ७५-७६।

फलतः वहाँ द्विपदी, चतुष्पदी, पंचपदी, षट्पदी, सप्तपदी, अष्टपदी, नवपदी, दशपदी, एकादशपदी तथा षोडशपदी छंदों की उद्भावना की गई।[1] इनमें द्विपदी, चतुष्पदी और पंचपदी को छोड़कर शेष प्रगाथ (मिश्र) छंद हैं; जिनमें तत्तत् पाद संख्या दो-तीन छदों के मिश्रण पर अवलंबित है। इस प्रकार ये सभी एक-एक अनुबंध या अनुच्छेद (Stanza) हैं, जिनमें युग्मक अंत्यानुप्रास ही दिखलाई पड़ता है। तुक का कोई विशेष क्रमायोजन नहीं।

हिन्दी ने इन सभी अनुच्छेदों का परित्याग कर दिया। लौकिक सस्कृत की तरह उसने केवल चतुष्पदी को महत्त्व दिया। अपभ्रंश का द्विपदी झूलना भी हिन्दी में चतुष्पदी बन गया। षट्पदी अनुवन्ध में उसने केवल छप्पय और कुंडलिया (जो अपभ्रंश में दोहे के चार चरणों के आधार पर अष्टपदी माने गए हैं) को ग्रहण किया। यह बात हिन्दी में चंदबरदाई से लेकर भारतेंदु-द्विवेदी-युग तक दिखलाई पड़ती है। भारतेंदु ने चतुष्पदी को छोड़कर किसी प्रकार के अन्य अनुबन्ध को प्रायः प्रश्रय नही दिया। और चतुष्पदी में भी वे युग्मक तथा ललित अंत्यानुप्रास की ही योजना करते रहे। गजल तुक का प्रयोग भी उन्होंने उर्दू छंदों में लिखित पद्यों में ही किया हैं। हाँ, परम्परागत पद की रचना उन्होने अवश्य की। और ये पद बहुत अश तक अनुच्छेद कहे जा सकते है। पर पदो में जिस प्रकार की तुक-योजना होती आ रही थी, उसी का निर्वाह उन्होने भी किया।

द्विवेदी युग में भी चार चरण वाले पद्य ही लिखे जाते रहे। पर उनमें की गई तुकबंदी में कुछ नवीनता भी दृष्टिगोचर होने लगी। द्विवेदी-युग पर उर्दू और अंग्रेजी का प्रभाव पड़ने लगा था। अतः इन दोनों भाषाओं की अनुबंध-रचना पर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

उर्दू में २ से लेकर १० चरण तक के अनुच्छेद होते हैं, जो बंद कहे जाते हैं। २ चरण वाले शेर, ३ चरण वाले मुसल्लस, ४ वाले मुरब्बा या किता, ५ वाले मुखम्मस, ६ वाले मुसद्दस, ७ वाले मुसब्बा, ८ वाले मुसम्मन, ९ वाले मुतस्सा और १० वाले को मुअश्शर कहते है।[2] इन बंदों में तुकबंदी का ढंग इस प्रकार है—

---

१. द्रष्टव्य—कवि-दर्पण, द्वितीय उद्देश्य।

२. " छंदःप्रभाकर : भानु, पृ० २४१।

(१) शेर---इसके दोनों चरण या तो समतुकांत होते हैं या भिन्न-तुकांत। यथा--

(क) पास जा बैठा जो मै कल तेरे एक हमनाम के।
रह गया बस नाम सुनते ही कलेजा थाम के।
--जुरअत।

(ख) शाम से ही कुछ बुझा सा रहता है,
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का
--मीर

(२) मुसल्लस—इसके चरणों में रदीफ और काफ़िया एक समान भी हो सकते हैं और अलग-अलग भी। किन्तु प्रत्येक बन्द के तीसरे चरण का रदीफ और काफिया समान होना चाहिए। यथा--

भूके ग़रीब दिल की खुदा से न लगन हो।
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो।
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ।
--नजीर अकबराबादी

(३) मुरब्बा या किता---यह गजल या कसीदे का टुकड़ा है। अत: इसमें ललित (क क क क) अथवा दूरांतर (क ख ग ख) दोनों प्रकार के अंत्यानुप्रास रक्खे जा सकते हैं। यथा—

मुरब्बा---पैदा करेंगे शायद तासीर कुछ दुआ में,
लिपटे हैं हिन्दू मुस्लिम भगवान और खुदा में।
मोटर पर बैठकर हम घूमा किए हवा में,
हिन्दोस्ताँ का सोना पहुँचा अमेरिका में।
--'कंस' बनारसी।

किता--मीर ने गर तेरा मजमून दो आवे का लिया,
ऐ बका! तू भी दुआ दे जो दुआ देनी हो।
या खुदा! मीर की आँखों को दो 'आवा' कर दे
और बीना का यह आलम हो कि तरबीनी हो।
--बका।

(४) मुखम्मस---इसके चार चरणों का रदीफ-काफिया एक होता है और पाँचवें का इससे भिन्न। किन्तु संपूर्ण बंदों के पाँचवें मिसरे

(चरण) का रदीफ और काफिया एक ही होता है। यथा--

हालत तो यह कि मुझको ग़मों से नहीं फ़ुराग़।
दिल सोज़िशे दरूनी से जलता है जूँ चिराग़।
सीना तमाम चाक है सारा जिगर है दाग़।
है नाम मजलिसों में मेरा 'मीर' बेदिमाग़।
अज बस कि कमदिमागी ने पाया है इश्तिहार।
—मीर

(५) मुसद्दस—इसके पहले चार मिसरे एक ही रदीफ-काफिये के होते हैं। और बाद के दो मिसरे दूसरे रदीफ-काफिये के। यथा--

बशर को है लाजिम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे।
खुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि है आरजी जोर कमजोर सारे।
अड़े वक्त तुम दाएँ वाएँ न झाँको।
सदा अपनी गाड़ी को तुम आप हाँको।
—हाली

भारतेन्दु (प्रेम-तरंग, पद्य ८६) बदरीनारायण चौधरी (क० कौ०, पद्य १) तथा हरिऔध (पद्य-प्रसून की कई कविताएँ) में भी तुक का ऐसा क्रमायोजन मिलता है।

(६) मुअश्शर—इसके पहले आठ मिसरे एक ही रदीफ-काफिये के होते हैं, और वाद के दो मिसरे दूसरे रदीफ-काफिये के। यथा—

पैदा हुआ था कैश जब अपने पेदर के घर।
माँ बाप को हुई थी खुशी सब से बेस्तर।
कुम्बे के लोग बैठे थे बाहम सब आन कर।
एक धूम मच रही थी खुशी की इधर-उधर।
चूमे था बाप कैश के हर लेहज़ा चश्मोसर।
रखते थे हाथों छाँव उसे गर्चे बेखतर।
माँ भी लिये फिरे थी उसे अपने दोष पर।
फरजंद की खुशी में लुटाती थी सोमोजर।
लेकिन वो माँ की गोद में आकर न सोता था।

हर वक्त शोर करता था हर लेहज़ा रोता था।
—नजीर अकवराबादी।

सात, आठ और नौ चरण वाले अनुच्छेद, खोज करने पर भी, प्राप्त नहीं हो सके, इसका मुझे खेद है। पर जो अनुच्छेद मिल सके, उनका अध्ययन कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उर्दू में अंत्यानुप्रास का कोई विशेष क्रमा-योजन नहीं होता। पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि युग्मक और ललित अंत्यानुप्रास के साथ दूरांतर अंत्यानुप्रास (क ख ग ख) की योजना उर्दू में प्रचलित है जो द्विवेदी-युग के पूर्व हिन्दी साहित्य में केशव के कुछ पद्यों में ही उपलब्ध होता है। यहाँ यह वात भी ध्यातव्य है कि उर्दू के इन बंदों के लिए कोई एक वहर (लय) निर्दिष्ट नही है। सभी अनुच्छेद विभिन्न वहरों में लिखे जाते हैं।

उर्दू साहित्य में प्रयुक्त अनुच्छेदों का अध्ययन कर अब जरा अंग्रेजी में में प्रचलित अनुच्छेदों (Stanzas) पर भी एक नजर डाल लेना चाहिए। अंग्रेजी में भी उर्दू के समान २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० तथा १४ चरण (line) वाले अनुच्छेद व्यवहृत होते हैं, और जिनमे उर्दू के विपरीत अंत्यानुप्रास का विशिष्ट क्रमायोजन रहता है। पर यह क्रमायोजन कवि की इच्छा पर निर्भर है। इसके लिए कोई नियम निश्चित नही है। इन सभी अनुच्छेदों के लिए भी कोई विशेष छंद (metre) निर्दिष्ट नहीं है। उर्दू के समान ये भी विभिन्न छंदों में लिखे जाते हैं। हाँ, उर्दू में जहाँ किसी एक विशेप अनुच्छेद में आद्योपांत एक ही वहर प्रयुक्त होती है, वहाँ अंग्रेजी में किसी विशेष अनुच्छेद के निर्माण में दो-तीन छंदों का उपयोग भी किया जा मकता है। अंग्रेजी में दो चरण वाले अनुच्छेद को कॉपलेट (Couplet), तीन वाले को ट्रिपलेट (Triplet), चार वाले को क्वाटरेन (Quatrain), पाँच वाले को क्वैनटेट (Quintette), छह वाले को सेक्सटेन (Sextain), सात वाले को राइम रायल (Rhyme Royal), आठ वाले को ऑटव राइमा (Otl ıva Rima), नव वाले को स्पेंसेरिन स्टैन्जा (Spenorian Stanza) और १४ वाले को सॉनेट (Sonnet) कहते हैं। अंग्रेजी में १० चरण वाले अनुच्छेद भी मिलते हैं। यद्यपि आचार्यों ने उसे कोई नाम नहीं दिया है। आगे हिन्दी पद्य के साथ प्रत्येक अनुच्छेद का उदाहरण देकर यह देखने का प्रयास किया जायगा कि किसमें अंत्यानुप्रास के क्रमायोजन का क्या ढंग है ? और हिन्दी के कवि ऐसे प्रयोग में अंग्रेजी से कहाँ तक प्रेरित हुए हैं।

(१) कॉपलेट (Couplet)—इसके दोनों चरण समतुकांत होते हैं। यह सामान्यत: अनुच्छेद (Stanza) में परिगणित नहीं होता। पर अनेक द्विपदियों (Couplets) में लिखित अनुच्छेद (paragraph) के बाद कुछ जगह छोड़ कर लिखी गई निम्नांकित दो पंक्तियाँ—

These delights if thou Canst give
Mirth, with thee I mean to live
—Milton (L' allegero)

स्टैन्जा मानी जा सकती है; क्योंकि इन दोनों में अर्थ एक तरह से पूर्ण हो जाता है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में किसी छंद की पूर्णता चार चरणों में मानी जाती थी। फिर भी सूर,[1] तुलसी[2] आदि कवियों में अर्द्धाली (दो चरण) का प्रयोग उपलब्ध हो जाता है। आधुनिक कवि तो अर्द्धाली का प्रयोग बेरोक-टोक किया करते हैं। यथा—

(क) फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से;
किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार से।
(ख) सखि, गोमुखी गंगा रहे, कुररीमुखी करुणा यहाँ;
गंगा जहाँ से आ रही है, जा रही करुणा वहाँ।
—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सर्ग ६)

यहाँ 'क' मरहट्ठामाधवी की और 'ख' हरिगीतिका की एक-एक अर्द्धाली है, पर दोनों स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हुई हैं। प्रसाद की 'लहर' की निम्न दो पंक्तियों—

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुर छा जाने दो।
जीवनधन! इस जले जगत को वृंदावन बन जाने दो।
(पृ० २८)

के साथ भी वही बात है। आधुनिक गीतों में तो टेक के साथ दो चरण वाले अनुच्छेद बहुतायत से मिलते हैं।

१. सूरसागर, पद ४८०४-४८०५ (चौपाई की अर्द्धाली के साथ हरिगीतिका के चार चरण)।
२. (क) विनय पत्रिका : पद १३५ (योगकल्प की अर्द्धाली के साथ हरिगीतिका के चार चरण)।
(ख) मानस : बालकांड : प्रारम्भ (६½, ५½, ४½ चौपाई के पद्यों के अन्तर्गत)।

(२) ट्रिपलेट (Triplet)—इसके तीनों चरण समतुकांत होते हैं। यथा—

A face that's best
By its own beauty drest,
And can alone command the rest.
—Crashaw (Wishes for the supposed mistress)

इस प्रकार की छोटी-बड़ी पंक्तियों से निर्मित अनुच्छेद का भारतेंदु ने भी प्रयोग किया है—

दूर दूर चला जा तू भँवरवा।
आउ छली मत मेरे निअरवा।
हरीचंद नाहक तू डारत प्रेम-फाँस अवलन के गरवा।
—भा० ग्रं० : होली, ठुमरी, पद ५८

पद्धरि में निबद्ध तीन समतुकांत चरणों का अनुच्छेद निम्नलिखित है—

किसने रे क्या क्या चुने फूल,
जग के छवि-उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !
—पंत (गुंजन, पद्य ५)

पंत के काव्य में ऐसा प्रयोग 'वीणा' के पद्य ५३, ५४, ५६, ५७ और ६०, 'गुंजन' के २, ५ और १५, 'ग्राम्या' के 'नहान' तथा स्वर्णधूलि' के 'स्वप्न-बन्धन' में प्राप्त होता है। टेक के साथ गीतों में तो ऐसा प्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलता है। प्रसाद और महादेवी ने भी ऐसा प्रयोग किया है। कुछ प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

प्रसाद—पतित पावन (कानन-कुसुम) कोमल कुसुमों की एक रात (लहर) उपेक्षा करना (लहर)

महादेवी—सुधि, अंत (रश्मि)

(३) क्वाटरेन (Quatrain)—इसमें अंत्यानुप्रास का क्रमायोजन कई प्रकार से होता है। यथा—

(a) How happy is he born or taught
That serveth not another's will;
Whose armour is his honest thought,
And silly truth his highest skill.
—H. Watton (Character of a happy life)

आँख का आँसू ढलकता देखकर
जी तड़प करके हमारा रह गया।
क्या गया मोती किसी का है बिखर
या हुआ पैदा रतन कोई नया।
—हरिऔध (आँख का आँसू)

इसे डॉ० शुक्ल ने गुंफित अंत्यानुप्रास कहा है। इसमें क ख क ख का क्रमायोजन रहता है। छायावादियों में भी ऐसा प्रयोग मिलता है। कुछ प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं——

निराला——परिमल (अध्यात्म फल)
प्रसाद——झरना (होली की रात)
पंत——पल्लव (परिवर्त्तन के अनेक पद्य) ग्राम्या (ग्रामनारी)

(b) O saw ye Bounie Lesley
As she gaed o'er the border ?
She's gane, like Alexander,
To spread her conquests farther.
—R. Burns (Bounie Lesley)

इसे डॉ० शुक्ल दूरांतर अंत्यानुप्रास कहते हैं। इसमें क ख ग ख का क्रम रहता है। केशवदास ने 'रामचंद्रिका' के कई पद्यों में ऐसे अंत्यानुप्रास की योजना की है। यथा——

आसावरी माणिक कुंभ सोभै।
अशोक लग्ना वन-देवता-सी।
पलाशमाला कुसुमालि मध्ये।
वसंत लक्ष्मी सुभ लक्षणा-सी।
——प्रकाश २०/६

आधुनिक युग में तो ऐसा प्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलता है। छायावाद में छोटे छंदों में लिखे पद्यों में प्रायः यही क्रमायोजन व्यवहृत हुआ है। प्रसाद की 'कामायनी' के श्रद्धा और आनन्द सर्गो में, 'आँसू' में तथा 'झरना' की अनेक कविताओं में; निराला की 'सरोज-स्मृति' में पंत के 'उच्छ्वास' एवं 'आँसू' के अनेक पद्यों में तथा महादेवी की 'नीरजा' और 'रश्मि' की अनेक कविताओं में ऐसा प्रयोग कोई आसानी से देख सकता है। यहाँ एक उदाहरण 'झरना' से दिया जाता है—

नदी की विस्तृत वेला शांत,
अरुण मंडल का स्वर्ण विलास;
निशा का नीरव चंद्र-विनोद,
कुसुम का हँसते हुए विकास।

(c) Ring out the old, ring in the new
Ring, happy bells, across the snow;
The year is going, let him go;
Ring out the false, ring in the true.
—Tennyson (In Memoriam)

डॉ० शुक्ल ने इसे आलिंगित अंत्यानुप्रास नाम दिया है। इसमें क ख ख क का क्रम रहता है। छायावादियों में यह क्रमायोजन निराला और पंत में पाया जाता है। यथा—

प्रथम चकित चुंबन-सी सिहर समीर,
कँपा त्रस्त अम्बर के छोर,
उठा लाज की सरस हिलोर;
ऊषा के अधरों में अरुण अधीर;
—निराला (परिमल : प्रथम प्रभात)

यही तो काँटे-सा चुपचाप
उगा उस तरुवर में सुकुमार
सुमन वह था जिसमें अविकार—
वेध डाला मधुकर निष्पाप।
—पंत (पल्लव : उच्छ्वास, पृ० १३)

(d) I wish I were where Helen lies;
Night and day on me she cries;
O that I were where Helen lies;
On fair kirconnell lea!
—Anon (Fair Helen)

चकित चितवन कर अंतर पार
खोजती अंतरतम का द्वार,
वालिका-सी व्याकुल सुकुमार
लिपट जाती जब कर अभिमान—
—निराला (परिमल : खोज और उपहार)

निराला की 'वेला' के ४थे गीत में भी यह क क क ख का क्रमायोजन है।

(४) क्वैनटेट (Quintette)—इसके अंत्यानुप्रास का क्रमायोजन कई प्रकार से होता है। यहाँ क ख क ख क ख का एक उदाहरण दिया जाता है—

Quit, quit, for shame ! this will not move,
This can not take her;
If of herself she will not love,
Nothing can make her;
The devil take her

—J. Suckling (Encouragements to a lover)

अचानक, यह स्याही का बूँद,
लेखनी से गिर कर सुकुमार
गोल तारा-सा नभ से कूद,
सोधने को क्या स्वर का तार
सजनि ! आया है मेरे पास ?

—पंत (पल्लव : स्याही का बूँद)

यहाँ क ख क ख ग का क्रमायोजन है। कई प्रकार के क्रमायोजन के पाँच चरण वाले अनुच्छेद प्रसाद, पंत और महादेवी में प्राप्त होते हैं। कुछ प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

प्रसाद—लहर (ओ री मानस की गहराई, अशोक की चिंता)

पंत—वीणा (पद्य ५०) पल्लव (उच्छ्वास, पृ० ६, विश्ववेणु, स्याही का बूँद)

महादेवी—नीहार (जो तुम आ जाते एक बार)

(५) सेक्सटेन (Sextain)—इसके क्रमायोजन के भी कई प्रकार हैं। यहाँ क ख ख क ग ग का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

By absence this good means I gain,
That I can catch her,
Where none can watch her,
In some close corner of my brain;
There I embrace and kiss her;

And so I both enjoy and miss her.
—Anon (Present in Absence)

अंग्रेजी के समान हिन्दी कवियों ने भी इसका क्रमायोजन भिन्न-भिन्न ढंग से किया है। क क ख ग ग ख का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देश ज्ञान, शर - खरतर;
छाया ऊपर घन - अंधकार—
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय-धार, ध्वनि हर-हर।
—निराला (तुलसीदास)

छह चरण वाले अनुच्छेद प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी सब में उपलब्ध होते हैं। यथा—

प्रसाद—कानन कुसुम (धर्मनीति—क ख क ख ग ग) लहर (काली आँखों का—क क क क ख ख) झरना (असंतोष, आशालता)

निराला—तुलसीदास, परिमल (स्मृति—क ख क ख ग ग)

पंत—वीणा (पद्य १६) पल्लव (पल्लव, मौननिमंत्रण—क ख क ख ग ग)

महादेवी—नीहार (कौन—क ख ग ख ग घ; उस पार—क क ख ख ग ग; उनका प्यार—क ख ग ख घ घ) रश्मि (पहिचान—क ख ग ख घ घ)

(६) रॉइम रायल (Rhyme Royal)—इसका क्रमायोजन भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण क ख ख क ग ग ग का दिया जाता है।

Weak Lyre ! thy virtue sure
Is useless here, since thou art only found
To cure, but not to wound,
And she to wound, but not to cure,
Too weak too writ thou prove
My passion to remove;
Physic to other ills, thou'rt nourishment to love.
—A. Cowley (A Supplication)

हिन्दी में सात चरण वाला अनुच्छेद निराला, पंत और महादेवी में प्राप्त होता है।

अरी सलिल की लोल हिलोर !..................क
यह कैसा स्वर्गीय हुलास ?..................ख
सरिता की चंचल दृग-कोर !..................क
यह जग को अविदित उल्लास ?..................ख
आ, मेरे मृदु अंग झकोर,............ क
नयनों को निज छवि में बोर,..........क
मेरे उर में भर यह रोर !..............क

—पंत (पल्लव : वीचि विलास)

डॉ० शुक्ल ने इसे प्रगल्भ अंत्यानुप्रास और निराला के 'मैं और तुम' (परिमल) में क ख ग ख घ ङ घ के क्रमायोजन को मंगल अंत्यानुप्रास कहा है।[1] इस प्रकार समान संख्या के चरण वाले अनुच्छेदों को क्रमायोजन के आधार पर नाम देने से नामों की बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जायगी। निराला और पंत की उक्त दोनों कविताओं के अतिरिक्त सात चरण वाले अनुच्छेद का प्रयोग महादेवी ने 'नीहार' के दो पद्यों में (मेरी साध—क ख ग ख घ ङ ङ; फिर एक बार—क क ख ख ग घ घ) में भी किया है।

(७) ऑटव राइमा (ottava Rima)—इसका क्रमायोजन भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। क ख क ख ग घ ग घ का उदाहरण निम्नलिखित है—

Not a flower, not a flower sweet
On my black coffin let there be strown;
Not a friend, not a friend greet
My poor corpse, where my bones shall be thrown
A thousand thousand sighs to save
Lay me, O where
Sad true lover never find my grave
To weep there;

—Shakespeare (Pirge of Love)

आठ चरण वाले अनुच्छेद प्रसाद और पंत में बहुलता से मिलते हैं।

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २२४, २२५।

वह चंद्रहीन थी एक रात,
जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात,
उजले उजले तारक झलमल,
प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल,
धारा बह जाती बिंब अटल,
खुलता था धीरे (पवल) पटल;
चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाँत
सुनती जैसे कुछ निजी बात।

—प्रसाद (कामायनी : दर्शन सर्ग)

इसके अतिरिक्त प्रसाद ने इसका प्रयोग लहर (आह रे वह अधीर यौवन) और झरना (सुधा में गरल) में भी किया है। पंत के पल्लव (शिशु, विश्व व्याप्ति) और गुंजन (भावी पत्नी, पद्य २७, ४४) में आठ चरण वाले अनुच्छेद मिलते हैं।

(८) स्पेंसेरियन स्टैंजा (Spenserian Stanza)

Lo ! I the Man, whose muse whylome did maske,
As time her taught, in lowly shepherds weeds,
Am now enforst, a for unfither taske,
For trumpets strene to chaunge mine oaten reeds,
And sing of Knights and Ladies gentle deeds;
Whose praises having slept in silence long,
Me, all too meane, the Sacred Muse areeds
To blazon broode emongst her learned throng;
Fierce Warres and faithful loves shall moralize my song.

—Spenser (The Faerie Queene)

यहाँ क ख क ख ख ग ख ग ग का क्रमायोजन है। स्पेंसर ने समस्त 'फेयरी क्वीन' की रचना इसी रूप में की है। पर अंग्रेजी में नवपादी अनुच्छेद का निर्माण इससे भिन्न क्रमायोजन में भी होता है। नवपादी अनुच्छेद पंत की 'विश्वछवि' (पल्लव) प्रसाद की कामायनी (इड़ा सर्ग) और महादेवी के 'उन से' (रश्मि) में प्राप्त होता है।

विहग-शावक से जिस दिन मूक
पड़े थे स्वप्न-नीड़ में प्राण ;

अपरिचित थी विस्मृति की रात
नहीं देखा था स्वर्ण विहान।
रश्मि बन तुम आए चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान;
अचानक दी वे पलकें खोल,
हृदय में वेध व्यथा का बान—
हुए फिर पल में अन्तर्धान।
—महादेवी (रश्मि : उनसे)

यहाँ क ख ग ख घ ख ङ ख ख का क्रमायोजन है।

६. दशपादी अनुच्छेद—मिल्टन ने अपनी 'एल एलेगरो' (L' allegero) और 'इल पेंसरोसो' (Il penseroso) दोनों कविताओं के प्रारम्भ में दशपादी अनुच्छेद का प्रयोग किया है। यथा—

Hence, vain deluding joys,
The brood of folly without father bred :
How little you bestead
Or fill the fixed mind with all your toys !
Dwell in some idle brain,
And fancies fond with gaudy shapes possess
As thick and mumber less
As the gay motes that people the sunbeams,
Or likest hovering dreams
The fickle pensioners of Morphens train.
—Milton (Il Penseroso)

यहाँ क ख ख क ग घ घ ङ ङ ग का क्रमायोजन है। छायावादियों में पंत (शिशु-पल्लव) और प्रसाद (अरी वरुणा की शांत कछार—लहर) में दशपादी अनुच्छेद प्राप्त होता है। यथा—

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज !
जगत नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।

स्वर्ग की वसुधा में शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार।
—प्रसाद (लहर, पृ० ७)

यहाँ क क ख ग घ ग ङ च छ च का क्रमायोजन है।

१०. सॉनेट (Sonnet)—इस चतुर्दशपादी अनुच्छेद में दो प्रकार के क्रमायोजन (क ख क ख ग घ ग घ ङ च ङ च छ छ; क ख ख क क ख ख क ग घ ग घ ग घ) प्रचलित हैं। पहले का प्रयोग शेक्सपियर ने और दूसरे का मिल्टन ने किया है। पर अन्य अनुच्छेदों के विपरीत इसमें एक ही छंद का प्रयोग होता है, जिसमें पाँच पर्व (foot) रहते हैं। प्रत्येक पर्व एक ह्रस्व (unaccented) और एक दीर्घ (accented) शब्दांशों (Syllables) के मेल से बनता है। अंग्रेजी में इस छंद को आइम्बिक पेंटामीटर (iambic pentametre) कहते हैं। हिन्दी में भी चतुर्दशपादी अनुच्छेद लिखे गए हैं। पर न तो उसके लिए अंत्यानुप्रास का कोई क्रमायोजन है और न कोई छंद ही निश्चित है। हरिऔध की जो चतुर्दशपादी कविताएँ (सेवा, कुसुमचयन—पद्य प्रसून) मिलती हैं, वे रोला के १२ और उल्लाला के २ चरणों से गठित हुई है, जिनमें आदि से अन्त तक युग्मक अंत्यानुप्रास है। प्रसाद के 'कानन-कुसुम' के 'तुलसीदास' की भी यही दशा है। 'झरना' के 'दीप' और 'प्रियतम' में युग्मक अत्यानुप्रास से युक्त ताटंक के १४ चरण हैं। पंत का 'ताज' और १९४० (आधुनिक कवि) में क्रमशः रोला और समान सवैये के चौदह-चौदह चरण हैं। प्रथम में युग्मक और द्वितीय में ललित-युग्मक अंत्यानुप्रास (१२ में ललित और अन्तिम २ में युग्मक) की योजना है। उनकी 'नौका-विहार' और 'एकतारा' में भी १४-१४ चरणों के अनुच्छेदों का प्रयोग हुआ है, जो पद्धरि-पदपादाकुलक में निबद्ध हैं। इन दोनों में प्रथम दो चरण समतुकांत हैं, फिर चार वार तीन-तीन पंक्तियों में समान अंत्यानुप्रास रक्खा गया है। निराला का 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति' (नये पत्ते) भी रोला में ही निबद्ध है। हाँ, इसमें सॉनेट की तुक का क्रमायोजन भी लक्षित होता है; जो इस प्रकार है—क ख क ख ग घ ग घ ङ च, ङ च छ छ। रोला में लिखित पंत की 'आत्मदया' (अतिमा) का भी यही क्रमायोजन है। अंत्यानुप्रास के विशिष्ट क्रमायोजन के कारण निराला और पंत के उक्त चतुर्दशपादी अनुच्छेद सॉनेट कहे जा सकते हैं; अगर हिन्दी में सॉनेट के लिए रोला छंद निश्चित कर दिया जाय। क्रमायोजन के अभाव में अन्य चतुर्दशपादी को सॉनेट कहना ठीक नहीं। वे 'कवि-दर्पण' के दशपदी,

एकादशपदी, षोडशपदी की परंपरा में देखे जा सकते हैं।

उर्दू, अंग्रेजी और हिन्दी के अनुच्छेदों के इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के आधुनिक कवि अनुच्छेद-निर्माण में उर्दू और अंग्रेजी से अवश्य प्रेरित हुए हैं। क्योंकि प्राचीन काल में चार से अधिक चरण वाला पद्य या अनुच्छेद, तुक के विशिष्ट क्रमायोजन के साथ, हमें प्राप्त नहीं होता। द्विवेदी-युग के कवि अपने छंदों के लिए उर्दू की ओर उन्मुख थे। अतः संभव है दूरांतर अंत्यानुप्रास वाले चतुष्पादी (क ख ग ख) तथा क क क क ख ख अंत्यानुप्रास वाले षट्पादी अनुच्छेदों की प्रेरणा उन्होंने वहीं से पाई हो। पर शेष चतुष्पादी, पंचपादी, षट्पादी आदि अनुच्छेद उर्दू से प्रेरित होकर नहीं लिखे गए हैं, ऐसा असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है। क्योंकि उर्दू में अंत्यानुप्रास का कोई विशिष्ट क्रमायोजन नहीं देखा जाता। अंग्रेजी स्टैंजा (अनुच्छेद) की यह एक उल्लेखनीय विशेषता है। ऐसे क्रमायोजन से युक्त पंचपादी, षट्पादी, सप्तपादी आदि अनुच्छेद छायावाद-युग में ही लिखे गए। छायावाद पर पड़े हुए रोमांटिक काल के अंग्रेजी कवियों के प्रभाव को विद्वानों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। स्वयं पंत ने अपने काव्य पर पड़े इस प्रभाव को मुक्तकंठ से उद्घोषित किया है। अतः अनुच्छेद-निर्माण में भी छायावादी कवियों ने अंग्रेजी से प्रेरणा ग्रहण की है, ऐसा मानना सर्वथा युक्तिसंगत है। अंग्रेजी में ऐसी प्रवृत्ति रोमांटिक काल के बहुत पूर्व विद्यमान थी। यही दिखलाने के लिए मैंने रोमांटिक काल के बहुत पहले के कवियों (एक टेनीसन को छोड़कर) के उद्धरण दिए हैं। रेस्टोरेशन काल (Restoration age) में अंग्रेजी कविता छंदों की विविधता को खोकर द्विपदी (Heroic Couplet) के दृढ़ बंधन में जकड़ गई थी। रोमांटिक कवियों ने उस बंधन को तोड़ कर फिर कविता को पूर्ववत् स्वच्छंद कर दिया। चूँकि रोमांटिक काल में किया गया छंदःप्रयोग बिलकुल नया नहीं था, उसकी केवल फिर से प्रतिष्ठा हुई थी; इसीलिए वहाँ वह क्रांति के नाम से नहीं पुकारा गया। हिन्दी साहित्य में अनुच्छेद का ऐसा निर्माण सर्वथा नूतन था। अतः लोगों ने उसे एक बड़ी क्रांति के रूप में देखा।

१०. कई छंदों के मेल से बने प्रगाथ छंद

वैदिक ऋषियों ने कभी-कभी अपनी वाणी को संयुक्त छंदों (दो छंदों का मिश्रण) में प्रवाहित किया है। ऐसे मिश्रित छंद को ऋक् प्रातिशाख्य में प्रगाथ की संज्ञा दी गई है। ऋक् प्रातिशाख्य के आधार पर डॉ० शुक्ल ने प्रगाथ

छंदों की जो लंबी सूची दी है, उसमें बार्हत (बृहती + सतोबृहती) काकुभ (ककुभ + सतोबृहती) आनुष्टुभ् (अनुष्टुभ् + २ गायत्री) गायत्र बार्हत (गायत्री + बृहती) आदि २४ प्रकार के छंद हैं।[1] इससे वैदिक कालीन छंदोमिश्रण का स्वातंत्र्य आसानी से समझा जा सकता है। लौकिक साहित्य में यह स्वतंत्रता एक प्रकार से लुप्त हो गई। यहाँ दो छंदों के मिश्रण से बना छंद उपजाति नाम से पुकारा गया और आचार्यों ने इसके केवल चार भेदों का उल्लेख किया। वे हैं--(क) इंद्रमाला, जो इंद्रवज्रा (त त ज ग) और उपेंद्रवज्रा (ज त ज ग) के चरणों के मेल से निर्मित होता है। (ख) वंशमालिका, जो इंद्रवंशा (त त ज र) और वंशस्थ (ज त ज र) के योग से बनता है। (ग सिंहप्लुत, जिसमें श्रुति (त भ स य) और स्मृति (ज भ स य) छंदों के चरण मिले रहते हैं और (घ) प्रकीर्ण, जिसमें रुचि (त भ स ज ग) और रुचिरा (ज भ स ज ग) के चरणों का मिश्रण होता है।[2] इनके अतिरिक्त और भी) किन्हीं दो छंदों का मिश्रण हो सकता है, ऐसा आचार्यों ने संकेत किया है--बहु श्रुतैस्तु इत:परासां जगत्यादीनां पश्चिमानामुक्तादीनां प्रायो गायत्र्यादीनां कृतनामाकृतनामविसदृश प्रस्ताररूप स्वस्वपादानां स्वल्पभेदानां सर्वासां जातीनां संकर उपजातिरुपादिष्टा। (कविदर्पण ४/४० की टीका)[3] भानु ने इसी आधार पर द्विज (शालिनी म त त ग + वातोर्मि म भ त ग) मुक्ति (इंद्रवज्रा + शालिनी) और वागीश्वरी (भुंजगप्रयात य य य य + भुजंगी य य य ल ग) उपजाति का उल्लेख किया है।[4] पर कवियों ने इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मिश्रण से बने हुए छंद (इंद्रमाला) का ही प्रयोग प्रचुर परिमाण में किया। आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट अन्य मिश्र छंदों पर न तो विशेष ध्यान दिया और न स्वयं किसी मिश्र छंद का निर्माण किया। डॉ० वेलंकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है--

"The cobination of these two varieties (वंशस्थ और इंद्रवंशा)

---

१. द्रष्टव्य : आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ७३-७५।

२. द्रष्टव्य : जयकीर्त्ति का छंदोऽनुशासन २।११७, १४५,१४८, १६५।

३. He does not desire the name Upajati to be proper name of a particular metre, but reduces it to a common name of any mixed variety.

—कविदर्पण की भूमिका : एच० डी० वेलंकर, पृ० १५।

४. छंदः प्रभाकर, पृ० १४६, १४७, १४९।

again, is called Upajati by some and Vamsamala by others, and is rarer still, being employed, sometimes after 1000 A. D. "

—Introduction to Kavidarpan. page 14

इस प्रकार लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रगाथ छंद का महत्त्व एकदम कम हो गया। इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के चरणों का मनमाना मिश्रण ही कवि-समाज में प्रचलित रहा।

प्रगाथ या मिश्र छंद का प्रचलन अपभ्रंश साहित्य में फिर एक बार बहुत जोर से हुआ। अपभ्रंश के षट्पदी, सप्तपदी, अष्टपदी, नवपदी, दशपदी, एकादशपदी, द्वादशपदी, षोडशपदी छंदों में अधिकतर मिश्र छंद ही हैं। इन मिश्र छंदों में छप्पय और कुंडलिया तो हिन्दी साहित्य तक चलते आ रहे हैं। इन तथाकथित मिश्र छंदों के अतिरिक्त अपभ्रंश सिद्ध कवियों की वाणी में चौपाई-चौपई का मिश्रण अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

हिन्दी के आदि महाकाव्य पृथ्वीराज रासो में भी चौपाई-चौपई का प्रगाथ रूप दिखलाई पड़ता है। विद्यापति, सूरदास, तुलसीदास आदि कवियों ने अनेक पदों की रचना कई छंदों के मेल से की है यथा—

अब सिर परी ठगौरी देव।
ताते विवस भयौ करुणामय, छाँडि तिहारी सेव।
माया मंत्र पढ़त मन निसिदिन मोह मूरछा आनत।
ज्यों मृगनाभि-कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत।
भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-वेग, न क्रमै गह्यौ।
सूर एक पल गहरु कीन्हौं, किहि जुग इतौ सह्यौ।

—सूरसागर, पद ४६

यहाँ प्रथम पंक्ति (टेक) चौपई में, द्वितीय सरसी में, तृतीय-चतुर्थ सार में और पंचम-षष्ठ विष्णुपद में निबद्ध है। इस प्रकार यह पद चार छंदों के मिश्रण द्वारा गठित हुआ है। ये चारों छंद समप्रवाही हैं। अतः इनका मिश्रण लय का विघातक नहीं हो सकता। पर विद्यापति, सूरदास और तुलसीदास में ऐसा मिश्रण भी पाया जाता है, जिसमें दो भिन्न-भिन्न लय वाले छंद प्रयुक्त हुए हैं। सूरदास का निम्न पद उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

इनही भूलि रहे सब भोगी।
बस कीन्हें वाह्मन अरु जोगी।

वस किए वाह्मन वहुत जोगी, छत्रपति केते कहौं।
औरो जगत के जीव जलथल, गनत सुनत न सुधि लहौं।
ते परम आतुर काम-कातर, निरखि कौतुक नित नए।
इहिं भाँति समधिन संग, निसि दिन फिरत भ्रम भूले भए।
—सूर-सागर, पद ४८०५

यहाँ समप्रवाही अष्टकाधृत चौपाई की एक अर्द्धाली के साथ सप्तकाधृत हरिगीतिका के एक पद्य का गुंफन हुआ है। सूरदास और नन्ददास में चौपाई के साथ चौवोला और चौपई का मिश्रण आसानी से देखा जा सकता है। रामचरितमानस में भी चौपाई के साथ चौबोले की अर्द्धाली मिश्रित है। वहाँ दोहे और दोहरे के चरण भी कहीं-कहीं संयुक्त रूप में मिलते हैं। केशवदास ने भी चौपई-चौवोले का मिश्रण अपने काव्यों में अनेक स्थलों पर किया है। अन्य छंदों का मिश्रण भी उनकी 'रामचंद्रिका' में उपलब्ध होता है। भारतेंदु के पदों में भी समलयात्मक और विषमलयात्मक छंदों के मिश्रण की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो भिन्न छंदों के मेल से अनुच्छेद का भी निर्माण किया है। जैसे-वर्षाविनोद के पद ६० और ११५ में आद्योपांत विष्णुपद और गोपी का मिश्रण हुआ है।

द्विवेदी-युग में जब सरसी, सार, ताटंक आदि छंदों का प्रयोग प्रबंध-मुक्तकों में होने लगा, तब तत्कालीन कवियों ने भी इन छंदों के मिश्रण की ओर अपनी रुचि दिखलाई। श्रीधर पाठक, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय, सैयद अमीर अली 'मीर', कामताप्रसाद गुरु, माधव शुक्ल तथा मन्नन द्विवेदी ने ताटंक-वीर के संयोजन से अनेक पद्यों की रचना की। श्रीधर पाठक तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ताटंक और सरसी की एक-एक अर्द्धाली के योग से वने पद-वंध (Stanza) का प्रयोग किया। वालमुकुंद गुप्त ने कवीर-सूर-द्वारा प्रयुक्त रोला-दोहा से वने अनुच्छेद के ढंग पर जिस अनुच्छेद का निर्माण किया है, उसमें दोहे की जगह दोहकीय का प्रयोग कर कुछ नवीनता भी उपस्थित की।[1] राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने पीयूषवर्षी और गीतिका की एक-एक अर्द्धाली (कहीं-कहीं पीयूषराशि और शुभगीता की) के योग से वने पद-वंध में 'रजतगिरि कैलास' की रचना की।[2] इस प्रकार यह कहा जा

१. कविता-कौमुदी, भाग २ : पिता, पृ० २०५।
२ कवि-भारती : सं० सुमित्रानन्दन पंत आदि, पृ० १५।

सकता है कि द्विवेदी-युग के कवियों ने दो छंदों का मिश्रण दिल खोल कर किया है।

जब प्राचीन काल से लेकर द्विवेदी-युग तक दो छंदों का मिश्रण निरन्तर होता रहा, तो इस क्षेत्र में छायावाद ने कौन-सी नवीनता या मौलिकता का प्रदर्शन किया ? मैथिलीशरण की 'झंकार' के अतिरिक्त दो विषम लयात्मक छंदों का संयोजन भी जब आधुनिक युग में नहीं पाया जाता, तो छायावाद ने इस दिशा में कौन-सी क्रांति की ? प्राचीन काल से लेकर द्विवेदी-युग पर्यन्त छंदों का जो मिश्रण हम देखते हैं; उसमें या तो दो छंदों के पूरे दो पद्यों को आगे-पीछे रख कर पद-बंध तैयार किया गया है। यों दो छंदों की एक-एक अर्द्धाली परस्पर संयोजित कर दी गई है, या एक की अर्द्धाली और दूसरे के पूर्ण पद्य का मेल कर दिया गया है। युग्मक अंत्यानुप्रास की अनिवार्यता के हट जाने के कारण छायावाद के कवियो को किन्ही दो छंदों के एक-एक चरण को आगे-पीछे रखने की स्वच्छंदता मिल गई। अतः इनके काव्यो मे अर्द्धालियों के अतिरिक्त दो छंदों के एक-एक चरण का पारस्परिक उपगूहन भी दिखलाई पड़ता है। प्राचीन काव्यों में जिन दो छंदों का मिश्रण होता था, वे प्रायः समान लंबाई के होते थे। इसके अपवाद में हम छंदक (टेक) और संपद के प्रथम चरण को ही ले सकते हैं। चौपाई-हरिगीतिका के मिश्रित प्रयोग को भी इस अपवाद में सम्मिलित कर सकते हैं। पर यह अपवाद ही है। सामान्यतः सरसी, सार, ताटंक, वीर जैसे छंदों का ही मेल प्राचीन काव्यों में होता था; जिनमें एक-दो मात्राओं की कमी-वेशी रहती थी। संस्कृत उपजाति की भी यही दशा है। इसके दो छंदों में एकाध लघु-गुरु का ही अंतर है। छायावाद ने छोटे-वड़े दोनों प्रकार के छंदों के संयोजन-द्वारा थोड़ी नवीनता का सूत्रपात अवश्य किया। कतिपय उदाहरणों से बात स्पष्ट हो जायगी।

(क) हृदय की दारुण ज्वाला से ,...............गोपी
हुए व्याकुल हम उस दिन पूर्ण। ....शृंगार
देखती प्यासी आँखें थीं,........ . ..... गोपी
रसभरी आँखों को मद-घूर्ण ।............ शृंगार
—प्रसाद (झरना : प्यास)

गोपी में शृंगार से एक मात्रा कम होती है, पर दोनों के चरणांत में काफी अन्तर है। गोपी के अन्त में गुरु शृंगार के अन्त में ऽ। रहते हैं। इसलिए युग्मक अंत्यानुप्रास के चलते इन दोनों के चरण इस रूप में आश्लिष्ट

नहीं हो सकते थे। दोनों की एक-एक अर्द्धाली ही संयोजित हो सकती थी, जैसा प्राचीन काव्य में चौपई (१५ मा० अंत ऽ।) और चौपाई (१६ मा० अंत ऽ ऽ, । ।, । ऽ) की अर्द्धाली का मिश्रण हुआ है। युग्मक अंत्यानुप्रास का बंधन हट जाने के कारण दो भिन्न चरणांत वाले छंदों के इस छायावादी मिश्रण में थोड़ी नवीनता अवश्य दिखलाई पड़ती है।

(ख) कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?—सरसी
भूतियों का दिगंत छवि-जाल,
ज्योति-चुंबित जगती का भाल ? } ......श्रृंगार
राशि राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार— सरसी
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार। } ... श्रृंगार
—पंत (पल्लव : परिवर्त्तन)

यहाँ तीन चरणों की समतुकांतता में तो नवीनता है ही, ऐसे दो समप्रवाही छंद संगुंफित कर दिए गए हैं; जिनके चरणांत तो एक-रूप हैं; पर जो गोपी-श्रृंगार के विपरीत समान लंबाई के नहीं हैं।

(ग) फिर किधर को हम बहेंगे
तुम किधर होगे, } .... रजनी
कौन जाने फिर सहारा
तुम किसे दोगे } ....रजनी
हम अगर बहते मिलें...............मालिका
क्या कहोगे भी कि हाँ, पहचानते ?......पीयूषवर्षी
या अपरिचित खोल प्रिय चितवन
मगन बह जावगे पल में } २+विधाता
परम- प्रिय-सँग अतल जल में ?.........विजात
—निराला (परिमल : निवेदन)

यहाँ ऊपर-नीचे दो-दो चरणों में युग्मक अंत्यानुप्रास है। बीच के दो चरण भिन्नतुकांत हैं। सभी छंद सप्तकाधृत हैं, पर छोटे-बड़े पाँच छंदों के मिश्रण-द्वारा यह अनुच्छेद निर्मित हुआ है। इस प्रकार इसमें नवीनता के दर्शन होते हैं।

(घ) किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिला कर—रोला
आती हो तुम सजी मंडलाकार ?—तमाल

एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिला कर—रोला
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?—तमाल
सोह रहा है हरा क्षीण कटि में, अम्बर शैवाल,
गाती आप, आप देती सुकुमार करों से ताल }—सरसी
चंचल चरण बढ़ाती हो,
किससे मिलने जाती हो ? }—हाकलि

—निराला (परिमल : तरंगों के प्रति)

यहाँ ऊपर के चार चरणों में गुंफित और नीचे के चार चरणों में युग्मक अंत्यानुप्रास की योजना के साथ छोटे-बड़े चार समप्रवाही छंदों के मिश्रण-द्वारा एक अष्टापादी अनुच्छेद का निर्माण किया गया है। जिसमें ऊपर के चार चरणों में दो छंदों का एक-एक चरण गुंफित हुआ है और नीचे के चार चरणों में दो छंदों की एक-एक अर्द्धाली। इस प्रकार प्राचीनों के लिए इसमें कुछ नवीनता अवश्य है।

प्राचीन काल से लेकर छायावाद तक हमने छंदों का जैसा मिश्रण तथा तुक का जैसा क्रमायोजन देखा, उससे हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि छायावाद का ऐसा प्रयास सर्वथा नूतन है। क्योंकि ऐसा प्रयोग छायावाद के पूर्व कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। हिन्दी के पाठकों के लिए तो इसमें नूतनता अवश्य है; पर अंग्रेजी साहित्य से संपर्क रखने वालों के लिए इसमें कोई नयापन नहीं। अंत्यानुप्रास के विभिन्न क्रमायोजन के साथ छोटे-बड़े छंदों के चरणों का संयोजन अंग्रेजी साहित्य की छंदोरचना की एक प्रमुख विशेषता है। पीछे अंग्रेजी के उद्धरणों से यह बात स्पष्टतः सिद्ध है। अतः यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि छायावाद के कवि इस प्रयास में भी अंग्रेजी से स्पष्टतः प्रेरित हैं।

११. नए आकार-प्रकार के गीत

छायावाद के गीत तीन शैलियों में लिखित दिखलाई पड़ते हैं (क) पद-शैली (ख) गजल-शैली और (ग) आनुबंधिक या अनुच्छेद-बद्ध शैली। पद-शैली तो वही प्राचीन शैली है, जिसमें सूर, तुलसी आदि भक्त कवि अपने इष्टदेव का गुणगान करते रहे। गजल-शैली उर्दू से प्रभावित गीत-संरचना का वह ढंग है, जो भारतेन्दु-काल से हिन्दी में एक तरह से अपनाया जाने लगा था। इन दोनों प्रकारों की चर्चा पीछे हो चुकी है। अतः यहाँ तीसरी शैली पर विचार करना है। आनुबंधिक या अनुच्छेद-बद्ध शैली गीत-रचना का वह

प्रकार है, जो छंदक और कई अनुच्छेदों से गठित होता है। इन अनुच्छेदों या अनुवंधों का निर्माण कवि विभिन्न छंदों के संयोजन-द्वारा कई प्रकार से करता है। सब को अनेक कोटियों में विभाजित कर प्रत्येक का विवरण देना विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं जान कर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जिससे बात स्पष्ट हो जायगी।

(क) अरुण यह मधुमय देश हमारा।————(रामछंद)
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा। (सार)
सरस तामरस गर्भ विभा पर }
नाच रही तरु-शिखा मनोहर } ——चौपाई
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा। (सार)
लघु सुरधनु से पख पसारे }
शीतल मलय समीर सहारे } ——चौपाई
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा। (सार)
——प्रसाद (चंद्रगुप्त : अंक २)

यह गीत चार अनुच्छेदों में पूर्ण हुआ है। प्रत्येक अनुच्छेद का निर्माण चौपाई की एक अर्द्धाली और सार के एक चरण से हुआ है, जिसकी तुक रामछंद में निवद्ध छंदक से मिली हुई है।

(ख) बीती विभावरी जाग री। ······· उज्ज्वला मात्रिक
अंबर पनघट में डुबो रही······ ······ पदपादाकुलक
तारा घट ऊषा-नागरी।·········· उज्ज्वला मात्रिक
खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा, }
किसलय का अंचल डोल रहा, } पदपादाकुलक
लो यह लतिका भी भर लाई— }
मधु मुकुल नवल रस गागरी।······· उज्ज्वला मात्रिक
—प्रसाद (लहर : पृ० १६)

यहाँ पहली पंक्ति टेक है। दूसरी और तीसरी मिल कर एक बड़ी पंक्ति का काम करती है, जिसकी तुक टेक में मिलाई गई है। फिर पदपादाकुलक के तीन (दो समतुकांत और एक भिन्नतुकांत) और उज्ज्वला मात्रिक के एक चरण, जिसकी तुक टेक से मिलती है, के संयोजन से एक अनुच्छेद बनाया गया है। इसी प्रकार का एक और अनुच्छेद रख कर गीत पूरा किया गया है।

(ग) आज इस ! यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।
— विष्णुपद

मधु पीकर पागल हुआ करता प्रेम-प्रलाप, } ··दोहा
शिथिल हुआ जाता हृदय जैसे अपने आप। }

लाज के बंधन खोल रहा।········ गोपी

—प्रसाद (चंद्रगुप्त : अंक ३)

इस गीत में दो अनुच्छेद हैं, जो एक दोहा और गोपी के एक चरण के मिश्रण से निर्मित हुआ है। गोपी के चरण का अंत्यानुप्रास विष्णुपद में निबद्ध छंदक से मिलाया गया है। छंदक के प्रथम दो शब्द 'आज इस' छद से बाहर है, जैसा सूर-तुलसी के अनेक पदों में देखा जाता है।

(घ) पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन, } समान सवैया
आज नयन आते क्यों भर-भर ? }

सकुच सलज खिलती शेफाली; } चौपाई
अलस मौलश्री डाली-डाली; }

बुनते नव प्रवाल कुंजों में } समान सवैया
रजत श्याम तारों से जाली }

शिथिल मधु पवन, गिनगिन मधुकण } समान सवैया
हरसिंगार झरते हैं झर-झर }

आज नयन आते क्यों भर-भर।···चौपाई

—महादेवी (नीरजा : गीत ३)

इस गीत में पाँच अनुच्छेद हैं, जो चौपाई की एक अर्द्धाली और समान सवैये के दो चरणो के संयोग से बने हैं। समान सवैये के प्रथम चरण की तुक चौपाई की अर्द्धाली से और दूसरे की टेक से मिली हुई है।

(ङ) तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना। (टेक)—पदपादाकुलक

कंपित कंपित } ·········अखंड
पुलकित पुलकित }

परछाईं मेरी से चित्रित·····पदपादाकुलक

रहने दो रज का मंजु मुकुर } ···मत्तसवैया
इस बिन शृंगार-सदन सूना }

तेरी सुधि बिन क्षण-क्षण सूना।

—महादेवी (नीरजा : गीत ३०)

इस गीत में पाँच अनुच्छेद हैं, जो अखंड की अर्द्धाली, पदपादाकुलक के एक चरण (जिसकी तुक अखंड की अर्द्धाली से मिली हुई है) तथा टेक के साथ समतुकांत मत्तसवैये के एक चरण से गठित हैं।

(च) मकड़ी का मृदु माया-जाल··· ·· ···(टेक) चौपई
इस रसाल के सघन जाल में······ ·· ···चौपाई
जीवन-शून्या के दृग-जल का
पहना है शुचि मुक्तामाल। } —वीर छंद
आम्र-मंजरी की मृदु वास
विकसित-किसलय, मधुमय हास, } —चौपई
इस वसंत में कितनों का है
अंत कर चुका अचिर प्रकाश। } —वीर छंद
फैला छवि के बाहु-मृणाल

—पंत (वीणा : गीत २४)

यहाँ टेक के बाद चौपाई का एक भिन्नतुकांत चरण है। फिर वीर छंद का एक चरण है, जिसकी तुक टेक के साथ मिली हुई है। इसके बाद तीन अनुच्छेद हैं, जिनमे प्रथम और तृतीय तो चौपई की अर्द्धाली और वीर छंद के एक समतुकांत चरण से गठित है, तथा दूसरा हाकलि की अर्द्धाली और ताटंक के एक समतुकांत चरण के मेल से बना है। प्रत्येक अनुच्छेद के बाद टेक जैसी एक पंक्ति अंत में रक्खी गई है।

(छ) तप रे मधुर-मधुर मन।
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर-विधुर मन।

—पंत (गुंजन : गीत १)

इस गीत में तीन अनुच्छेद हैं। प्रत्येक अनुच्छेद चौपाई के तीन समतुकांत चरणों से बना है। और जिसके अंत में टेक के समान तुक रखने वाला महानुभाव का अतिरिक्त एक चरण और रक्खा गया है।

(ज) प्राण-धन को स्मरण करते
नयन झरते—नयन झरते } (टेक) मनोरम
स्नेह ओत-प्रोत;······· ·· ज्योति
सिंधु दूर, शशिप्रभा-दृग
अश्रु ज्योत्स्ना—स्रोत } ·· ···रूपमाला
मेघमाला सजल नयना
सुहृद उपवन से उतरते } माधवमालती

दुःख-योग धरा.............निधि

विकल होती जब दिवस-वश
हीन ताप-करा } ...रजनी

गगन-नयनों से शिशिर झर
प्रेयसी के अधर भरते । } माधवमालती

—निराला (गीतिका : गीत ४७)

इस गीत के प्रारम्भ में मनोरम-निबद्ध दो पंक्तियों की टेक है। फिर दो अनुच्छेद है। पहले का निर्माण ज्योति और रूपमाला के एक-एक समतुकांत चरण के बाद माधवमालती के एक चरण को, जिसकी तुक टेक से मिलती है, रख कर किया गया है। दूसरा अनुच्छेद अंत्यानुप्रास के उसी क्रम के साथ निधि, रजनी और माधवमालती के एक-एक चरण के योग से बना है।

(झ) हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जावगे चले ?
कैसी थी रात, बंधु, थे गले-गले ? } (टेक)—योग

फूटा आलोक,............. निधि

परिचय-परिचय पर जग गया भेद, शोक।.....प्रणय

छलते सब चले एक अन्य के छले ।...........योग

जावगे चले।

—निराला (गीतिका : गीत ६१)

टेक की दोनों पंक्तियाँ योग छंद में निबद्ध हैं। फिर जो अनुच्छेद है, वह निधि और प्रणय के एक-एक समतुकांत चरण तथा टेक के साथ समान तुक रखने वाले योग के एक चरण से गठित है। इसके बाद फिर एक अनुच्छेद है, जिसका निर्माण भी इसी प्रकार हुआ है।

अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। इतने से ही हम छायावादी गीत-संरचना को अच्छी तरह समझ सकते हैं। पद और गजल शैली में लिखे थोड़े-से गीतों को छोड़ कर छायावाद युग के सारे गीत इसी आनुबंधिक या अनुच्छेद-शैली में रचित हैं। अब देखना है कि इस आकार-प्रकार के गीत कितने प्राचीन हैं और उनकी परंपरा कहाँ से प्रारम्भ होती है ?

सामवेद संगीत का मूल उत्स है, पर उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं मानी जाती। ऋग्वेद की ऋचाओं को लेकर उसका संकलन उद्गाता ऋत्विक् के निमित्त किया गया था। यज्ञ के अवसर पर देवता-विशेष को बुलाने के लिए

उद्गाता उचित स्वर में उसका स्तुति-मन्त्र गाता था।[1] इससे वैदिक साहित्य में संगीत की सत्ता असंदिग्ध रूप से सिद्ध होती है। पर दो छंदों के एक-एक चरण को आगे-पीछे रख कर संयोजित करने की रीति के न होने तथा अंत्यानुप्रास के अभाव में, छंदक के होते हुए भी,[2] इस आकार-प्रकार के गीतों की संभावना वैदिक साहित्य में नही की जा सकती।

लौकिक संस्कृत का पद्य समान वर्ण वाले चार चरणों के बंधन में इस प्रकार जकड़ गया कि वहाँ छदक के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह गया। फलतः लौकिक संस्कृत में गीत की रचना नही हुई। संस्कृत नाटकों में यथावसर जो गान गाए गए हैं, वे सामान्यतः किसी छंद में निबद्ध हैं, जिसमें अंत्यानुप्रास की योजना तो है ही नहीं, छंदक भी नहीं है। उदाहरण-रूप में निम्नलिखित गान देखे जा सकते हैं—

(क) अहिणव महुलोलवो भवं तह परिचुम्बिअ चूअ मञ्जरिं।
कमल बसइ मेत्त णिव्बुदो महुअर विहमरिओ सि णं कहं।

यह गीत अभिज्ञानशाकुंतलम् के पंचम अंक में महारानी हंसपदिका-द्वारा गाया गया है।

(ख) दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ णिरासं
अम्हो अपंगवो मे परिप्फुरइ किं वि वामओ।
एसो सो चिरदिट्ठो कहँ उण उवणइदव्वो
णाह मं पराहीणं तुई परिगणअ सतिण्हम्।

यह गीत मालविकाग्निमित्रम् के द्वितीय अंक में मालविका-द्वारा गाया गया है।

---

१. आर्य-संस्कृति के मूलाधार : बलदेव उपाध्याय : पृ०२१।

२. सामान्य लय के बीच असामान्य या भिन्न लय छन्दक (टेक) के रूप में प्रारम्भ में आती है, अथवा अन्त में। × × जैसे पादपंक्ति (५, ५, ५, ५, ११ वर्ण) के चार चरणों के बाद एकदम नयी लय आ जाती है। × × पुरस्ताद् वृहती में पहला चरण ११ अक्षर का और शेष तीन चरण ८ अक्षरों के होते हैं। यहाँ छन्दक (टेक) में भिन्न लय है और प्रवाही चरण भिन्न लय के हैं।—

—आ० हि० का० में छन्द योजना, डॉ० शुक्ल, पृ०७७।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्कृत भाषा में (संस्कृत छन्दों में नहीं) सर्वप्रथम गीत की रचना संभवतः जयदेव के 'गीतगोविन्द' में हुई। गीतगोविन्द के गीतों में अंत्यानुप्रास के साथ-साथ छंदक भी है। यथा—

(क) विहरति हरिरिह सरस वसंते।...... (छन्दक)
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते।
ललितलवंगलतापरिशीलन कोमलमलय-समीरे।
मधुकरनिकरकरंवित कोकिलकूजित कुञ्जकुटीरे।
—सर्ग १

(ख) हरिरिह मुग्धवधू-निकरे।
विलासिनि विलसति केलिपरे। } .... (छन्दक)
पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम्।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चित पञ्चमरागम्।
—सर्ग १

पर इस प्रकार के गीत पद-शैली में लिखित कहे जायेंगे, आनुबंधिक शैली में नहीं। क्योंकि इनके संपद अंत्यानुप्रास के क्रमायोजन-द्वारा विभिन्न छंदों के मेल से बने अनुबन्धों से गठित न होकर आद्योपान्त एक ही छंद में निवद्ध हैं।

अपभ्रंश छंद:शास्त्रियों ने त्रिकल, चौकल, पँचकल, छकल के द्वारा अपने छंदों को परिभाषित किया है। फलतः अपभ्रंश काव्यों में तालगण और तालयति का निर्वाह प्रायः सर्वत्र हुआ है। इसी आधार पर डॉ० वेलंकर ने अपभ्रंश छंदों को तालवृत्त के नाम से अभिहित किया है।[1] स्वयंभू ने एक-ताल कविता का उल्लेख किया है, जो संगीत (vocal music) वाद्य (instrumental music) और अभिनय (acting) के संयोग में गाई जाती है—

संगीतवाद्य अभिनयसंयुक्तं तालमेनमिह शृणुष्व।
—स्वयंभूच्छंदः उत्तर भाग ८।२१

ऐसा एक अनुच्छेद (Stanza) ताल, दो अनुच्छेदों का जोड़ा युगल, तीन का समूह त्रिताल, चार का चक्कलक, पाँच का पंचताल और सात का सप्त-ताल कहे जाते हैं।[2] स्वयंभू ने एक मंगल छंद का भी उल्लेख किया है, जो

1. No yati is generally admitted in the Prakrit and the Apabhransa metres, which are mostly Matra and Tala vrittas.
—स्वयंभूच्छंदः की भूमिका, पृ० ६।

२. द्रष्टव्य: स्वयंभूच्छंदः ८।२१-२३ और वेलंकर कृत संक्षिप्त टिप्पणी पृ० २३४।

किसी भी छंद में लिखित होकर विवाहादि मंगलोत्सव में गाया जाता है।

मगल विवाह करणे तान्येव मंगलानि गीयन्ते।

× × ×

न तत्र यमकशुद्धिः न च्छंदो न च लक्षणं किमपि।

—स्वयंभूच्छंदः उत्तर भाग ८।३०-३१

इन सभी बातों के आधार पर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अप-भ्रंश कविता जन-समाज के सम्मुख ताल की लय पर गाई जाती थी। पर गीत के जिस रूप का दर्शन हम छायावादी कविता में करते हैं, उस रूप में कोई गीत अपभ्रंश काव्य में दिखलाई नहीं पड़ता।

अपभ्रंश के बाद गोरखनाथ, विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी आदि ने पदों की ही रचना की, अपनी वाणी को गीत में मुखरित नहीं किया। सूरदास के निम्न पद में अनुच्छेद-बद्ध गीत की एक हलकी झाँकी अवश्य मिलती है। यथा—

बहुत दिन गए ऊधौ, चरन-कमल सुख नहीं।
दरस हीन दुखित दीन, छिन छिन विपदा सही।
रजनी अति प्रेम पीर,
बन गृह मन धरै न धीर।
वासर मग जोवत उर,
सरिता बही नैन नीर।
नलिनी जनु हेम घात,
कंपित तन कदलि पात।
लोचन जल पावस भयौ
रही री कछु समुझि बात।
जौं लौं रही अवधि आस,
दिन गनि घट रही स्वास।
अब वियोग विरहिन तन
तजि है कहि सूरदास।

—सूरसागर : पद ४२२३

इसी प्रकार सूरसागर के परिशिष्ट तथा तुलसी की गीतावली के निम्नां-कित पदों में भी—

(क) ब्रज में हरि होरी मचाई।
इततें आवति कुँवरि राधिका उततें कुँवर कन्हाई।
खेलत फाग परस्पर हिलमिल यह सुख वरनि न जाई।
सुघर घर बजत बधाई।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मंजीरा सहनाई।
उड़ति अबीर कुमकुमा केसरि रहत सदा ब्रज ठाई।
मनौ मघवा झरि लाई।
—सूरसागर : परिशिष्ट पद १२६

(ख) कनक-रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार-सुतहार।
विविध खेलौना, किंकिनी, लागे मंजुल मुक्ताहार।
रघुकुल-मंडन राम-लला।
जननि उबटि, अन्हवाइ के, मनिभूषन सजि, लिए गोद।
पौढ़ाए पटु पालने सिनु निरखि मगन मन मोद।
दसरथ नन्दन राम-लला।
—गीतावली : बा० कां, पद २२

हम अनुच्छेद-बद्धता का आभास बहुत-कुछ पा लेते हैं, जब इन दोनों पदों की तुलना 'प्रसाद' द्वारा लिखित उपर्युद्धृत गीत 'ग' से करते हैं।

केशवदास ने जनकपुर में जेंवनार के समय स्त्रियों के द्वारा बराती को जो गाली दिलवाई है, (देत नारि गारि पूरि भूरि भेवहीं) वह सीधे हरि-गीतिका छंद में निबद्ध है।[1] अवश्य भारतेंदु ने पदों के साथ-साथ कई ऐसे गीतों की भी रचना की है, जिन्हें हम अनुच्छेद-बद्ध शैली में लिखित कह सकते हैं।

यथा—

(क) सखि ये बदरा बरसन लागे री।
मोहि ! मोहन पिय बिनु जानि जानि, झुकि झुकि कै सरसन लागै री।
हम उन बिन अति व्याकुल डोलैं,
मुख सों हाय पिया कहि बोलैं।

---

१. रामचंद्रिका, प्रकाश ६।३०-३६।

प्रान आइ अटके नैनन में तेरे दरसन लागे री।
—भा० ग्रं० भाग २ : प्रेमाश्रुवर्षण, पद १३

(ख) छतिया लेहु लगाय सजन अब मत तरसाओ रे।
तुम बिन तलफत प्रान हमारे,
नयनन सों बहे जल की धारें,
बाढ़ी है तन बिरह-पीर, सूरत दिखलाओ रे।
—भा० ग्रं० : प्रेमतरंग, पद ३०

भारतेंदु के बाद द्विवेदी-युग के हरिऔध के 'पद्यप्रसून' में दो गीत (हमारी होली, मर्मव्यथा) इसी रूप में मिलते हैं। जैसे—

कहाँ गया तू मेरा लाल।
आह! काढ़ ले गया कलेजा आकर के क्यों काल?
पुलकित उर में रहा बसेरा,
था ललकित लोचन में डेरा,
खिले फूल-सा मुखड़ा तेरा
प्यारे था जीवन-धन मेरा
रोम-रोम में प्रेम प्रवाहित होता था सब काल।
—पद्यप्रसून : मर्मव्यथा

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायायुगीन आनुबन्धिक गीत हिन्दी साहित्य के लिए नवीन वस्तु नहीं है। सूरदास ने जिसका बीजारोपण किया, बहुत बाद में वही भारतेंदु मे आकर अंकुरित हुआ और फिर समय पाकर वही छायावाद में पल्लवित-पुष्पित हुआ।

१२. भिन्नतुकांतता और पादान्तरवाहिता

यह पीछे कहा जा चुका है कि अपभ्रंश के पूर्व भारतीय कविता अंत्यानुप्रास के बंधन से बिलकुल मुक्त थी। अपभ्रंश से अंत्यानुप्रास का प्रचलन हुआ और फिर वह प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी छा गया। यद्यपि यह प्रभाव द्विवेदी-युग के पूर्व तक सघन रूप से छाया रहा, फिर भी कुछ कवियों के काव्यों में कतिपय भिन्नतुकांत छंद भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं। चंदबरदाई ने गाथा (आर्या) का प्रयोग तो सर्वत्र भिन्नतुकांत रूप में किया ही है, उनके अनेक

शार्दूलविक्रीड़ित भी अंत्यानुप्रास से मुक्त है।[1] उदाहरण-रूप में निम्न पद्य प्रस्तुत किया जाता है —

विद्या वंस विचार सत्य विनयं, सौच्यं समाधीनता।
सन्मान सस्थान सौष्य विजयं सौजन्य सौभाग्ययं।
संपूर्ण च सरूप रूप प्रसनं चित्त सदा चारनं।
सांगी च संजोग चारु सकलं विस्तारयंते कला।

—पृथ्वीराज रासो : स० डॉ० कृष्णचन्द्र अग्रवाल, पृ०१८

शार्दूलविक्रीड़ित के अतिरिक्त काव्य नामांकित मालिनी (पृ०१३२) और स्रग्धरा (पृ०६६) छंद भी भिन्नतुकांत है। चन्दबरदाई के बाद केशवदास की 'रामचंद्रिका' में गाथा और मालिनी में निबद्ध एक-एक भिन्नतुकांत पद्य उपलब्ध होता है। यथा—

(क) रामचंद्र पद पद्मं वृन्दारक वृन्दाभिवंदनीयम्।
केशवमतिभूतनया लोचनं चंचरीकायते।

— प्रकाश १।१९

(ख) गुणगण मणिमाला चित्त चातुर्य शाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता।
अखिल भुवन भर्त्ता ब्रह्म रुद्रादि कर्त्ता।
थिर चर अभिरामी कीय जामातु नामी।

—प्रकाश ६।२७

'ख' में अन्तर्तुक की योजना है, अंत्यानुप्रास की नहीं। भारतेंदु की मालिनी-निबद्ध निम्न पंक्तियों के साथ भी वही बात है—

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे।
तव सव जग छाई फेरते हैं दुहाई।
जग सिर पग धारे धावते रोष भारे।
विपुल अवनि जीती पालते राजनीती।

—भारतदुर्दशा

यह तो संस्कृत छंद में अतुकांत कविता की बात हुई। हिन्दी छंद में सर्वप्रथम अतुकांत कविता लिखने वाले जगनिक हैं। निराला के मतानुसार

---

१. पृथ्वीराजरासो : सं० डॉ० कृष्णचंद्र अग्रवाल, पृ०१८, २८, २९, ३०, ३८ आदि।

'अतुकांत कविता में प्रथम श्रेय आल्हखंड के लिखने वाले को हिन्दी में प्राप्त है।'[1] जगनिक के बाद हमें कबीरदास के निम्न पद्य में ही अतुकांत कविता का रूप दिखलाई पड़ता है—

जोगी दिगंबर से बड़ा, कपड़ा रँगे रँग लाल से।
वाकिफ नहीं उस रंग से, कपड़ा रँगे से क्या हुआ।
मंदिर झरोखे रावटी, गुल चमन में रहता सदा।
कहते कबीरा हैं सही, घट-घट में साहब रम रहा।

—कबीर वचनावली : सं० हरिऔध, पद १६४

फिर भक्ति और रीतिकाल को पार कर भारतेंदु-युग के अंबिकादत्त व्यास के 'कंस-वध' काव्य में भिन्नतुकांत कविता ने हिन्दी छंदों में अपना रूप दिखलाया। जिसके संबंध में पं० मन्नन द्विवेदी ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—'जो बेतुकांत की कविता लिखे, उसको चाहिए कि संस्कृत छंदों को काम में लाये। मेरा ख्याल है कि हिन्दी पिंगल के छंदों में बेतुकांत की कविता अच्छी नहीं लगती। स्वर्गीय साहित्याचार्य पं० अंबिकादत्त व्यास ऐसे विद्वान् भी हिन्दी छंदों में अच्छी बेतुकांत की कविता नहीं कर सके। कहना नहीं होगा कि व्यास जी का कंसवध काव्य बिलकुल रद्दी हुआ है।

—प्रियप्रवास की भूमिका (पृ० ७) से उद्धृत

इस प्रकार द्विवेदी-युग में यह एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि अतुकांत कविता के लिए संस्कृत छंदों का उपयोग हो या हिन्दी छंदों का ? पर कवियों ने संस्कृत और हिन्दी दोनों छंदों का व्यवहार किया। संस्कृत छंदों में लिखित 'प्रियप्रवास' मे भिन्नतुकांत पद्य का आद्योपांत प्रयोग कर 'हरिऔध' तो इस दिशा में अग्रणी हुए, पर रामचरित उपाध्याय (रामचरित चिन्तामणि के स्थल विशेष) मैथिलीशरण गुप्त (पत्रावली, जयभारत की कतिपय कविताएँ) तथा जयशंकर प्रसाद (विशाख का प्रथम गीत आदि) ने भी उनका साथ दिया। संस्कृत छंदों के अतिरिक्त मैथिलीशरण ने अतुकांत मिताक्षरी छंद (कवित्त का उत्तरांश) में माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाद-वध' का अनुवाद किया।

---

१. (क) द्रष्टव्य : परिमल की भूमिका : पृ० १३।
(ख) प्रस्तुत लेखक को आल्हखंड और कंसवध काव्य देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं। इस सम्बन्ध में निराला और मन्नन द्विवेदी के कथन ही प्रमाण हैं।

मात्रिक छंदों में अतुकांत अरुण (स्रग्विणी का मात्रिक रूप) छंद में श्रीधर पाठक ने 'सांध्य अटन' की रचना की।[1] प्रसाद ने तिलोकी (महाराणा का महत्त्व, करुणालय तथा कानन-कुसुम की कई कविताएँ) ताटंक-वीर (प्रेम-पथिक) तथा रोला का (कानन-कुसुम की 'निशीथ-नदी') रूपनारायण पाण्डेय ने तिलोकी का (रवींद्र की 'राजारानी' का अनुवाद) तथा सियाराम शरण गुप्त ने पीयूषवर्षी का अतुकांत प्रयोग किया।[2]

इस प्रकार अतुकांत कविता की द्विवेदी-युग में पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। छायावादी कवियों ने भी इसमें योग दिया। छायावादी प्रसाद ने 'झरना' के रूप, पावस-प्रभात, अर्चना, स्वभाव, प्रत्याशा, स्वप्नलोक तथा दर्शन को तिलोकी के; मिलन को पीयूषवर्षी के; हृदय का सौंदर्य, कुछ नहीं, तथा आदेश को शृङ्गार-गोपी के अतुकांत चरणों में निबद्ध किया। पंत ने 'ग्रंथि' में और महादेवी ने 'रश्मि' की दो कविताओं (कौन है ? प्रश्न) में पीयूषवर्षी का प्रयोग भिन्नतुकांत रूप में किया। निराला ने भिन्नतुकांत कविता में कोई मौलिक रचना तो नहीं की है, पर विवेकानन्द की दो 'कविताओं चौथी जुलाई के प्रति—पीयूषवर्षी, कालीमाता—माधवमालती) के अनुवाद में भिन्नतुकांतता को अधिक महत्त्व दिया, और उसके लिए रोला को अधिक उपयुक्त माना। रोला में प्रचुर परिमाण में अतुकांत कविता लिखकर संभवत: उन्होंने रोला को अतुकांत कविता के लिए उसी प्रकार पेटेंट छंद बनाना चाहा है, जिस प्रकार अंग्रेजी ब्लैंक वर्स (Blank Verse) का आइम्बिक पेंटामीटर (Iambic pentametre) है। रोला-निबद्ध उनकी अतुकांत कविता निम्न पुस्तकों में प्राप्त होती है—

रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण (गीतों को छोड़कर संपूर्ण)
युगपथ—रवींद्र के प्रति, अवनींद्र की वर्षगाँठ पर,
मर्यादा पुरुषोत्तम।
वाणी—प्रार्थना
पतझर—विज्ञान और कविता, प्रेम; जागा वृत्त,
भविष्योन्मुख, नवशोणित, भरतनाट्यम्,
चार्वाक, विश्वरत, गजल, होटल का बेरा।

---

१. द्रष्टव्य : कविता कौमुदी, पृ० १२५।
२. " परिमल की भूमिका, पृ० १२।

रोला के अतिरिक्त उन्होंने हंसगति का अतुकांत रूप भी 'पतझर' की दो कविताओं (मुक्ति और ऐक्य, उन्नयन) में उपस्थित किया है।

इस प्रकार छायावादी-चतुष्टय ने अपने अतुकांत काव्य मे पीयूषवर्षी, हंसगति, तिलोकी, रोला, माधवमालती,, गोपी-शृंगार तथा ताटंक-वीर का प्रयोग किया है। भिन्नतुकातता के क्षेत्र में द्विवेदी-युग ने ही क्रांति की थी। संस्कृत छदों के अतिरिक्त उस युग ने हिन्दी छंदों पर भी हाथ अजमाया था। उदाहरण के लिए जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का चौपाई में लिखित 'वसंत वर्णन वेतुका छंद' देखा जा सकता है।[1] छायावाद का इसमे यही योग माना जायगा कि उसने इस दिशा में कुछ और हिन्दी छंदों का उपयोग किया।

भिन्नतुकांतता के बाद अब पादांतरप्रवाहिता पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। अंग्रेजी में भिन्नतुकांत कविता (Blank Veise) का प्रारम्भ मार्लो (Marlowe) से पूर्व हो चुका था। पर उस समय उसके चरण अत-विरामी (end-Stopped) होते थे। अर्थात् प्रत्येक चरण के अत मे भाव की समाप्ति हो जाती थी। मार्लो ने ही सर्वप्रथम अपने अतुकांत पद्य में लिखे नाटकों में पादांतरप्रवाही चरण (run-on-line) का स्वतत्रतापूर्वक प्रयोग किया, जो अंत में समाप्त न होकर आगे के चरण के किसी अंश पर विराम लेता है। पीछे शेक्सपियर ने अपने उत्तमोत्तम नाटकों में और मिल्टन ने अपने अमर महाकाव्य पैराडाइज लॉस्ट (Paradise Lost) में ऐसा प्योग किया। पीछे मिल्टन के पैराडाइज लॉस्ट से एक उद्धरण दिया जा चुका है। यहाँ शेक्सपियर के टेम्पेस्ट (Tempest) से एक उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है—

Well demanded, Wench;
My tale provokes that question, Dear, they durst not,
So dear the love my people bore me, nor set
A mark so bloody on the business; but
with colours fairer painted their foul ends.

यहाँ भाव चरणांत में समाप्त न होकर आगे के चरण में प्रवहमान हो गया है, जिसका ज्ञान हमें वाह्यतः अनेक प्रकार के विराम-वोधक चिह्नों से भी प्राप्त होता है।

पैराडाइज लॉस्ट के आदर्श पर लिखे गए मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद-वध'

१. कविता-कौमुदी, पृ० २६६।

की भी कुछ पक्तियाँ देख लीजिए—

ए हेन सभाय वसे रक्षः कुलपति,
वाक्य-हीन पुत्रशोके ! झर झर झरे
अविरल अश्रु-धारा—तितिया वसने,
यथा तरु, तीक्ष्ण शर सरस शरीरे
बाजिले, काँदे नीरवे ! कर जोड़ करि,
दाड़ाय सम्मुखे भग्नदूत, धूसरित
धुला य, शाणिते आर्द्र सर्व कलवर ।

—मेघनाद-वध : प्रथम सर्ग

उक्त उद्धरण में पादांतरप्रवाही चरण तो हैं ही, भाव की प्रवहमानता भी है । एक भाव प्रथम चरण से प्रारम्भ हो पाँचवें चरण के 'काँदे नीरवे' तक अक्षुण्ण रूप से प्रसरित होता चला आया है । ऐसे अनेक चरणों के समूह वाले पद्यांश को मोहित लाल मजूमदार ने वाक्य छंद [1] और डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने भावच्छंद [2] की संज्ञा से अभिहित किया है । पर मेरे विचार से ऐसे Verse paragraph को वाक्यछंद या भावच्छंद कहना वैसा ही ठीक नहीं, जैसा स्वयंभू का विवाहादि उत्सव के लिए किसी भी छंद में लिखित पद्य को मंगल छंद की संज्ञा से अभिहित करना । ऐसे पद्यांश को बन्द, अनुबन्ध अथवा पद्यानुबन्ध कहना ही उचित है । क्योंकि छंद शब्द से पाठक की वह वृत्ति उद्बुद्ध हो जाती है, जो पद्य में लय-विशेष का ढाँचा-रूप छंद को ढूंढ़ने लगती है । इस खोज के अनंतर जब मधुसूदन के उक्त पद्य में उसे पयार की लय मिलती है, तो वह उसे पयार छंद मान लेती है । अवश्य प्राचीन कवियों के द्वारा प्रयुक्त पयार के विपरीत उसमें चरणों की वह प्रवहमानता है, जिसको

---

१. सेइ नूतन छंदोभंगी 'वाक्य छंदेर' उपरइ प्रतिष्ठित, सेइ छंद होइते मधुसूदन ताहार अमर छंद गड़िवार इंगित पाइया छिलेन ।
—आधुनिक बाङ्ला साहित्य, पृ० २८६ (आ० हि० का० में छंद योजना से उद्धृत) ।

२. भाव के प्रारम्भ से अन्त तक जितना पद्यांश सीमाबद्ध होता है, उसे भावच्छंद कहते हैं ।—आ० हि० का० में छंदयोजना : पादटिप्पणी, (पृ० ३८६) ।

दृष्टि में रखकर प्रबोधचंद्र सेन ने इसे प्रवाहमान पयार छंद नाम दिया है[1] और जो बहुत उपयुक्त है।

संस्कृत साहित्य में भाव की प्रवहमानता अत्यंत प्राचीन काल से देखी जाती है। वाल्मीकि, व्यास तथा पुराणकार का भाव कहीं-कहीं जब अनुष्टुप के चार चरणों में नहीं अँट सका है, तो उन्होंने अनुष्टुप की एक अर्द्धाली तक उसे और बढ़ जाने दिया है। यथा—

एवमुक्त्वा महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम्।
इममाश्रममुत्सृज्य सिद्धचारणसेविते।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः।

—वाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग ४८।३४

वाद के कवि भी, चार चरणों में भाव की समाप्ति नहीं होने पर दो, तीन, चार और पाँच पद्यों के योग से अनुबन्ध की रचना करते रहे। इन्हें ही आचार्यों ने क्रमशः युग्मक, संदानितक, कलापक और कुलक नामों से अभिहित किया है।[2] रघुवंश के प्रारम्भ में रघुवंशियों का वर्णन कालिदास ने इसी कुलक (पाँच पद्यों) के सहारे किया है। यथा—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामा फलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथाऽपराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।

—रघुवंश : सर्ग १।५-९

---

१. मधुसूदनेर प्रवर्तित छंदरे यदि कोनो यथार्थ नाम दिते हय, तबे ताके बला उचित 'प्रवाहमान पयार' छंद।—छंदोगुरु रवींद्रनाथः पृ० १०७ (आ० हि० का० में छंदयोजना से उद्धृत)।

२. द्रष्टव्य : साहित्यदर्पण : श्लोक ३१४-३१५।

यहाँ भाव की प्रवहमानता के साथ एकवाक्यता भी है, जिसका कर्त्ता प्रथम चरण में 'अहम्' है और क्रिया नवें चरण में 'वक्ष्ये' है। इस प्रकार एक पद्य से कई पद्यों तक भाव की प्रवहमानता तो संस्कृत साहित्य मे मिलती है; पर उसकी समस्त अतुकांत कविता में ऐसा एक भी चरण प्राप्त नहीं होता, जो अंत में नहीं रुक कर आगामी चरण के किसी अंश पर विश्राम लेता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत पद्य के सारे चरण अतविरामी (end-Stopped) हैं, पादांतरप्रवाही (run-on-line) नहीं। हिन्दी के प्राचीन काव्यों में भी यही बात है। द्विवेदी-युग के पूर्व कोई पद्य ऐसा नहीं लिखा गया, जिसका कोई चरण पादांतरप्रवाही हो। द्विवेदी-युगीन श्रीधर पाठक की 'सांध्य-अटन' और मैथिलीशरण के अनुवादित ग्रंथ 'मेघनाद-वध' में ही सर्वप्रथम हम ऐसा प्रयोग पाते हैं। द्विवेदीयुगीन इस प्रयोग को छायावाद में प्रश्रय तो मिला, पर उसकी वैसी प्रतिष्ठा नहीं हुई, जैसी होने की सम्भावना की जा सकती थी। महादेवी ने तो ऐसा प्रयोग किया ही नहीं। प्रसाद, निराला और पंत ने जो भिन्नतुकांत पद्य लिखे, उनमें कहीं-कहीं दो-चार पादांतरप्रवाही पंक्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। पैराडाइज लॉस्ट और मेघनाद-वध के सदृश (ऐसा मैं भिन्नतुकांत और पादांतरप्रवाही पंक्तियों को लेकर कह रहा हूँ) कोई काव्य इन कवियों ने नहीं लिखा। प्रत्युत् प्रसाद ने 'कामायनी,' पंत ने 'लोकायतन' और निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' की रचना आद्योपांत अत्यानुप्रासयुक्त पद्यों मे की। पंत ने तीन नाटकों की रचना भिन्नतुकांत कविता मे अवश्य की, पर उनमें शेक्सपियर की-सी पादांतरप्रवाहिता के दर्शन नहीं होते। 'राम की शक्ति-पूजा' के सतुकांत पद्यों में कहीं-कहीं पादांतरप्रवाही पंक्तियाँ भी दिखलाई पड़ जाती हैं। जैसे—

रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्रकर, वेग प्रखर,
शत शेल संवरणशील, नील नभ-गर्जित स्वर,

हिन्दी के लिए यह अवश्य नई वस्तु है, परन्तु अंग्रेजी में सतुकांत पद्यों में ऐसी पादांतरप्रवाही पंक्तियाँ बहुतायत से मिलती हैं। यथा—

That murmur, soon replies; God doth not need
Either man's work, or His own gifts; who best

Bear His mild yoke, they serve Him best; His state
Is kingly; thousands at His bidding speed
And post o'er land and ocean without rest;—
They also serve who only stand and wait.
—J. Milton (On his Blindness)

अंग्रेजी के ऐसे प्रयोग को ध्यान मे रखते हुए हिन्दी की पादांतरप्रवाहिता पर अंग्रेजी का प्रभाव देखना सर्वथा युक्तिसगत है। संभव है, हिन्दी के कवियों ने ऐसे प्रयोग की प्रेरणा बगभाषा से भी ग्रहण की हो; पर बँगला के माइकेल, रवीद्र आदि स्वयं अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित थे।

यहाँ एक और बात का उल्लेख भी हो जाना चाहिए। अंग्रेजी कविता में प्रयुक्त विराम-बोधक चिह्नों को देखते हुए यह कहना शायद असंगत न होगा कि हिन्दी ने अपने आधुनिक पद्य में अल्पविराम (Comma), अर्द्धविराम (Semicolon), प्रश्नवाचक चिह्न, विस्मयादिबोधक चिह्न आदि का प्रयोग करना अंग्रेजी से ही सीखा है। क्योंकि भारतेंदु-काल तक हिन्दी पद्यों के प्रत्येक चरण के अंत में पूर्ण विराम (।) का ही चिह्न दिया जाता रहा। द्विवेदी-युग की प्रारंभिक कविता के साथ भी यही बात है। इतना ही नहीं, हिन्दी के प्राचीन गद्य में भी और किसी प्रकार का विराम-चिह्न नहीं दिया जाता था। केवल वाक्य की समाप्ति पूर्णविराम के चिह्न के साथ होती थी।

१३. स्वच्छंद छंद

अपने स्वच्छंद-मुक्त छंद को परंपरागत सिद्ध करने के निमित्त यजुर्वेद की निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण
मस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू-
र्याथातथ्योऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥
(यजु०, अध्याय ४०/८)

निराला ने लिखा है—जरा चौथी पंक्ति को देखिए, कहाँ तक फैलती चली गई है। फिर भी किसी ने आज तक आपत्ति नहीं की।[1] आपत्ति की गई है।

1. परिमल की भूमिका, पृ० ८

एक अक्षर कम वाले पाद को निचृत एवं दो कम वाले को भूरिक तथा दो अक्षरों की न्यूनता-अधिकता वाले छंदों को क्रमशः विराट् और स्वराट् उद्घोषित करने वाले (अनाधिकेनैकेन निचृद भुरिजौ। द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ—सर्वानुक्रमणी पृ० २) कात्यायन ने ऋग्वेद के प्रत्येक मंत्र के छंदों का तो निर्देश किया; पर यजुर्वेद के मंत्रों के सम्बन्ध में स्पष्ट लिख दिया—यजुसामनियताक्षरत्वादेतेषां छन्दो न विद्यते। (यजुर्वेद के मन्त्रो के अक्षर नियत न होने से उनमें छंद नहीं है।)[१] अब इससे बड़ी आपत्ति क्या हो सकती है ? बात चाहे जो हो। वैदिक ऋषियों ने अपने छंदःप्रयोग में काफी स्वच्छंदता ग्रहण की है, यह मानी हुई बात है। लौकिक संस्कृत में छंदःप्रयोग की वह स्वच्छंदता नहीं रह गई। जहाँ वैदिक छंदों में वर्ण की लघुता-गुरुता का कोई प्रश्न नहीं था—मनमाने रूप से कोई वर्ण कहीं भी रक्खा जा सकता था; वहाँ लौकिक छंद गण के कठोर बन्धन में बँध गए। ऐसा क्यों हुआ ? निराला के अनुसार—'परवर्ती काल में ज्यों-ज्यों चित्रप्रियता बढ़ती गई है, साहित्य में स्वच्छंदता की जगह नियंत्रण तथा अनुशासन प्रबल होता गया है, वह जाति त्यों-त्यों कमजोर होती गई है।[२] बात चाहे सही हो, पर यह किसी कला के विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है। पहले-पहल जब कोई कला जन्म ग्रहण करती है, तो वह अनगढ़ रूप में (Crude form) में रहती है। धीरे-धीरे परिष्कार के साथ वह सुडौल होती है। आज भी इस वैज्ञानिक युग में जब कोई वस्तु पहले-पहल बनती है, तो वह सामान्यतः अनगढ़ रूप में रहती है। फिर धीरे-धीरे उसमें निखार आता जाता है। वेद हमारा आदि काव्य है। अतः प्रथम-प्रथम कवियों की वाणी लयात्मक रूप में किसी तरह फूट पड़ी थी। उस समय लय का कोई निर्दिष्ट ढांचा अर्थात् छंद नहीं था। अतः उनकी वाणी स्वच्छंदतापूर्वक विचरण कर सकी। धीरे-धीरे लय के ढाँचे में निर्दिष्टता आने लगी और छंद गण के शासन में आने लगे। लौकिक की तो बात छोड़िए। वैदिक कवि ही आगे चलकर वर्णों के लघुत्व और गुरुत्व से उत्पन्न संगीत के मर्म को समझने लगे थे और संहिता काल के अंत में अपने पूर्ण स्वर-संगीत को छोड़कर, जो स्वर के आरोह-अवरोह पर अवलंबित था; लघु-गुरु की क्रमिक

---

१. बच्चन सिंह कृत 'क्रान्तिकारी कवि निराला' के पृ० २१ से उद्धृत

२. परिमल की भूमिका, पृ० ८—९

स्थापना पर आधारित नए प्रकार के संगीत को प्रमुखता देने लगे थे।[1] इस प्रकार निराला की 'चित्रप्रियता'—जो कला-विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया है—वैदिक काल से ही प्रारभ हो गई थी और उसकी चरम परिणति हुई लौकिक संस्कृत में।

इस प्रकार लौकिक संस्कृत साहित्य नियम और अनुशासन के वीच भी अपनी जीवंत प्राणवत्ता का उद्घोष करता रहा। तदनंतर अपभ्रंश कवियों में एक बार फिर स्वच्छंदता आई। छंदःप्रयोग में उनकी स्वच्छदता का दर्शन वहाँ होता है, जहाँ उन्होंने ऐसी द्विपदी की रचना की; जिसके द्वितीय चरण में तो नियमत: २७ मात्राएँ होती हैं (जो गाथा—आर्या का तीसरा-चौथा चरण है) पर प्रथम चरण में ३०, ३४, ४६, ५४, ६२, ७०, ७८, ८६, ६४, १०२, ११०, ११४ मात्राएँ तक रह सकती हैं, (जिसका निर्माण गाथा के प्रथम चरण के अंतिम गुरु के बाद कुछ चतुर्मात्रिक के योग से होता है) कवि-दर्पण के द्वितीय उद्देश मे ऐसे अनेक छंदों के नाम तथा उदाहरण दिए गए हैं। एक उदाहरण सगाथ का निम्नलिखित है, जिसके प्रथम चरण में ७० और द्वितीय में २७ मात्राएँ हैं—

पियमरणसोयरोयंत दीणणिप्पुत्त नारिधणचाय कित्ति संभारभरियभुवणं-
तराल भूवालतिलय सिरिकुमरवाल किं भणिमो।
नत्थि न आसि ण होही तुह तुल्लो भूवई भुवणे।

—कविदर्पण, द्वितीय उद्देश,पृ० २१

अपभ्रंश की यह स्वच्छंदता पृथ्वीराज रासो की 'वचनिकाओं' में कुछ हद तक देखी जा सकती है। विद्वानों ने तो इन वचनिकाओं को गद्य माना है,[2] पर

1. It will thus be clear that the Vedic poets were gradually becomings conscious of a defferent kind of music, which could be produced by the alternation of short and long letters. By the end of the Samhita period, the earlier metrical music based on the modulation of voice to different pitche and tunes seems to have been generally given up in preference to the new kind of music based on the alternation of short and long sounds.

—Jaydaman ; H. D. Velanker, Page 11

२. (क) चंदबरदायी और उनका काव्य : डॉ० विपिनविहारी त्रिवेदी, पृ० २८३-२८५

(ख) रासो में वीच-वीच में जो वचनिकाएँ आती हैं वे गद्य ही हैं।

—हि० सा० का आदिकाल, पृ० ६४

उनमें कुछ ऐसी हैं, जो लयात्मकता के कारण पद्य मानी जा सकती हैं। यथा—

सुरतान सु विहान सुलतान साहावदीन
करि करतार कि जोर जासु किति जै अरु दल की जोरि जोरि
जनु दरियाव की हिलोर मिलते सों मुँह जोरै
अनमिलत सो वल पंचि कठोरै सुचिर दूतांन
आनि कही कायथ घ्रमान दिल्ली की पवरि विवरि लषि दीनी
अनंग पाल तूँअर वनवास लीनी।

—समय १६, छं० ११४

उक्त पंक्तियाँ यदि निम्न ढंग से लिखि हों—

सुरतान सु विहान .. ..दीप
सुलतान साहावदीन .. .. तोमर
करि करतार कि जोर... ... . अहीर
जासु किति .. .. धारी
जै अरु दल की जोरि जोरि... ... . कज्जल
जनु दरियाव की हिलोर... ... .२+अहीर
मिलते सों मुँह जोरै ....महानुभाव
अनमिलत सो वल पचि कठोरै... . . ..राम
सुरतान सुचिर दूतांन... ... ...२+अहीर
आनि कही कायथ घ्रमान... ... .कज्जल
दिल्ली की पवरि विवरि लिषि दीनी............माली
अनँग पाल तूँअर... ... ...नयन
वनवास लीनी... ... ...गंग

तो हम देखेंगे कि निराला के निम्न और रासो के उक्त पद्यों में कोई खास अन्तर नहीं है—

दिवसावसान का समय .. ..पदपादांकुर
मेघमय/आसमान से उतर रही है... ... ...५+चौपाई
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी... ... ...चौपाई
धीरे धीरे धीरे ... ...महानुभाव
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास, ... सरसी
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर... ... ...तमाल

किंतु जरा गंभीर—नहीं है उनमें हास-विलास। ... .सरसी
हँसता है तो केवल तारा एक... ... ...तमाल
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले काले बालों से ... . सार
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक। ...सरसी
—परिमल : संध्या सुन्दरी

पर रासो की छंदोविषयक यह स्वच्छंदता छायावाद के पूर्व तक फिर देखने में नही आती। छायावादियों में भी प्रसाद और महादेवी ने स्वच्छंद छंद का प्रयोग नही किया है। निराला और पंत में ही स्वच्छंद छंद में लिखी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। निराला का एक उदाहरण ऊपर दिया गया है। पंत का भी एक उदाहरण देख लीजिए—

देखता हूँ, जब उपवन ... ...शृंगारकल्प
पियालों में फूलों के ... ... ,,
प्रिये ! भर-भर अपना यौवन... ... .. गोपी
पिलाता है मधुकर को;... ... .. शृंगारकल्प
नवोढ़ा बाल लहर... ... ... शिखंडी
अचानक उपकूलों के... ... .. शृंगारकल्प
प्रसूनों के ढिग रुक कर... ... ,,
सरकती है सत्वर; ... ... शिखंडी
अकेली आकुलता-सी प्राण ! .. ... शृंगार
कहीं तब करती मृदु आघात, ... ,,
सिहर उठता कृश गात... ... ...तांडव
ठहर जाते हैं पग अज्ञात। .. . .. शृंगार
—पल्लव : आँसू

इस प्रकार छोटी-बड़ी पंक्तियों में लिखी कविता हिन्दी में छायावाद के पूर्व भले ही न मिले ; पर अंग्रेजी और बंगला में बहुतायत से मिलती है। नीचे एक-एक उदाहरण दिया जाता है।

(क) There was a time when meadow, grove and Streem,
The earth, and every common sight
To me did seem
Apperell'd in celestial light,
The glory and the freshness of a dream.

It his not now as it hath been of yore;—
Turn wheresoe'er I may
By night or day,.
The things which I have seen I now can see no more
—Wordsworth (ode on immortality)

(ख) हे सम्राट्, ताई तव शंकित हृदय
चेयेछिल करिवारे समयरे हृदयहरण
सौंदर्य तुलाये।
कंठेतार की माला दुलाये
करिले वरण
रूपहीन मरणेरे मृत्युहीन अपरूप साजे ?
रहे न ये
विलापेर अवकाश
वारो मास
ताई तव अशांत क्रंदने
चिर मौन जाल दिये वेंधे दिले कठिन वंधने।
—रवींद्रनाथ (शा-जाहान)
१८ कार्तिक १३२१ (सन् १९१५ ई०)

वर्ड्सवर्थ और रवीन्द्र के उद्धरणों को देखते हुए यह आसानी से कहा जा सकता है कि निराला और पन्त स्वच्छंद छंद के प्रयोग में भी, जहाँ तक छंद की वनावट (Structure) की वात है, अंग्रेजी और वँगला से प्रेरित हुए हैं, क्योंकि इन दोनों की ऐसी कविताएँ १९१५ के वाद ही लिखी गई हैं। ऐसी कविताएँ हिन्दी के लिए अवश्य क्रांति की सूचना देने वाली थी।

१४• मुक्त छंद

स्वच्छंद छंद और मुक्त छंद में सामान्यतया यह अन्तर है कि छोटी-वड़ी पंक्तियों में तो दोनों ही लिखे जाते हैं; पर स्वच्छंद छंद की सारी छोटी-वड़ी पंक्तियाँ किसी-न-किसी शास्त्रीय छंद की होती हैं, और मुक्त छंद की पंक्तियों का आधार वर्णिक मुक्तक कवित्त का लय-खण्ड होता है। साथ ही मुक्त छंद प्रायः अतुकांत होता है। (निराला-काव्य में यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है) पर स्वच्छंद छंद में तुक का आग्रह किंचिदंश रूप में अवश्य रहता है। इस प्रकार की अतुकांत छोटी-वड़ी पंक्तियों में लिखित रचनाएँ

अंग्रेजी में निराला से पूर्व लिखी गई थीं। अंग्रेजी में इलियट (सन् १८८८-१९६५) की अधिकांश रचनाएँ इसी रूप में लिखी गई हैं। इलियट की सन् १९१७ मे प्रकाशित सतुकांत कविता की कतिपय पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

Let us go then, you and I
When the evening is spread out against the sky
Like a patient etherised upon a table ;
Let us go, through certain half-deserted streets,
The muthering retreats
Of restless nights in one-night cheap hotels
And sawdust restaurants with oyster-shells ;
Streets that follow like a tedious argument
Of insidious intent

To lead you to an overwhelming question.........
Oh, do not ask, 'what is it ?'
Let us go and make our visit.
—T. S. Eliot (The Love Song of J. Alfred Prufrock)

रवीन्द्रनाथ के 'संचयिता' में भी कुछ अतुकांत कविताएँ इसी आकार-प्रकार की मिलती है, जो बंगला सन् १३३९ (सन् १९३३ ईस्वी) में लिखी गई हैं। एक उदाहरण दिया जाता है—

लिखते बसेछि चिटि
सकालेइ स्नान हये गेछे।
लिखि ये की कथा निये किछुतेइ भेवे पाइ ने तो।
एकटि खवर आछे शुधु—
तुमि चले गेछ।
से खवर तो मोरो तो जाना।
तबु मने हय,
ताइ भावि, ए कथाटि जानाइ तोमाके—
तुमि चले गेछ।
यतवार लेखा शुरू करि
ततवार धरा पड़े, ए खवर सहज तो नय।
आमि नइ कवि,

भाषार भितरे आमि कण्ठस्वर पारि ने तो दिने,
ना थाके चोखेर चाओया
जत लिखि तत छिड़े फेलि ।
—रवींद्रनाथ (संचयिता : पत्रलेखा)

निराला के 'परिमल' के तृतीय खंड की सारी कविताएँ इसी ढंग की हैं। एक उदाहरण लीजिए—

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग-से,
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कंपन-सा निद्रित
सरोवर में ।
लाज से सुहाग का—
मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय-निवेदन का
मंद हास-मृदु वह
सजा-जागरण जग,
थक कर वह चेतना भी लाजमयी
अरुण किरणों में समा गई ।
—परिमल : जागृति में सुप्ति थी

जहाँ तक आकार-प्रकार की बात है, उक्त तीनों भाषाओं की रचनाओं में कोई अन्तर नहीं है। और निराला इस प्रकार अंग्रेजी-बँगला से प्रेरित माने जा सकते हैं। पर जहाँ तक छंद की अंतरात्मा का प्रश्न है, अंग्रेजी छंद से निराला के छंद का कोई सम्बन्ध नहीं। बँगला से थोड़ा सम्बन्ध इस आधार पर सम्भव है कि निराला का उक्त छंद वर्णिक मुक्तक कवित्त के लयाधार पर चलता है और बँगला के उक्त छंद का आधार भी वर्णों की गणना ही है। आठवीं पंक्ति तो स्पष्टतः पयार का पूर्ण चरण है। पर इस कार्य के लिए निराला ने जो कवित्त के लयाधार को ग्रहण किया, वह उनकी अपनी सूझ अवश्य कहा जायगा। पर कवित्त के अतिरिक्त हिन्दी में कोई दूसरा वर्णिक मुक्तक है भी तो नहीं।

कवित्त का प्रचलन १६०० वीं शताब्दी से पूर्व नहीं माना जा सकता।

सूरदास ने कवित्त का प्रयोग पदों में तो किया ही, उसके चरण के उत्तरार्द्ध (१५ वर्णवाले अंश) को कई पदों मे प्रयुक्त कर उसे एक नूतन छंद का गौरव भी प्रदान किया। इस प्रकार कवित्त के चरण का नूतन ढंग से प्रयोग करने वाला प्रथम कवि सूरदास ही है। बहुत आगे चल कर मैथिलीशरण ने इस छंद में 'मेघनाद वध' का अनुवाद कर इसकी वर्णनात्मक शक्ति का उद्घाटन किया। इस प्रकार एक छंद के रूप में मिली हुई इसकी प्रतिष्ठा पूर्णतः सुदृढ़ हो गई और यह एक शास्त्रीय छंद बन गया। इसी द्विवेदी-युग मे शिवाधार पांडेय ने कवित्त के लय-खंड को बन्धन से थोड़ा मुक्त करने का भी प्रयास किया है। यथा—

वीर हो बली हो सुविदित विजयी हो तुम··· ····१६ वर्ण
अस्त्रन में पंडित अखंडित अमोघ शर।····· ····· ,,
भूरि महाभाग भागिनेय भगवान के हो········· ,,
अग जग में जाहिर पिता के पुनि जैसे सुत।········१७ ,,
भरत-कुल-भूषण विभूषण वसुधा के सुठि·· ······१८ ,,
जननी जिय जीवन सजीवन हो मोरे प्रिय।········ १७ ,,
वीर दुहिता हूँ वीर वंश की सुता हूँ प्रभु·· ·······१६ ,,
वीर की वधू हूँ वसुधा व्यापी जिनको यश।····· ···१६ ,,
—उत्तरा मिलन (कविता कौमुदी, पृ॰ ४६०)

फिर भी यह छंद ही बना रहा, मुक्त छंद की गरिमा इसमें न आ सकी; क्योंकि इसकी मुक्ति एक-दो वर्णो की न्यूनता-अधिकता तक ही सिमट कर रह गई। निस्संदेह द्विवेदी-युग के ही कवि श्रीधर पाठक ने शिवाधार पांडेय के कुछ पूर्व अपनी जीवनी जिस मुक्त वृत्त में लिखी है, उसमें मुक्त छंद की मुक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है। नीचे उसका थोड़ा-सा अंश उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

वर्ष पैसठ हुई आज अपनी वयस, हर्ष-पूरित हुई स्वगृह-जन-मंडली मन हुआ मुदित अति उदित रवि-दरस सँग, प्रात के समय ज्यों सरस सरसिज कली।

'मंडली' शब्द पर्यन्त इस पद्य की पंक्ति उत्सव-सुलभ विमल मंगलमयी, जनवरी मास तारीख तेईस उन्नीस-पच्चीस सन् बीच विरचित हुई।

बहुत से मित्र अनुरोध अति कर रहे, कीजिए शीघ्र लिपिबद्ध निज

जीवनी। न अतिविस्तृत न अति लघु न अत्युक्ति-युत, किंतु सब सत्य सुव्यक्त स्व-व्यक्तिगत, सकल घटना-घटित सरलता से वलित-सुभग सुन्दर ललित--सुघर साहित्य संस्थान से अस्खलित, सुभग कल कोकिला-काकिली-सी भली।

किन्तु मम जीवन वस्तु ऐसी नहीं, जो कि हो जगत के जानने योग्य। अतएव इस ओर मति अतिव आती नहीं, चित्त में सुरुचि समुचित समाती नहीं पर सुजनवृंद या सहृदय-जन-संघ की ओर से की गई प्रबल वो प्रार्थना विवशता विवश स्वीकार्य होती हुई जगत के बीच है प्रायः देखी गई।[1]

यदि उपरिलिखित पंक्तियाँ निम्न रूप में लिखी जायें---

वर्ष पैंसठ हुई आज अपनी वयस,
हर्ष पूरित हुई स्वगृह-जन-मंडली
मद हुआ मुदित अति
उदित रवि-दरस सँग
प्रात के समय ज्यों सरस सरसिज कली।
'मंडली' शब्द पर्यन्त इस पद्य की
पंक्ति उत्सव-सुलभ विमल मंगलमयी,
जनवरी मास
तारीख तेईस
उन्नीस पच्चीस सन् बीच विरचित हुई।
बहुत से मित्र अनुरोध अति कर रहे,
कीजिए शीघ्र लिपि-बद्ध निज जीवनी।
न अति विस्तृत
न अति लघु
न अत्युक्ति-युत
किंतु सब सत्य सुव्यक्त स्व-व्यक्तिगत,
सकल घटना-घटित
सरलता स वलित
सुभग सुन्दर ललित---
सुघर साहित्य-संस्थान से अस्खलित

1. नवीन पद्य संग्रह : सं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग : १७वाँ संस्करण २००८, पृ० २६-२६

सुभग कल कोकिला-काकली-सी भली।
किन्तु मम जीवन वस्तु ऐसी नहीं,
जो कि हो जगत के जानने योग्य।
अतएव इस ओर मति अतिव आती नहीं
चित्त में सुरुचि समुचित समाती नहीं
पर सुजन-वृन्द या
सहृदय-जन-संघ की ओर से
की गई प्रबल यों प्रार्थना
विवशता विवश स्वीकार्य होती हुई
जगत के बीच है प्रायः देखी गई।

तो निराला के मुक्त छंद के सामने ये अकड़ कर खड़ी हो सकती हैं। क्योंकि उपरिलिखित पंक्तियों का आधार भी स्पष्ट रूप से वर्णिक मुक्तक ही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवित्त की लय का यत्किंचित् आधार ले मुक्त छंद की रचना द्विवेदी-युग में ही हो चुकी थी। पर द्विवेदी और छाया दो युगों की पारस्परिक निकटवर्त्तिता के कारण द्विवेदी-युग के कवि-द्वारा लिखित होने पर प्रश्न यह उठता कि इसकी सर्वप्रथम रचना किसने की ? पाठक जी की उक्त कविता उनकी ६५ वें वर्ष में लिखी गई थी, जिसकी साक्षी स्वयं उनकी यह कविता दे रही है। पाठक जी का जन्म संवत् १९१६ में हुआ था।[1] इस प्रकार इस कविता का रचना-काल संवत् १९८१ (सन् १९२५ ई०) ठहरता है। निराला का जन्म संवत् १९५५ (सन् १८९९ ई०) में हुआ था[2] और उनकी 'जुही की कली' कविता उनके २१वें वर्ष में अर्थात् १९२० ई० की 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी।[3]

इस आधार पर तो यही कहा जायगा कि मुक्त छंद का शिलान्यास हिंदी में सर्वप्रथम निराला ने ही किया था। पीछे उस पर भवन का निर्माण भी उन्होंने ही किया और पच्चीकारी भी उन्होंने ही की। वीच में पाठक जी ने

---

१. द्रष्टव्य : नवीन पद्य संग्रह : सं० भगवती प्रसाद वाजपेयी, पृ० २३,

२. वही, पृष्ठ ९७

३. द्रष्टव्य : (क) कादंबिनी, सं० कपिल एवं शर्मा, पृ० ८६

(ख) २३वें वर्ष में प्रथम-प्रथम शिवपूजन सहाय द्वारा संपादित 'आदर्श' (कलकत्ता) पत्र में दिसम्बर १९२२, ऐसा भी विद्वानों का मत है।

मन की तरंग में आकर अपनी जीवनी को मुक्त छंद का लिवास पहना दिया। पर निराला ने उसे विचार के धरातल पर दृढ़तापूर्वक ग्रहण किया था। फलतः उनकी ऐसी नूतन विपुल सृष्टि ने धूमकेतु की तरह तत्कालीन पाठक-आलोचक की दृष्टि को आकर्षित किया और उन्होंने उसमें क्रांति का भयंकर अनल-विस्फोट पाया।

छायावाद में इन दीख पड़ने वाले सारे क्रांति-तत्त्वों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर लेने के बाद निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद-निर्माण, पादांतरप्रवाहिता, स्वच्छंद छंद और मुक्त छंद को छोड़कर शेष सारे तत्त्व एक प्रकार से परंपरागत ही हैं। इन तत्त्वों का प्राचुर्य छायावाद में रहा। इसीलिए ये भी उसकी क्रांति के अंग उसी प्रकार कहे जाने लगे, जिस प्रकार लाक्षणिक वक्रता, चित्रमयी भाषा और प्रतीक-योजना, केवल प्रचुरता के कारण, छायावाद की बहिरंग विशेषताएँ मानी जाने लगीं।

हिंदी छंद पर अंग्रेजी छंद के प्रभाव का उल्लेख पीछे कई स्थानों पर हुआ है। यह प्रभाव केवल बाहरी है—रूप-रंग, आकार-प्रकार और शरीर का प्रभाव है—अंतरात्मा का नहीं। शरीर को अपना कर भी हिंदी कवियों ने उसमें अपने छंद की आत्मा का विनियोग किया है। हिंदी कवियों की यही चेष्टा उनकी मौलिकता है। अंग्रेजी और हिंदी छंदों के निर्मायक तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। अंग्रेजी छंद उच्चरित (accented) और अनुच्चरित (unaccented) शब्दांशों Syllables) से बने पर्व (foot) के आधार पर तो चलता है, पर उसमें निहित मूल तत्त्व बलाघात (accent) है। कॉलरिज ने तो यहाँ तक कह दिया है कि शब्दांशों की संख्या को छोड़कर बलाघातों की गणना करो। (Count the accent, ignor the number of Syllables) अंग्रेजी भाषा और छंद में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं कि वह गद्य के स्तर तक उतर कर भी लयात्मकता की रक्षा कर लेते हैं। ईलियट की तो बात छोड़िये। शेक्सपियर के नाटकों से ऐसी अनेक पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं, जो गद्य के स्तर तक आकर भी लयात्मक हैं—पद्यात्मक हैं। हिंदी के छंद काल-परिमाण-सूचक मात्रा के आधार पर चलते हैं; जिनमें लघु-गुरु के संयोग से वह संगीत उत्पन्न होता है, जो ध्वनि की विविधता (Sound-Variation) पर अवलंबित है। अंग्रेजी और हिंदी संगीत की चर्चा करते हुए निराला ने स्पष्ट कहा है—'अंग्रेजी संगीत के नाम से जो कुछ लिया गया, उसे हम अंग्रेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं। स्वर-मैत्री हिंदुस्तानी ही रही। × × × स्वर-मैत्री के

प्रकृति-सौन्दर्य, सरोज, भक्ति) और नाट्य (प्रायश्चित्त) पद्य के अभाव में हमारे काम की चीज नहीं।

उक्त १८ ग्रन्थों में प्रसाद ने जिन छंदों का प्रयोग किया है, वे निम्न-लिखित हैं—

मात्रिक सम—

सुगति, शृंगाराभास, विमोहा मात्रिक, शशिवदना, अहीर, शिव, आलोक, महानुभाव, तोमर, शृंगार-कल्प, उल्लाला, उर्वशी, हाकलि, सुलक्षण, सखी, मनोरम, गोपी, उज्ज्वला मात्रिक, चौपई, चौबोला, चौपाई, शृंगार, पदपादाकुलक, पद्धरि, चद्र, राम, ग्रह, पीयूपवर्षी, सुमेरु, तमाल, हंसगति, योग, तिलोका, राधिका, विरहिणी, रोला, रूपमाला, दिगपाल, मुक्तामणि, विष्णुपद, गीतिका, सरसी, माधवमालती, सार, हरिगीतिका, विधाता, ताटंक, वीरछंद, समान सवैया और मत्त सवैया = ५०

अर्द्धसम—

दोहा, दोहकीय, सोरठा = ३

मिश्रछंद—

छप्पय = १

वर्णवृत्त सम—

विध्वंकमाला, प्रियंवदा, वंशस्थ, द्रुतविलंवित, तोटक, वसंततिलका, मालिनी, पंचचामर, सवैया (मत्तगयंद, दुर्मिल, मुक्तहरा) = ६

वर्णवृत्त अर्द्धसम—

वियोगिनी = १

वणिक मुक्तक—

लघु त्रिपदी, पयार, मनहरण घनाक्षरी, रूप घनाक्षरी, जलहरण = ५

इस प्रकार प्रसाद ने अपने संपूर्ण साहित्य की सृष्टि ६६ प्रकार के छंदों में की है। इनमें निम्नांकित छंदो का प्रयोग स्वतत्र रूप से नहीं प्रत्युत अन्य छद के साथ अथवा छदक (टेक) में हुआ है—

सुगति, शृंगाराभास, विमोहामात्रिक, शशिवदना, अहीर, शिव, आलोक, महानुभाव, शृंगार-कल्प, उर्वशी, हाकलि, सुलक्षण, मनोरम, गोपी, उज्ज्वला-मात्रिक, चौबोला, मुक्तामणि, माधवमालती, विध्वंकमाला = १६

अब आगे की पंक्तियों में प्रत्येक छन्द का विवरण उदाहरण-सहित प्रस्तुत किया जाता है —

(१) सुगति (७ मा०)

तेरा नाम, सब सुख धाम, (सुगति)
जीवन ज्योति स्वरूप। (अहीर)
मंगल गान, एक समान, (सुगति)
सब छाया की धूप। (अहीर)

—प्रसाद-संगीत (राज्य श्री) पृ० ६[1]

सुगति का उल्लेख भानु[2] और डॉ० शुक्ल[3] दोनों ने किया है। दोनों के अनुसार इसके दो रूप होते हैं, जो त्रिकल-चौकल के आधार पर चलते हैं। शुक्ल के अनुसार 'प्रायः दो सप्तक-भेद (ऽ। ऽऽ और ऽऽ।ऽ) ही इसमें प्रयुक्त होते हैं, और गुरु के स्थान पर दो लघुओं के रखने का विधान है।' पर भिखारीदास की शुभगति,[4] जिसे भानु ने सुगति का अन्य नाम माना है, के चार उदाहरणों में (चारि भाँति गति वन्द) एक उदाहरण निम्नलिखित है—

प्रभा विसाल। लालगुपाल।
जसुमति नन्द। आनँदकन्द।

—छन्दार्णव ५/४५

जिसमें सप्तक के।ऽ।ऽ।, ऽ।।ऽ।, ।।।।ऽ।, और ऽ।।ऽ। भेद भी मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि सुगति के अन्त में ऽ। भी रहता है। प्रसाद के उक्त पद्य में प्रथम एवं तृतीय सुगति की एक-एक अर्द्धाली है तथा द्वितीय एवं चतुर्थ अहीर का एक-एक चरण है। प्रसाद-साहित्य में सुगति के यही चार चरण उपलब्ध होते हैं।

(२) शृंगाराभास (६ मा०)

मनोहर झरना

× ×

१. प्रसाद के सभी नाटकों के गीतों का संकलन 'प्रसाद-संगीत' [भारती-भंडार, प्रयाग] में किया गया है। उसी के प्रथम संस्करण, सं० २०१३ के अनुसार पृष्ठ-संख्या निर्देशित है।
२. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४३।
३. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २४३।
४. भिखारीदास ग्रन्थावली : छन्दार्णव ५/४३ : सं० विश्वनाथ प्र० मिश्र।

देख कर झरना
× ×
हृदय से झरना
× ×
वह चला झरना।

—झरना (झरना)

श्रृंगाराभास के चरण का निर्माण पंचक और चौकल के योग से होता है। श्रृंगार की अंतिम ७ मात्राओं को हटा देने से यह बन जाता है। मनोरम की अंतिम ५ मात्राओं को निकाल देने से भी इसका निर्माण हो जाता है। जैसे—

मनोहर झरना अब निर्बंध—श्रृंगार
देखकर झरना मनोहर—मनोरम

प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में श्रृंगाराभास की उक्त चार पंक्तियाँ राम छन्द के साथ मिश्रित रूप में पाई जाती हैं।

(३) विमोहा मात्रिक (१० मा०)

आ मिलो हो जहाँ।
पी! कहाँ? पी! कहाँ?
× ×
श्यामघन! हो कहाँ?
पी! कहाँ? पी! कहाँ?

—झरना (पी! कहाँ?)

दो रगणों का विमोहा वर्णवृत्त होता है। जयकीर्त्ति ने इसे हंसमाला,[1] प्रा० पैंगलकार ने द्वियोधा[2] तथा भानु ने विमोहा[3] कहा है। उसी विमोहा का प्रयोग यहाँ मात्रिक रूप में हुआ है। प्रसाद साहित्य में इसकी केवल दस पंक्तियाँ उक्त कविता में चन्द्र छन्द के साथ मिश्रित है। श्रीधर पाठक की 'सांध्य अटन' नामक कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ इसी छन्द में निवद्ध है—

विजन वन-प्रांत था,
प्रकृति-मुख शांत था,

१. छन्दोऽनुशासन २/५१। २. प्रा०पै०, २।४५।
३. छन्दःप्रभाकर, पृ० १२१।

अटन का समय था,
रजनि का उदय था।

डॉ० शुक्ल ने भूल से इन्हें दीप के उदाहरण में रख दिया है।[1]

(४) शशिवदना (१० मा०)

मन के रोने से।
× ×
हृदय न होने से।
× ×
तेजस खोने से।
× ×
तेरे टोने से।

—प्रसाद-संगीत (विशाख) पृ० ४०

शशिवदना का उल्लेख स्वयंभूच्छन्दः में हुआ है, जिसके अनुसार इसमें ४ + ४ + २ मात्राएँ होती हैं।[2] विशाख के उक्त पद्य में चौपाई की एक-एक अर्द्धाली के बाद शशिवदना का एक-एक चरण प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त यह दो स्थलों पर छंदक (टेक) में भी प्रयुक्त हुआ है। यथा—

(क) मन जागो जागो।—प्र० सं० (जनमेजय का नागयज्ञ) पृ० ६८

(ख) जलधर की माला।—प्र० सं० (एक घूंट) पृ० १०४

(५) अहीर (११ मा०)

छवि की किरणों से खिल जा तू,
अमृत-झड़ी सुख से झिल जा तू, —चौपाई
इस अनन्त स्वर से मिल जा तू,
वाणी में मधु घोल।—अहीर

—प्र० सं० (एक घूंट) पृ० १०२

अहीर का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं हुआ है। उक्त पद्य में प्रथम तीन पंक्तियाँ चौपाई की हैं, और अंतिम अहीर की। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग दो जगह और हुआ है। एक 'राज्यश्री' में सुगति छन्द के साथ (जिसकी चर्चा पीछे हुई है) और दूसरी 'कामना' में हाकलि के साथ। यथा—

---

१. द्रष्टव्य : आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २४५।
२. स्वयंभूच्छन्दः ६/१२३।

किसे नहीं चुभ जायँ, नैनों के तीर नुकीले ।

—प्र० सं०, पृ० ७८

यहाँ पूर्वार्द्ध में अहीर के चरण को और उत्तरार्द्ध में हाकलि के चरण को एक इकाई माना है ।

(६) शिव (११ मा०)

(क) नदी नीर से भरी ।—प्र० सं० (विशाख) पृ० ३५

(ख) घने प्रेम-तरु तले ।—प्र० सं० (स्कंदगुप्त) पृ० ८८

(ग) मधुर मिलन कुंज में ।—प्र० सं० (एक घूँट) पृ० १०५

भानु के अनुसार शिव छन्द में ११ मात्राएँ होती हैं । अंत में सगण (। । ऽ) रगण (ऽ । ऽ) अथवा नगण (। । ।) रहता है ।[१] डॉ० शुक्ल इस छन्द का आधार ३ त्रिकल और १ गुरु मानते है । उनके मतानुसार यह त्रिकल गत्यात्मक (ऽ ।) होता है ।[२] ऐसी दशा में तो यह समानिका वर्णवृत्त (र ज ग) हो जाता है । भानु ने त्रिकल की बात तो नहीं कही, पर उनके उदाहरण में त्रिकल की योजना अवश्य है । हाँ, त्रिकल गत्यात्मक के साथ नगणात्मक भी है । इस प्रकार भानु ने शिव नाम से समानिका को मात्रिक रूप प्रदान किया है । इस आधार पर प्रसाद की उक्त तीनों पंक्तियाँ शिव की आसानी से मानी जा सकती हैं । प्रसाद-साहित्य में शिव का प्रयोग केवल छन्दकों में हुआ है ।

(७) महानुभाव (१२ मा०)

अलस नील घन की छाया में— } चौपाई
जलजालों की छल–माया में–– }

अपना बल तोलोगे !····(महानुभाव)

अनजाने तट की मदमाती— } चौपाई
लहरें क्षितिज चूमती आतीं ! }

ये झटके झेलोगे ।····(महानुभाव)

—प्र० सं० (स्कन्दगुप्त) पृ० ६२

महानुभाव छन्द का उल्लेख स्वयंभू ने किया है । उनके अनुसार इसकी गण-व्यवस्था ४+४+४ अथवा ६+६ है ।[३] सार का उत्तरांश होने के

१. छन्दःप्रभाकर, पृ ४४ ।

२. आ० हिं० का० में छन्द योजना, पृ० २४६ ।

३. स्वयंभूच्छन्दः ६।१२५ ।

कारण डॉ० शुक्ल ने इसे सारक कहा है।[1] प्रसाद-साहित्य में महानुभाव का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। उक्त गीत में चौपाई की अर्द्धाली के बाद महानुभाव का एक-एक चरण है। 'लहर' के एक गीत में पदपादाकुलक और हाकलि-सखी के साथ इसके भी कुछ चरण मिल जाते हैं। यथा—

वसुधा के अंचल पर·······महानुभाव
यह क्या कन-कन सा गया बिखर?···पदपादाकुलक
—लहर (प्रथम बार, ६२ वि०) पृ० २६

(८) आलोक (१२ मा०)

सखे, यह प्रेममयी रजनी।·······गोपी।
नयनों में मदिर विलास लिए,·······पदपादाकुलक।
उज्ज्वल आलोक खिला।·······आलोक।
हँसती-सी सुरभि सुधार रही,·······पदपादाकुलक।
अलकों की मृदुल अनी।·······आलोक।
मधु मन्दिर-सा यह विश्व बना,·······पदपादाकुलक।
मीठी झनकार उठी।·······आलोक।
केवल तुमको थी देख रही·······पदपादाकुलक।
स्मृतियों की भीड़ घनी·······आलोक।
—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० ११८

द्वादश मात्रापादी महानुभाव की गणव्यवस्था यद्यपि इस छन्द पर घटित हो जाती है, पर लय-भिन्नता के कारण इसे अन्य नाम देना पड़ा। इसका आविष्कार प्रसाद ने पदपादाकुलक की प्रारम्भिक चार मात्राओं को निकाल कर किया है। इस प्रकार आलोक के चरण का निर्माण एक चौकल (जगण को छोड़कर) एक द्विकल तथा दो त्रिकलों से होता है। आलोक का प्रयोग पदपादाकुलक के साथ केवल उक्त गीत की सात पंक्तियों में हुआ है। यहाँ पहली पंक्ति (टेक) गोपी में २री, ४थी, ६ठीं और ८वीं पदपादाकुलक में तथा ३री, ५वीं, ७वीं और ९वीं आलोक में निबद्ध है।

(९) तोमर (१२ मा०)

जय पतित पावन नाम।
जय प्रणत जन सुखधाम।

---

१. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २४८।

जय देव धर्म स्वरूप।
जय जय जगत्पति भूप।

—प्र० सं० (राज्यश्री) पृ० ५

भानु ने तोमर में १२ मात्राएँ और अंत में ऽ।, बस इतना ही बतलाया है। (तोमर सु द्वादश पौन)[1] डॉ० शुक्ल के अनुसार इसके आरम्भ में पंचक (तगण या रगण आधार) श्रुति-मधुर होता है। यदि चतुष्क आरम्भ में होता है, तो पाँचवीं मात्रा लघु होती है।[2] प्रसाद-साहित्य में उक्त पद्य के अतिरिक्त तोमर का प्रयोग 'चित्राधार' के अयोध्या का उद्धार (तुम क्यों बनी अति दीन? पृ० ४६) तथा पराग (कल्पना-सुख) में भी हुआ है।

(१०) शृंगार-कल्प (१३ मा०)

दीनता को अपनाया,
उसी से स्नेह बढ़ाया।
× ×
व्योम ने रंग खिलाया,
विश्व ने व्यर्थ नहाया।

—झरना : आशालता।

तेरह मात्रापादी इस छन्द का निर्माण शृंगार की अन्तिम तीन मात्राओं को निकाल देने से हुआ है। अतः इसके अन्त में कुछ भी रह सकता है, पर त्रिकल लय में बाधक होगा। इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप में नहीं हुआ है। शृंगार की दो अर्द्धालियों के बीच इसकी एक-एक अर्द्धाली रखकर अनुच्छेद का निर्माण किया गया है। शृंगारकल्प केवल 'आशा-लता' कविता की दस पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ है।

(११) उल्लाला (१३ मा०)

दिनकर किरन प्रभात में।
कुसुम कलिन की घात में।
निरखत ऊषा-ओट ते।
अम्बर पट में लोट ते।

—चित्राधार: वभ्रुवाहन, पृ० ३८

---

१. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४४।
२. आ० हि० का० में छन्दयोजना पृ० २५०।

भानु के अनुसार मात्रिक सम उल्लाला में १३ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघु-गुरु का कोई नियम नहीं है। (उल्लाला तेरा कला, नियम न गुरु-लघु अति भला)[1] यह वस्तुतः दोहे का विषम चरण है। प्रसाद-साहित्य में उल्लाला का स्वतंत्र प्रयोग उक्त स्थल के अतिरिक्त और कहीं नहीं हुआ है। अनेक छप्पयों में इस त्रयोदश मात्रापादी उल्लाला के दर्शन अवश्य हो जाते हैं।

(१२) उर्वशी (१३ मा०)

पी ले प्रेम का प्याला।

—प्र० सं० (कामना) पृ० ७६

उर्वशी छन्द का उल्लेख डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार तृतीय सप्तक (ऽ ऽ ऽ ।) के आधार पर बने सुलक्षण छन्द की अन्तिम लघु मात्रा को न्यून करके इस छन्द की सृष्टि की गई है।[2] उर्वशी का प्रयोग केवल मुक्तामणि-विष्णुपद (एक-एक पंक्ति) तथा दोहे से निर्मित उक्त पद के छन्दक मे हुआ है।

(१३) हाकलि (१४ मा०)

आप कहाँ छिप जाता है?

× ×

जीवन का वह नाता है।

× ×

जो कुछ हमको आता है।

—प्र० सं० (स्कन्दगुप्त) पृ० ६१

समप्रवाही हाकलि छन्द में १४ मात्राएँ होती हैं। चौपाई की अंतिम दो मात्राओं को निकाल देने से इसका निर्माण हो जाता है। हाकलि का स्वतंत्र प्रयोग प्रसाद-साहित्य में नहीं मिलता। उक्त स्थल पर चौपाई की तीन-तीन पंक्तियों के वाद इसकी एक-एक पंक्ति रख कर गीत का अनुच्छेद बनाया गया है। इसके अतिरिक्त 'कामना' में अहीर के साथ जो इसका प्रयोग हुआ है, उसकी चर्चा पीछे हो चुकी है।

---

१. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४५।

२. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २५१।

(१४) सुलक्षण (१४ मा०)

(क) मेरे प्रेम को प्रतिकार —चित्ताधार (मकरन्द विन्दु)
(ख) प्रिय स्मृति कंज में लवलीन पृ० १८८, १८६

(ग) अव भी चेत ले तू नीच। —प्र० सं० (राज्यश्री) पृ० ३

चतुर्दश मात्रापादी सुलक्षण सप्तक (ऽ ऽ ऽ ।) के आधार पर चलने वाला छन्द है। यह सप्तक की दो आवृत्तियों से वनता है। प्रसाद-साहित्य में इसका प्रयोग केवल रूपमाला में निवद्ध उक्त तीन पदों के छन्दकों में हुआ है।

(१५) सखी (१४ मा०)

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू वनकर
वह आज वरसने आई।

—आँसू

भानु के अनुसार सखी और हाकलि दोनों में १४ मात्राएँ होती है। पर सखी के अंत में ऽ ऽ ऽ (मगण) या । ऽ ऽ (यगण) और हाकलि के अंत में ऽ रहता है। 'त्रै चौकल गुरु हाकलि है' लिखकर उन्होंने हाकलि में तीन चौकल की भी व्यवस्था कर दी। जहाँ तीन चौकल नहीं वनते हों, वहाँ इसी १४ मात्रापादी छंद को हाकलि नहीं कहकर मानव कहेंगे।[१] भानु की इस चौकल-व्यवस्था ने डॉ० शुक्ल को भ्रमित कर दिया। उन्होंने हाकलि और सखी के बीच जो लय का भेद है, उस पर ध्यान नहीं दिया और चौकल का आधार लेकर 'आँसू' के छंद को मानव उद्घोषित कर दिया।[२] चौकल की जो व्यवस्था भानु ने वतलाई है, वह तो हाकलि के साथ है; जिसका निर्माण चौपाई (भानु के विचार से पादाकुलक) के अंतिम दीर्घ को निकाल देने से हुआ है। सखी पदपादाकुलक के अंतिम दीर्घ को हटा देने से वनी है। अतः हाकलि और सखी की लय में अंतर एकदम स्पष्ट है। हाकलि का प्रारंभ दो त्रिकलों से हो सकता है, पर सखी का नही। इसका प्रारंभ चतुष्कल के अतिरिक्त एक द्विकल+२ त्रिकल से होता है।[३] इस प्रकार 'आँसू' के छंद को

१. छंद:प्रभाकर, पृ० ४६-४७।
२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २५४।
३. इस संवंध में विशेष रूप से द्रष्टव्य : लेखक का निवंध—आँसू का छंद (प्रकाशित सम्मेलन पत्रिका, भाग ५४, संख्या ३,४ आषाढ़-मार्गशीर्ष, शक १८९०)।

मानव कहना ठीक नहीं। वह सखी छंद है। दिनकर ने इसे प्रसादी छंद कह कर उर्दू की मफऊलो मफाईलुन मफऊलो मफाईलुन बहर से इसके निकलने की संभावना प्रकट की है।[1] पर ऐसी बात नहीं है। इसका प्रयोग सूरदास ने किया है, जिनके छंदों पर उर्दू का कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता। इस प्रकार सूरदास द्वारा प्रयुक्त यह छंद है तो प्राचीन, पर छायावाद-युग में इसका विशेष रूप से प्रचलन हुआ। प्रसाद ने इसका प्रयोग 'आँसू' के अतिरिक्त 'कामायनी' के आनंद सर्ग में तथा 'लहर' में दो जगहों पर किया है। यथा—

(क) विश्राम माँगती अपना।
जिसका देखा था सपना।

—लहर (हे सागर संगम) पृ० १३

(ख) पद्धरि-पदपादाकुल तथा सखी के मेल से निर्मित निम्न पद्य में—
हाँ, इन जाने की घड़ियों में,···पदपादाकुलक
कुछ ठहर नहीं जाओगे?···सखी
छाया-पथ में विश्राम नहीं,···पदपादाकुलक
है केवल चलते जाना।···सखी

—लहर, पृ० ४२

(१६) मनोरम (१४ मा०)
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल;

—कामायनी : निर्वेद सर्ग।

मनोरम छद का निर्माण सप्तक (ऽ।ऽऽ) के आधार पर उसकी दो आवृत्तियों से होता है। इसके अंत में ऽ, ।ऽऽ और ऽ।। आ सकते हैं। वस्तुतः यह गीतिका और रूपमाला का पूर्वांश है। मनोरम का स्वतंत्र प्रयोग प्रसाद-साहित्य में कहीं नहीं हुआ है। उक्त श्रद्धा के गीत में माधवमालती के साथ इसका मिश्रण हुआ है। इस गीत में पाँच अनुच्छेद हैं। प्रत्येक में मनोरम की एक अर्द्धाली के बाद माधवमालती की एक पंक्ति टेक के रूप में है। इस प्रकार प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में मनोरम की दस पंक्तियाँ हैं।

(१७) गोपी (१५ मा०)
हृदय की दारुण ज्वाला से······गोपी
हुए व्याकुल हम उस दिन पूर्ण।···शृंगार

१. मिट्टी की ओर, पृ० ११६।

देखती प्यासी आँखें थीं।······गोपी
रसभरी आँखों से मद-घूर्ण।·······शृंगार
—झरना : प्यास।

पंचदश मात्रापादी गोपी के आदि में त्रिकल और अन्त में गुरु रहता है। शृंगार की अन्तिम लघु मात्रा को कम कर देने से यह छंद बन जाता है। गोपी का स्वतंत्र प्रयोग प्रसाद ने नहीं किया। अधिकतर यह शृंगार के साथ प्रयुक्त हुई है— कहीं किसी क्रम से, कहीं मनमाने रूप से। इसका प्रयोग 'झरना' की निम्न कविताओं में हुआ है—

दो बूंदें, वसंत की प्रतीक्षा, प्यास, सुधासिंचन, हृदय का सौंदर्य, प्रार्थना, झील में, कुछ नहीं, आदेश, धूल का खेल।

इसके अतिरिक्त यह 'लहर' (आह रे, वह अधीर यौवन, पृ० १८, तुम्हारी आँखों का बचपन, पृ० २०) अजातशत्रु (प्र० सं०, पृ० ५६) जनमेजय का नागयज्ञ (प्र० सं०, पृ० ६६, ६६) तथा स्कंदगुप्त (प्र० सं०, पृ० ६८–६६) में भी प्रयुक्त हुई है।

(१८) उज्ज्वला मात्रिक (१५ मा०)

बीती विभावरी जाग री।
× ×
तारा-घट ऊषा नागरी।
× ×
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
× ×
आँखों में भरे विहाग री।
—लहर : पृ० १६

भानु के अनुसार उज्ज्वला मात्रिक में १५ मात्राएँ होती हैं। अन्त में ऽ। ऽ रहता है।[1] उल्लाला (१३ मा०) के आदि में दो मात्राओं के योग से यह बन जाता है। प्रसाद-साहित्य में उज्ज्वला मात्रिक की केवल चार पंक्तियाँ टेक के रूप में उपलब्ध होती हैं। उक्त गीत की शेष पंक्तियाँ पदपादाकुलक में निबद्ध हैं।

(१६) चौपई (१५ मा०)

सुमन होत सुन्दर छवि धाम।
नैन तहाँ पावत विश्राम।

१. छंदः प्रभाकर, पृ० ४८।

कर चंचल न अकारन होय।
परसि प्रसन्न होत सब कोय।

—चित्राधार (उर्वशी) पृ० ४

समप्रवाही चौपई छन्द में १५ मात्राएँ होती हैं। अन्त में ऽ। रहता है। प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में चौपई की यही उक्त चार पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(२०) चौबोला (१५ मा०)

उठती है लहर हरी हरी।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० १३

समप्रवाही चौबोले में १५ मात्राएँ होती हैं। अन्त में । ऽ रहता है। प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में चौबोले की केवल उक्त एक पंक्ति मत्तसवैये में निबद्ध गीत की टेक के रूप में मिलती है।

(२१) चौपाई (१६ मा०)

एक घूंट का प्यासा जीवन—
निरख रहा सबको भर लोचन।
कौन छिपाए है उसका धन—
कहाँ सजल वह हरियाली है।

—प्र० सं० (एक घूंट) पृ० १०३

चौपाई समप्रवाही छंद है, जिसमें १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अन्त में जगण (। ऽ ।) और तगण (ऽ ऽ ।) को छोड़कर सभी गण रहते हैं। चौपाई का प्रयोग कहीं स्वतंत्र रूप से और कहीं अन्य छंदों के साथ सर्वत्र गीतों में ही हुआ है। इसके प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

लहर—उस दिन जब जीवन के पथ में (पृ० १४–१५) कितने दिन जीवन जलनिधि में (पृ० २५)—स्वतंत्र रूप से ले चल वहाँ भुलावा देकर (पृ० १४) वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे (पृ० २६) अरे कहीं देखा है तुमने (पृ० ४०) निधरक तू ने ठुकराया तब (पृ० ४६)—सब समानसवैये के साथ

राज्यश्री—प्र० सं०, पृ० १ (स्वतंत्र) पृ० २ (सरसी के साथ)

विशाख—प्र० सं०, पृ० १२ (सार के साथ) पृ० ४० (शशिवदना के साथ)

अजातशत्रु—प्र० सं०, पृ० ४५ (स्वतंत्र) पृ० ४६ (सरसी के साथ)

कामना—प्र० सं०, पृ० ८२ (सरसी-अहीर के साथ)
स्कंदगुप्त—प्र० सं०, पृ० ६१ (हाकलि के साथ) पृ० ६२ (सार-महानुभाव के साथ) पृ० १०० (समानसवैये के साथ)
चन्द्रगुप्त—प्र० सं०, पृ० १०६ (सार के साथ) पृ० ११३ (विष्णु पद के साथ)
एक घूंट—प्र०सं०, पृ० १०२ (सरसी-अहीर के साथ) पृ० १०३ (स्वतंत्र) पृ० १०४ (विष्णुपद के साथ)

डॉ० रामरतन भटनागर ने 'झरना' की निम्नांकित पंक्तियों में चौपाई

जीवन में पुलकित प्रणय सदृश,
यौवन की पहली क्रांति अकृश।

छंद माना है।[1] पर ये पद-पादाकुलक की पंक्तियाँ है, क्योंकि इनके अंत में दो त्रिकल हैं, जो चौपाई के अन्त में नही रहते।

(२२) शृंगार (१६ मा०)

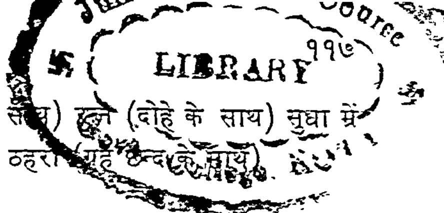
किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।

—झरना : किरण

शृंगार छन्द में १६ मात्राएँ होती हैं। आदि में त्रिकल और अन्त में ऽ। रहता है। चौपई (१५ मा०) के आदि में एक लघु के योग से इसका निर्माण हो जाता है। मौक्तिकदाम (ज ज ज ज) के मात्रिक रूप शृंगार को आधुनिक काल में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। यह छायावाद-युग के प्रचलित छन्दों में एक कहा जा सकता है। प्रसाद-साहित्य में इसका प्रयोग कहीं स्वतंत्र रूप से और कहीं गोपी आदि के साथ निम्नलिखित पुस्तकों में हुआ है—

कामायनी—संपूर्ण श्रद्धा सर्ग।
लहर—अरी वरुणा की शांत कछार, आह रे, वह अधीर यौवन, तुम्हारी आँखों का बचपन (गोपी के साथ)।
झरना—समर्पण, परिचय, किरण, असंतोष, होली की रात (स्वतंत्र) गोपी के साथ प्रयोग के लिए देखिए पीछे गोपी छन्द।

१. कवि प्रसाद : एक अध्ययन, पृ० ४६।



आशालता (शृंगार-कल्प के साथ) हृदय (दोहे के साथ) सुधा में गरल (सोरठे के साथ) वेदने ठहरो (गुरु छन्द के साथ)

कानन कुसुम—विनय, धर्मनीति।

चित्राधार—वभ्रुवाहन (पृ० ३५) पराग (प्रभात कुसुम) पृ० १५२ शरद-पूर्णिमा, पृ० १५९

अजातशत्रु—प्र० सं०, पृ० ५९ (गोपी के साथ)

जनमेजय का नागयज्ञ—प्र० सं०, पृ० ६६, ६९ (गोपी के साथ)

स्कन्दगुप्त—प्र० सं०, पृ० ९० (स्वतंत्र) पृ० ९८-९९ (गोपी के साथ)

चन्द्रगुप्त—प्र० सं०, पृ० १०७, पृ० ११० (स्वतंत्र)

प्रसाद के साहित्य में लयात्मक (। ऽ) अन्तवाला[1] तथा नगणांत शृंगार छन्द भी उपलब्ध होता है। यथा—

(क) काकली-सी बनने की तुम्हें।—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० १०७

(ख) और यह क्या तुम सुनते नहीं।—कामायनी, श्रद्धा, पृ० ५७

(ग) और किसको था देना हृदय।—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० ११०

(२३) पद्धरि (१६ मा०)

कोमल कुसुमों की मधुर रात!
शशि-शतदल का वह सुख-विकास,
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी साँसों का मलय वात।

—लहर, पृ० २३

शृंगार के विपरीत पद्धरि का प्रारंभ द्विकल से होता है। द्विकल के बाद यदि त्रिकल आता है, तो फिर एक त्रिकल रखना पड़ता है। इसी प्रकार के दो अष्टकों से इसके चरण का निर्माण होता है। इसके अन्त में ऽ। का रखना अनिवार्य है। उक्त पद्य के अतिरिक्त केवल लहर (काली आँखों का अंधकार, पृ० ३८) तथा चित्राधार (वभ्रुवाहन, पृ० ४१-४२; अयोध्या का उद्धार, पृ० ५०—केवल एक पद्य) में पद्धरि का स्वतंत्र प्रयोग उपलब्ध होता है। इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में पद्धरि स्वतंत्र रूप से बहुत कम प्रयुक्त हुआ है। पदपादाकुलक के साथ इसका जो प्रयोग हुआ है, उसकी चर्चा आगे होगी।

(२४) पदपादाकुलक (१६ मा०)

शीतल कोमल चिर-कंपन-सी,

---

१. द्रष्टव्यः छन्दःप्रभाकर, पृ० ५३।

दुर्ललित हठीले वचपन-सी
तू लौट कहाँ जाती है री
यह खेल-खेल ले ठहर-ठहर !

—लहर, पृ० १.

पदपादाकुलक पद्धरि का ही एक भेद कहा जा सकता है। पद्धरि के अंत में ऽ। होता है, इसके अन्त में । ऽ, ।।। के अतिरिक्त ऽ ऽ भी रहता है। दोनों में इतना ही अंतर है।

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने उपर्युद्धृत पंक्तियों में तथा कामायनी की निम्न पंक्तियों में—

कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा-निलय में हो रहती। —(दर्शन, पृ० २४६)

चौपाई मानी है।[1] पर ये सभी पंक्तियाँ पदपादाकुलक की हैं। क्योंकि इनका प्रारंभ द्विकल+त्रिकल से होता है। जब कि चौपाई का प्रारंभ दो त्रिकल से होता है। शुक्ल-द्वारा चौपाई के रूप में उद्धृत 'लहर' की निम्न पंक्तियाँ—

छिन्न पात्र ले कंपित कर में
मधु भिक्षा की रटन अधर में

अवश्य चौपाई की कही जायँगी; क्योंकि यहाँ प्रथम पंक्ति का प्रारंभ २ त्रिकलों से हुआ है, और द्वितीय के अन्त में २ त्रिकल+१ द्विकल है, जो पदपादाकुलक के अन्त में नहीं रह सकते।

प्रसाद-साहित्य में पदपादाकुलक का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। पदपादाकुलक यों तो प्राचीन छंद है, पर इसका विशेष प्रचलन छायावाद-युग मे ही हुआ। प्रसाद ने इसका प्रयोग 'कामायनी' में ईर्ष्या, इड़ा और दर्शन सर्ग में किया है। ईर्ष्या के प्रत्येक पद्य के प्रथम-तृतीय चरण पदपादाकुलक के (कहीं-कहीं पद्धरि का भी) और द्वितीय-चतुर्थ पद्धरि के हैं। इड़ा में इन दोनों के मेल से पद-वंध (अनुच्छेद) तैयार किया गया है, जिसमें ६ पंक्तियाँ हैं। प्रथम और नवम दोनों छोटी पंक्तियाँ पद्धरि की है। वीच की सातों वड़ी पंक्तियों में प्रथम चार पदपादाकुलक+पद्धरि की है। (एकाध स्थल पर पद्धरि+पद्धरि भी है) पंचम और षष्ठ पंक्तियाँ एक आध को छोड़ कर पदपादाकुलक के दो चरणों के मेल से गठित है। अतः

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३३५।

ऐसी पंक्तियाँ मत्तसवैये की कही जा सकती हैं। कहीं-कहीं पद्धरि + पदपादाकुलक भी है, इसलिए सभी अनुच्छेदों में मत्तसवैया नहीं माना जा सकता। डॉ० शुक्ल ने इन दो पंक्तियों में समानसवाई (समान सवैया) माना है,[1] जो ठीक नहीं। क्योंकि समानसवैये का निर्माण चौपाई के दो चरणों को एक इकाई मानने से होता है और पदपादाकुलक के दो चरणों की इकाई मत्तसवैये का निर्माण करती है। सातवीं पंक्ति प्रथम चार के समान है। इसका अंत्य-क्रम क क क ख ख ग ग क क है। दर्शन के प्रत्येक अनुच्छेद में आठ चरण हैं। प्रारम्भ और अन्त में पद्धरि की एक-एक अर्द्धाली है। दोनों अर्द्धालियों के बीच पदपादाकुलक का एक पद्य (चार चरण) है। इसका अंत्यक्रम है—क क ख ख ख ख क क। कामायनी के अतिरिक्त इसका प्रयोग निम्न पुस्तकों में हुआ है—

झरना—वसंत (स्वतन्त्र)

लहर—उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर, मेरी आँखों की पुतली में, आँखों में अलख जगाने को (टेक—मत्तसवैया) ओ री मानस की गहराई (स्वतन्त्र) जगती की मंगलमयी (मत्तसवैये के साथ) शशि-सी वह सुन्दर (सखी-पद्धरि के साथ) वसुधा के अंचल (सखी-महानुभाव के साथ) अब जागो जीवन के प्रभात, अपलक जगती हो एक रात, चिर तृषित कंठ से (पद्धरि के साथ) हे सागर संगम (सखी, राधिका, हंसगति, पद्धरि)

चन्द्रगुप्त—प्र० सं०, पृ० १०६ (मत्तसवैये के साथ) पृ० ११८ (आलोक के साथ)

ध्रुवस्वामिनी—प्र० सं०, पृ० १२० (मत्तसवैये के साथ)

(२५) चन्द्र (१७ मा०)

(क) डाल पर बोलता है पपीहा—
हो भला प्राणधन, तुम कहीं ? हा !
+ +
प्यास से मर रहे दीन चातक
क्यों बना चाहते प्राणघातक ?

—झरना : पी ! कहाँ ?

(ख) दूर जब हो गया कहीं मन से

---

१. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० ३६१।

क्या हुआ तन लगा रहे तन से ।
स्वप्न में सैर सैकड़ों योजन
कर चुका मन, न छू गया तन से ।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० ३६

चन्द्र छन्द का निर्माण ३ पंचक (रगण आधार) और एक गुरु के योग से होता है। गुरु के स्थान पर दो लघु भी रह सकते है। सूरदास के बाद मध्ययुग में इसका प्रयोग संभवतः किसी ने नहीं किया। आधुनिक काल में हरिऔध ने इसका विपुल प्रयोग किया है। पर उनका ऐसा प्रयोग उर्दू के फायलुन् फायलुन मफाईलुन् (र र य ग) के आधार पर है। अतः वहाँ तीसरे रगणाधार की जगह यगणाधार दिखलाई पड़ता है। प्रसाद ने दोनों प्रकार के प्रयोग किए हैं। जहाँ 'झरना' के उक्त गीत की दस पंक्तियाँ र र र ग पर आधृत हैं, वहाँ 'विशाख' (उक्त पद्य की चार पंक्तियाँ) 'अजातशत्रु' (प्र० सं०, पृ० ५८ की दो पंक्तियाँ) तथा 'स्कंदगुप्त' (प्र० सं०, पृ० ६७ की दस पंक्तियाँ) के गीतों का आधार उर्दू की उक्त बहर (र र य ग) है।

(२६) राम (१७ मा०)

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी।
न है उत्पात, छटा है छहरी।

× ×

कठिन गिरि कहाँ विदारित करना।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी।

— झरना, पृ० १

भानु के अनुसार राम छन्द में ६-८ मात्राएँ होती है। अन्त में यगण (। ऽ ऽ) रहता है।[1] यह लक्षण उक्त पंक्तियों पर घटित नहीं होता। डॉ० शुक्ल ने लक्षण में तो एक प्रकार से भानु की ही बात दुहराई है, पर उन्होंने बताया है कि "आधुनिक युग में इसके बीच में विषम मात्राएँ न रखकर आदि में रख दी जाती हैं, जिससे शेष भाग समप्रवाही बन जाता है।"[2] उन्होंने साकेत से जो निम्न उदाहरण दिया है—

चले फिर रघुवर माँ से मिलने,
बढ़ाया घन-सा प्राणानिल ने।

१. छन्दःप्रभाकर, पृ० ५३।
२. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २६७।

उससे पता चलता है कि चौपाई के आदि में एक लघु के योग से इसका निर्माण हो जाता है। प्रसाद की उपर्युद्धृत पंक्तियों का आधार डॉ० शुक्ल ने चन्द्र छन्द को माना है।[1] पर चन्द्र की गण व्यवस्था (५+५+५+२) यहाँ घटित नहीं होती। प्रथम लघु के बाद यह चौपाई के समान समप्रवाही हो जाता है। चन्द्र के प्रारम्भिक लघु को हटा देने या दीर्घ को लघु कर देने से वह समप्रवाहिकता नहीं आती। ऐसा प्रयोग आधुनिक भी नहीं, अत्यन्त प्राचीन है। सूर तुलसी आदि कवियों ने इसका प्रयोग छन्दक (टेक) मे किया है। आधुनिक काल में यह पद्य में भी प्रयुक्त होने लगा। प्रसाद ने राम का प्रयोग उक्त पद्य में तो किया ही है, अनेक छन्दकों को भी इसी मे निवद्ध किया है। यथा—

(क) सखी री, सुख किसको हैं कहते।—प्र० सं० (विशाख) पृ० १०
(ख) सघन वन-वल्लरियों के नीचे।—प्र० सं० (कामना) पृ० ७४
(ग) पालना बनें प्रलय की लहरें।—प्र० सं० (स्कन्दगुप्त) पृ० ८६
(घ) अरुण यह मधुमय देश हमारा।—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० १०६

(२७) ग्रह (१८ मा०)

सात रंगो का इन्द्रधनु क्या है,
छिपेगा क्षण में, कभी ठहरा है।
नई कोंपल पर किरण माला-सी
खेलती है यह देववाला-सी।

—झरना : देववाला।

प्रसाद-द्वारा निर्मित इस छन्द का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उन्होंने इसका लक्षण देते हुए लिखा है—यह छन्द नवक (।ऽऽऽऽ) के आधार पर बनता है। × × × यह नवक यगण और चौकल के योग से बनता है।[2] उन्होंने जिस कविता (उपेक्षा करना) की पंक्तियाँ उद्धृत कर अपना लक्षण निर्धारित किया है; उसी में निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिलती हैं—

स्वच्छ आलोकित दीप बलता है।
पंखयुत कीड़ा सतत जलता है।

अतः नवक का निर्माण यगण+चौकल से नहीं बताकर पंचकल+चौकल से मानना अधिक युक्तिसंगत है। वस्तुतः इस छन्द का निर्माण श्रृंगाराभास (श्रृंगार छन्द का खण्ड) के दो चरणों को एक इकाई मान कर किया गया है। ग्रह

---

१. आ० हि० का० में छन्दयोजना : पृ० ३६२
२. वही, पृ० २७२।

छन्द का स्वतंत्र प्रयोग उक्त कविता में हुआ है। 'उपेक्षा करना' में इसकी एक अर्द्धाली के बाद १३ मात्रापादी श्रृंगार-कल्प की एक पंक्ति है, और 'वेदने ठहरो' में ग्रह का श्रृंगार के साथ मिश्रित प्रयोग है, जहाँ ग्रह के प्रत्येक चरण में अन्तरनुप्रास की योजना है।

(२८) पीयूषवर्षी (१६ मा०)

नील नीरद देखकर आकाश में
क्यों खड़ा चातक रहा किस आश में
क्यों चकोरों को हुआ उल्लास है
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है।

—कानन-कुसुम : सौन्दर्य

सप्तक (ऽ।ऽऽ) के आधार पर चलने वाले पीयूषवर्षी के चरण का निर्माण सप्तक की दो आवृत्तियों के बाद रगण का प्रस्तार जोड़ने से होता है।[1] प्रसाद-साहित्य में पीयूषवर्षी का अत्यन्त अल्प प्रयोग हुआ है। केवल तीन पद्य (काननकुसुम : सौन्दर्य; झरना : मिलन; स्कन्दगुप्त : प्र० सं०, पृ० ६३) इस छन्द में निबद्ध मिलते है।

(२९) सुमेरु (१६ मा०)

अकेली छोड़कर जाने न दूँगी,
प्रणय को तोड़कर जाने न दूँगी।
तुम्हें इस गेह से जाने न दूँगी।
हृदय को देह से जाने न दूँगी।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० २६

सप्तक (।ऽऽऽ) के आधार पर चलने वाले सुमेरु में १६ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार इसका चरण।ऽऽऽ की दो-दो आवृत्तियों और यगण (।ऽऽ) के योग से बनता है।

सुमेरु छन्द का प्रयोग केवल तीन नाटकों में (विशाख : प्र० सं०, पृ० १८, २३, २६, ३०, ३८; अजातशत्रु : प्र० सं०, पृ० ५०; स्कन्दगुप्त : प्र० सं० पृ० ८६, ६४) हुआ है।

(३०) तमाल (१६ मा०)

अरे पथिक यह सोई उपवन कुंज।

---

१. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० २७३।

जामें भूलि धरै नहिं पग अलि पुंज।
चित्त कल्पने ! अलि सम मत गुंजार।
यहि तरु में नहिं होत सुकुसुमित डार।

—चित्राधार (उर्वशी) पृ० १५

भानु ने तमाल छन्द का लक्षण इस प्रकार देते हुए—बताया है कि

उन्निस कल गल यति है अन्त तमाल।

चौपाई के अन्त में ऽ। रखने से यह छन्द सिद्ध होता है।[1] गोरखनाथ के एक पद में आद्योपांत इसका प्रयोग हुआ है।[2] गोरखनाथ के बाद काफी परिमाण में इस छन्द का प्रयोग संभवतः प्रसाद ने ही किया है। तमाल का प्रयोग चित्राधार के उर्वशी (पृ० १४-१५) प्रेमराज्य (पृ० ६६-६७) तथा पराग (मानस, पृ० १४३) में हुआ है।

(३१) हंसगति (२० मा०)

हृदय-गुफा थी शून्य
रहा घर सूना।
इसे बसाऊँ शीघ्र
बढ़ा मन दूना।

—झरना : अतिथि, पृ० ६८

भानु के अनुसार हंसगति में ११वीं मात्रा पर विश्राम देकर २० मात्राएँ होती हैं।[3] पर कवि-प्रयोग में १२-८ पर भी यति मिलती है। हंसगति वस्तुतः रोला की अन्तिम चार मात्राओं को हटा देने से बन जाता है। डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने प्रसाद की उपर्युद्धृत पंक्तियों को नवीन अर्द्धसम मात्रिक छन्द के अन्दर रक्खा है।[4] पर यह वस्तुतः हंसगति की अर्द्धाली है, जो दो की जगह चार पंक्तियों में लिखी गई है। आजकल एक चरण को दो पंक्तियों में लिखने का प्रचलन हो गया है। डॉ० शुक्ल इस बात से अवगत हैं। यह उनके निम्न कथनों से स्पष्ट है—

'वस्तुतः इस छन्द में लिपि-विशेपत्व ही मानना चाहिए, क्योंकि सार के एक चरण को ही दो पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है।' (पृ० २९६)

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ५५।
२. द्रष्टव्य : गोरखबानी : सं० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० ४१।
३. छंदःप्रभाकर, पृ० ५७।
४. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३१०।

प्रसाद के काव्य में मैथिलीशरण के विशुद्ध चांद्रायण (साकेत, सर्ग ५) के दर्शन नहीं होते। हरिऔध की तरह (वैदेही वनवास) उन्होंने भी तिलोकी में ही अपने पद्यों को निबद्ध किया है। तिलोकी का प्रयोग निम्न पुस्तकों में हुआ है—

महाराणा का महत्त्व—संपूर्ण

करुणालय............संपूर्ण

काननकुसुम............करुणा-कुंज, प्रथम प्रभात, मर्मकथा, भाव-सागर, मिल जाओ गले, चित्रकूट (४), भरत, शिल्प सौंदर्य, वीर बालक, श्री कृष्ण जयंती।

झरना—प्रथम प्रभात, रूप, पावस प्रभात, अर्चना, स्वभाव, प्रत्याशा, स्वप्नलोक, दर्शन।

प्रसाद संगीत—मेरी कचाई, हमारा हृदय, वसंत राका, सुखभरी नींद।

विशाख—प्र० सं०, पृ० २१।

(३४) राधिका (२२ मा०)

यह अरुण पताका नभ तक है फहराती।
जो विजय गीत मिल मलय पवन से गाती।
जय आर्य भूमि की, आर्य जाति की जय हो।
अरिगण को भय हो, विजयी जनमेजय हो।
—प्र० सं० (जनमेजय का नागयज्ञ), पृ० ७१

भानु के अनुसार राधिका छंद में १३ पर विश्राम देकर २२ मात्राएँ होती हैं। वस्तुतः राधिका का निर्माण पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में ६ मात्राओं के योग से होता है। अतः इसमें १०वीं मात्रा पर भी यति हो सकती है। प्रसाद-साहित्य में राधिका का प्रयोग विशाख (प्र० सं०, पृ० ३७) जनमेजय का नागयज्ञ (प्र० सं०, पृ० ७०, ७१) तथा कानन-कुसुम (मलिना) में हुआ है।

(३५) विरहिणी (२३ मा०)

दीन दुखी न रहे कोई, सुखी हों सब लोग।
देश समृद्धि प्रपूरित हो—जनता नीरोग।
कूट नीति टूटे जग में—सन्न में सहयोग।
भूप प्रजा समदर्शी हों—तज कर सब ढोंग।
—प्र० सं० (विशाख) पृ० ३९

समप्रवाही विरहिणी छंद में २३ मात्राएँ होती हैं। १४–९ पर विश्राम

होता है, और अंत में ऽ । रहता है । विद्यापति की पदावली में ऐसा छंद प्राप्त होता है, जिसमें विरहिणी की दशा का चित्रण किया गया है । वहीं इस छंद को विरहिणी नाम प्राप्त हुआ है । विरहिणी छंद में निबद्ध यही एक पद्य प्रसाद-साहित्य में प्राप्त होता है ।

(३६) रोला (२४ मा०)

वार बार सानुनय कह्यो यद्यपि मम अनुचर ।
तबहुँ न मान्यो मूड आह सन्निकट द्वैत सर ।
मृगया खेलन लग्यो जहाँ मम विहरन को थल ।
प्रहरी वर्जन कर्‌यो तिन्हैं मार्‌यो तिहि पै खल ।

—चित्राधार (सज्जन), पृ० ९९

सामान्यतः रोला में ११-१३ पर विश्राम देकर २४ मात्राएँ होती हैं । पर इसका यति-स्थान बड़ा विवादास्पद है । निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इसमें ११वीं, १२वीं या १४वीं मात्रा पर यति दी जाती है । रोला का प्रयोग 'चित्राधार' के उर्वशी (पृ० १, ११, १३, १९), बभ्रुवाहन (पृ० २४, २८, ३०, ३६, ३८, ४०), पराग (रसाल-मंजरी, नीरद, इंद्रधनुष), अयोध्या का उद्धार (पृ० ५३), वनमिलन (संपूर्ण), प्रेमराज्य (पृ० ६३–६६, ६७), सज्जन (पृ० ९३, ९९, १०३. १०७, १०९), 'कानन कुसुम' के रजनी-गंधा, निशीथ-नदी, रमणी-हृदय, महाकवि तुलसीदास, चित्रकूट (१), मकरंदबिंदु तथा 'कामायनी' के संघर्ष सर्ग में हुआ है ।

(३७) रूपमाला (२४ मा०)

गिर रही पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक ।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गद्‌गद बोल ।

—कामायनी : वासना, पृ० ९४

रूपमाला का निर्माण सतक (ऽ । ऽ ऽ) की तीन आवृत्तियों और ऽ । के योग से होता है । पद-साहित्य के अन्तर्गत इसके अन्त में नगण (। । ।) तथा । ऽ भी मिलते हैं । 'कामायनी' के उक्त सर्ग के अतिरिक्त रूपमाला का प्रयोग राज्यश्री (प्र० सं०, पृ० ३) तथा चित्राधार के उर्वशी (पृ० ५-६) बभ्रुवाहन (पृ० २३. २४, २५) पराग (शारदीय महापूजन, विसर्जन) तथा मकरंदबिंदु (पृ० १८८, १८९–दो पद) में हुआ है ।

(३८) दिगपाल (२४ मा०)

जिस भूमि पर हजारों हैं सीस को नवाते ,
परिपूर्ण भक्ति से वे उसको वही बताते ।
कह कर सहस्र मुख से जब है वही बताता,
फिर मूढ़ चित्त को है यह क्यों नहीं सुहाता ।

— कानन-कुसुम : मंदिर, पृ० ५

दिगपाल छंद में १२--१२ पर यति देकर २४ मात्राएँ होती हैं। इसके पूर्वांश और उत्तरांश दोनों तगण, रगण और गुरु के आधार पर चलते हैं। यह छंद उर्दू से आया है। इसकी उर्दू बहर है—मफऊल फायलातुन्। दिगपाल के केवल दो पद्य कानन-कुसुम में (मंदिर, मोहन) उपलब्ध होते है। दोनों पर उर्दू का गाढ़ा रंग है। अनेक वर्णो का ह्रस्वोच्चारण करके ही हम अभीष्ट लय प्राप्त करते हैं।

(३९) मुक्तामणि (२५ मा०)

पी ले प्रेम का प्याला ।······(उर्वशी)
भर ले जीवन पात्र में यह अमृतमयी हाला;···(मुक्तामणि)
सृष्टि विकासित हो आँखों में, मन हो मतवाला ।······(विष्णुपद)

—प्र० सं० (कामना) पृ० ७६

मुक्तामणि में १३-१२ पर यति देकर २५ मात्राएँ होती हैं। अन्त में कर्ण (ऽ ऽ) रहता है। 'तेरह रवि कल कर्ण सह, मुक्तामणि रचि लीजै ।'[१] यह छंद वस्तुतः दोहे के समचरण के अन्तिम लघु को गुरु कर देने से बन जाता है। प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में मुक्तामणि की केवल उक्त एक पंक्ति पाई जाती है, जो संभवत. असावधानी से टपक पड़ी है। मुक्तामणि की अपेक्षित लय के लिए 'यह अमृतमयी हाला' की जगह 'अमृतमयी यह हाला' होना चाहिए।

(४०) विष्णुपद (२६ मा०)

करुणा-कादम्बिनि बरसे ।·········हाकलि
दुख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे ।
प्रेम प्रचार रहे जगती तल दया दान दरसे ।
मिटे कलह शुभ शांति प्रगट हो अचर और चर से } विष्णुपद

—प्र० सं० (राज्यश्री) पृ० ७

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ६५ ।

विष्णुपद में १६–१० पर यति देकर २६ मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरु रहता है। 'सोरह दस कल अन्त गहो भल, सबतें विष्णुपदै।'[1] सार के अन्तिम गुरु को हटा देने से इसका निर्माण होता है।

विष्णुपद का स्वतन्त्र प्रयोग दो पदों में (राज्यश्री—उक्त पद; विशाख—प्र० सं०, पृ० १५) हुआ है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग निम्न पुस्तकों में अन्य छंदों के मेल से बने पदों में उपलब्ध होता है—

स्कंदगुप्त—प्र० सं०, पृ० ८८ (दोहे के साथ)
चन्द्रगुप्त—प्र० सं०, पृ० ११३ (चौपाई के साथ)
चित्राधार—बभ्रुवाहन, पृ० ३५ (सार के साथ) मकरंदबिंदु, पृ० १८४ (सरसी के साथ)
कानन-कुसुम—मकरंदबिंदु, पद ३ (सार के साथ)

इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में विष्णुपद का बहुत कम प्रयोग हुआ है।

(४१) गीतिका (२६ मा०)

कर रहे हो नाथ, तुम जब, विश्व मंगल कामना,
क्यों रहें चिंतित हमीं, क्यों दुःख का हो सामना ?
क्षुद्र जीवन के लिए, क्यों कष्ट हम इतने सहें—
कर्णधार ! सम्हाल कर, पतवार अपनी थामना।

—प्र० सं०, (विशाख) पृ० ३४

गीतिका का निर्माण सप्तक (ऽ । ऽ ऽ) की तीन आवृत्तियों और रगण (ऽ । ऽ) के योग से होता है।[2] इस पद्य के अतिरिक्त गीतिका का प्रयोग 'कानन-कुसुम' की महाक्रीड़ा, नववसंत, जलद-आवाहन, जल-विहारिणी, खंजन तथा कुरुक्षेत्र नामक कविताओं में हुआ है। महाक्रीड़ा पर उर्दू का गहरा रंग है। उर्दू की बहर 'फायलातुन् फायलातुन् फायलातुन् फायलुन' से इस छन्द का पूरा साम्य है।

(४२) सरसी (२७ मा०)

जिसे चाह तू, उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन मन से, छाती छाती से भरपूर।
परदेशी की प्रीति उपजती अनायास ही आय।

---

१. छन्दःप्रभाकर, पृ० ६६।
२. आ० हि० का० में छन्दयोजना, पृ० २९३।

नाहर नख से हृदय लड़ाना, और कहूँ क्या हाय !

—झरना : विन्दु (१) पृ० ७७

समप्रवाही सरसी छन्द में १६-११ पर यति देकर २७ मात्राएँ होती है। अन्त में ऽ। रहता है। 'सोरह संभु यती गल कीजै, सरसी छन्द सुजान।'[1] प्रसाद-साहित्य में सरसी का प्रयोग अधिकतर पद में हुआ है। झरना के उपर्युद्धृत पद्य के अतिरिक्त सरसी निम्न पुस्तकों में प्रयुक्त हुई है—

राज्यश्री—प्र० सं०, पृ० २, पद (चौपाई के साथ)
विशाख— ,, पद, पृ० १४, २४, २५, ३३
अजातशत्रु— ,, पद, पृ० ५२, ६१
जनमेजय का
नागयज्ञ— ,, पद, पृ० ६४
स्कन्दगुप्त— ,, पद, पृ० ८५
एक घूंट— ,, पद, पृ० १०२ (चौपाई-अहीर के साथ)
कामना—मकरंद-विन्दु, पद ४ (सार के साथ)
झरना—अव्यवस्थित (गोपी के साथ) विन्दु ६—पद
लहर—अन्तरिक्ष में अभी सो रही (सार के साथ) पृ० ५१

(४३) माधवमालती (२८ मा०)

तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की वात रे मन।
× × ×
चेतना थक सी रही तब, मैं मलय की वात रे मन।
× × ×
मैं ऊपा की ज्योति रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन।
× × ×
उन्ही जीवन घाटियों की, मैं सरस वरसात रे मन।
× × ×
इस झुलसते विश्व दिन की, मैं कुसुम ऋतु रात रे मन।
× × ×
मधुप मुखर मरंद मुकुलित, मैं सजल जलजात रे मन।

—कामायनी : निर्वेद, पृ० २१६-२१७

---

१. छंद:प्रभाकर, पृ० ६८।

गीतिका के अन्त में एक गुरु के योग से यह छंद बन जाता है। सूरदास-द्वारा प्रयुक्त इस छंद का आज तक नामकरण नहीं हुआ था। डॉ० शुक्ल ने आधुनिक युग में ऐसे प्रयोग को देख कर इसे माधवमालती नाम दिया है और सप्तक (ऽ । ऽ ऽ) की चार आवृत्तियों से इसका निर्माण बतलाया है।[1] छायावाद-युग में इस छंद का काफी प्रचलन रहा। निराला, पंत तथा महादेवी सब ने इसमें अपनी वाणी अभिव्यक्त की। मैथिलीशरण भी इसके प्रभाव से नहीं बच सके। प्रसाद ने भी इसका प्रयोग किया, पर उपरिलिखित छह पंक्तियों में ही। ये पंक्तियाँ श्रद्धा-द्वारा गाये गये मनोरम-निबद्ध गीत के टेक-रूप में आई हैं।

(४४) सार (२८ मा०)

> कर्म सूत्र संकेत सदृश थी सोमलता नव मनु को;
> चढ़ी शिंजिनी सी, खींचा फिर उसने जीवन-धनु को।
> हुए अग्रसर उसी मार्ग में छुटे तीर से फिर वे;
> यज्ञ-यज्ञ की कटु पुकार से रह न सके अब थिर वे।
>
> —कामायनी : कर्म, पृ० १०८

अष्टक पर आवृत इस समप्रवाही छंद में १६-१२ पर यति देकर २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में श्रुति-मधुरता के लिए कर्ण (ऽ ऽ) देना चाहिए, पर । ।, । ऽ भी रह सकते हैं।[2] सार छंद का प्रयोग अन्य कवियों की अपेक्षा प्रसाद ने बहुत कम किया है। 'कामायनी' के उक्त सर्ग, 'लहर' के भिखारी (अन्तरिक्ष में अभी सो रही, पृ० ५१; 'चित्राधार' के अयोध्या का उद्धार के २ पद्य एवं उसी के पराग के अन्तर्गत शारदीय शोभा, रजनी, चन्द्रोदय) के अतिरिक्त सर्वत्र सार का प्रयोग पद और गीत में ही हुआ है। ऐसे पद और गीत निम्नलिखित पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं—

विशाख—प्र० सं०, पृ० १०, पद
अजातशत्रु— ,, पृ० ४३ पद
कामना— ,, पृ० ७४ पद
स्कंदगुप्त— ,, पृ० ८६, पद; पृ० ६२, गीत (चौपाई महानुभाव के साथ)
चंद्रगुप्त—प्र० सं०, पृ० १०८ गीत (चौपाई के साथ)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० ३००।
२. छंदः प्रभाकर, पृ० ६६।

ध्रुवस्वामिनी—प्र० सं० पृ० १२१, पद
कानन-कुसुम—मकरंद बिन्दु-पद ३ (विष्णुपद में साथ)
पद ४ (सरसी के साथ)
झरना—बिन्दु (२, ३, ४, ५) सब पद
लहर—गीत (अरे आ गई है भूली-सी, पृ० ४४)

(४५) हरिगीतिका (२८ मा०)

सोते अभी खग-वृंद थे निज नीड़ में आराम से
ऊषा अभी निकली नहीं थी रवि करोज्ज्वल दाम से
केवल टहनियाँ उच्च तरु गण की कभी हिलती रहीं,
मलयज पवन से विवस आपस में कभी मिलती रहीं।

—कानन-कुसुम : चित्रकूट (१)

हरिगीतिका छंद का निर्माण सगण (ऽ ऽ । ऽ) की चार आवृत्तियों से होता है। माधवमालती से इसका अंतर सगण-भेद को लेकर है। माधव-मालती गीतिका के अंत में और हरिगीतिका गीतिका के आदि में एक गुरु के योग से बनती है। प्रसाद-साहित्य में हरिगीतिका का प्रयोग कानन-कुसुम (करुणा क्रन्दन, भक्तियोग, एकांत में, याचना, हाँ सारथे, चित्रकूट (२) तथा चित्राधार (बभ्रुवाहन, पृ० ४१; अयोध्या का उद्धार, पृ० ५०, ५२; पराग—भारतेंदु प्रकाश) में हुआ है, जो छाया-काल के पूर्व की रचना है। छायावाद मे गीतिका और हरिगीतिका का वह मान नहीं रहा, जो उन्हें द्विवेदी युग में मिला था।

(४६) विधाता (२८ मा०)

अमृत हो जायगा विष भी, पिला दो हाथ से अपने।
पलक ये छक चुके हैं चेतना उसमें लगी कँपने।
विकल हैं इंद्रियाँ, हाँ देखते इस रूप के सपने।
जगत विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।

—प्र० सं० (अजातशत्रु) पृ० ५७

विधाता छंद का निर्माण यगण (। ऽ ऽ ऽ) की चार आवृत्तियों से होता है। १४वीं मात्रा पर यति होती है।[1] यह छंद उर्दू से आया है। इसकी उर्दू बहर है—मफ़ाईलुन्, मफ़ाईलुन, मफ़ाईलुन्, मफ़ाईलुन्। प्रसाद-साहित्य में विधाता का प्रयोग विशाख (प्र० सं० पृ० ९ (दो पंक्तियाँ) पृ० ११ (दो पंक्तियाँ);

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २६६।

अजातशत्रु (प्र० सं० पृ० ४७–दो पंक्तियाँ; पृ० ५३—दो पंक्तियाँ, पृ० ५७–चार पंक्तियाँ) स्कंदगुप्त (प्र० सं०, पृ० ६५—चार पंक्तियाँ-दोहे के साथ) तथा कानन-कुसुम (पतितपावन) में हुआ है। पतितपावन में अनेक दीर्घों का ह्रस्वोच्चारण करना पड़ता है।

(४७) ताटंक (३० मा०)

इसका है सिद्धांत—मिटा देना अस्तित्व सभी अपना
प्रियतममय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ
फिर तो वही रहा मन में, नयनों में, प्रत्युत् जग भर में
कहाँ रहा तब द्वेष किसी से क्योंकि विश्व ही प्रियतम है।

—प्रेम पथिक, पृ० २३ (सं० २०२५)

भानु के अनुसार समप्रवाही ताटंक में १६–१४ पर यति दे कर ३० मात्राएँ होती हैं। अंत में मगण (ऽ ऽ ऽ) रहता है। 'सोरह रत्न कला प्रतिपादहिं, ह्वै ताटंकै मो अंतै।'[१] पर कवि-प्रयोग में ऽ ऽ, । । ऽ और ऽ । । भी मिलते हैं। ताटंक का प्रयोग वीर छंद की पंक्तियों के साथ 'प्रेम पथिक', 'कामायनी' (चिंता, आशा, स्वप्न), झरना (प्रियतम), लहर (मधुप गुनगुना कर, पृ० ५, मधुर माधवी संध्या, पृ० ५०), अजातशत्रु (प्र० सं० पृ० ५६, ६०, ६३), कामना (प्र० सं०, पृ० ८१) तथा चंद्रगुप्त (प्र० सं०—पृ० ११६) में हुआ है। अनेक स्थलों पर इसका स्वतंत्र प्रयोग भी मिलता है। यथा—

चित्राधार—उर्वशी, पृ० १४
कानन कुसुम—वंदना, हृदय-वेदना, ग्रीष्म का मध्याह्न,
दलित कुमुदिनी, तुम्हारा स्मरण, नहीं डरते, गान।
झरना—वालू की वेला, दीप, कब ? कहो ? निवेदन, पाई बाग,
कसौटी।
लहर—निज पलकों के अंधकार, पृ० ३; जग की सजल कालिमा, पृ० २८
विशाख—प्र० सं०, पृ० २८, ३२
अजातशत्रु—प्र० सं०, पृ० ४१, ४२, ४४ (गीत), ४८
जनमेजय का नागयज्ञ—प्र० सं०, पृ० ६५, ६७, ७२, ७३
कामना—प्र० सं०, पृ० ७५
स्कंदगुप्त—प्र० सं०, पृ० ८४, ८६

प्रसाद के ताटंक प्रयोग पर कहीं-कहीं उर्दू का रंग भी दिखलाई पड़ता

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ७२।

है। 'विशाख' की निम्नांकित पंक्तियाँ भी—

ऐसे जले हम प्रेमानल में जैसे नहीं थे पतंग जले।
प्रीति लता कुम्हिलाई हमारी विषम पवन वन कर क्यों चले।
—प्र० सं०, पृ० २७

ताटंक में ही निबद्ध हैं; पर रेखांकित वर्णों का ह्रस्वोच्चारण कर तथा 'थे' और 'प' को तीव्रता से पढ़ कर (दो मात्राएँ मानकर) ही हम ताटंक की लय को प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में ताटंक का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

(४८) वीर छंद (३१ मात्रा)

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भींगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।
× × ×
दूर दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता सी शिला चरण से टकराता फिरता पवमान।
—कामायनी : चिंता, पृ० ३

समप्रवाही वीर छंद में १६-१५ पर यति देकर ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में ऽ। रहता है। इसे मात्रिक सवैया और आल्ह भी कहते हैं। 'वसु-वसु तिथि सानन्द सवैया।' 'यहै कहावत आल्ह छंद है।'[1] वीर छंद का स्वतंत्र प्रयोग केवल तीन कविताओं में (चंद्रगुप्त—प्र० सं० पृ० १११—बिखरी किरन अलक) झरना (खोलो द्वार, चिह्न) में मिलता है। ताटंक के साथ इसके प्रयोग की चर्चा पीछे हो चुकी है।

(४९) समान सवैया (३२ मा०)

कौन, प्रकृति के करुण काव्य-सा
वृक्ष पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है
अमृत सदृश नश्वर काया में।
अखिल विश्व के कोलाहल से
दूर सुदूर निभृत निर्जन में।
गोधूली के मलिनांचल में

१. छंद:प्रभाकर, पृ० ७४।

कौन जंगली बैठा वन में ।

—झरना : विषाद, पृ० १६

चौपाई के द्विगुणित रूप समानसवैये में १६-१६ पर यति देकर ३२ मात्राएँ होती हैं । 'सोरह सोरह मत्त धरौ जू, छंद समान सवैया सोभत ।'[1] उक्त पद्य के अतिरिक्त समान सवैये का स्वतंत्र प्रयोग 'कामायनी' के रहस्य सर्ग में तथा अजातशत्रु (प्र० सं०, पृ० ४६) में हुआ है । अजातशत्रु में प्रयुक्त पंक्तियों के अनेक वर्णों का लघूच्चारण करना पड़ता है । स्वतंत्र प्रयोग के अतिरिक्त यह अन्य छंदों के साथ झरना (विखरा हुआ प्रेम—वीर के साथ) स्कंदगुप्त (प्र० सं०, पृ० १०० चौपाई के साथ) तथा लहर (अरे, कहीं देखा है तुमने, पृ० ४०; निधरक तू ने ठुकराया, पृ० ४६—दोनों चौपाई के साथ) में भी प्रयुक्त हुआ है । इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में समान सवैये का प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुआ है ।

(५०) मत्तसवैया (३२ मा०)

क्या कहती हो ठहरो नारी !
संकल्प अश्रु जल से अपने;
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने से सपने ।
नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में;
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में ।

—कामायनी: लज्जा, पृ० १०६

मत्तसवैये का निर्माण पदपादाकुलक के दो चरणों को एक चरण मान कर हुआ है । 'कर भुवन कला कर भुवन कला, सज मत्त सवैया अलबेला ।'[2] डॉ० शुक्ल ने आधुनिक युग में इसका प्रयोग चौकलों की आवृत्ति के आधार पर मान कर पादाकुलक के चरणों के योग से इसका निर्माण माना है । पादाकुलक तो वस्तुतः चौपाई का ही दूसरा नाम है । फिर समान-सवैया और मत्तसवैया दोनों में अन्तर क्या हुआ ? दोनों की लय में जो अन्तर है, उसे ध्यान में नहीं रखने के कारण डॉ० शुक्ल का पहला उदाहरण समान-

१. छंद:प्रभाकर, पृ० ७६ ।
२. वही, पृ० ७६ ।

सवैये का हो गया है। दूसरा उदाहरण (अर्द्धसम रूप में) मत्तसवैये का अवश्य कहा जायगा।[1] मत्तसवैये का स्वतन्त्र प्रयोग कामायनी (काम, लज्जा) विशाख (प्र० सं०, पृ० १३, २२) ध्रुवस्वामिनी (प्र० सं०, पृ० ११६, १२२) में तथा पदपादाकुलक के साथ चन्द्रगुप्त (प्र० सं०, पृ० १०६) ध्रुवस्वामिनी (प्र० सं०, पृ० १२०), और लहर (आँखों से अलख जगाने को, पृ० १७; जगती की मंगलमयी उषा, पृ० ३२) में हुआ है। छायावाद के युग में मत्तसवैये का काफी प्रचलन हुआ। यों इसमें निबद्ध दो-चार पद्य कबीर और भारतेन्दु में भी मिल जाते है।

अर्द्धसम

(५१) दोहा (१३-११, १३-११)

स्वीकृति प्रेम प्रशस्ति पर कंचन कर की छाप,
हमें ज्ञात होती सखे मिटा हृदय का ताप।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० ३१

दोहे के विषम (प्रथम-तृतीय) चरणों में १३-१३ और सम (द्वतीय-चतुर्थ) चरणों में ११-११ मात्राएँ होती है। सम चरणों के अंत में ऽ। रहता है। प्रसाद-साहित्य में दोहे का प्रयोग दो तरह से हुआ है। (क) स्वतंत्र रूप में और (ख) गीत में। गीत में (क) कहीं तो टेक के साथ कई दोहे मिलते हैं और (ख) कहीं अन्य छंदों के साथ इसका मिश्रण किया गया है। नीचे दोनों रूप के प्रयोग-स्थल बतलाए जाते है।

स्वतंत्र—विशाख (प्र० सं०, पृ० ३१)

चित्राधार।(उर्वशी, पृ० २, ४, १३, १६; बभ्रुवाहन, पृ० २१, २६, २७, ३१,'३३, ४०, ४३; अयोध्या का उद्धार पृ० ४६, ५२; सज्जन, पृ० ६२, ६३, ६७, १०२, १०५, १०६; पराग—विदाई पृ० १५६)

गीत में—(क) विशाख (प्र० सं०, १६, ३५) एक घूंट (प्र० सं०, पृ० १०५) कामना (प्र० सं०, पृ० ७७) चन्द्रगुप्त (प्र० सं०, पृ० ११५)

(ख) स्कंदगुप्त (प्र० सं० पृ० ८८-टेक सहित विष्णुपद के साथ) पृ० ६५ —टेक रहित विधाता के साथ।

(५२) दोहकीय (१३-१३, १३-१३)

जल-थल मारुत व्योम में, जो छाया है सब ओर।

१. द्रष्टव्य आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३०७, ३०८।

खोज-खोज कर खो गई मैं, पागल-प्रेम-विभोर।

—प्र० सं० (स्कंदगुप्त) पृ० ८७

दोहे के सम चरणों के पूर्व दो मात्राओं के योग से यह छंद बनता है। डॉ० शुक्ल ने ऐसे प्रयोग को दोहकीय नाम दिया है और कहा है कि 'प्रसाद' जी ने दोहे के आधार पर इस छंद का प्रयोग किया है।[1] इस प्रकार की छिटपुट पंक्तियाँ कबीर आदि में भी पाई जाती हैं। सूरदास ने तो इसमें कई पदों की आद्योपांत रचना कर इसे एक छंद के गौरव से मण्डित कर दिया है। अतः प्रसाद इसके आविष्कारक नहीं कहे जा सकते। प्रसाद-साहित्य में इसका प्रयोग केवल उक्त स्थल पर हुआ है, जहाँ शृंगार की टेक के साथ इसके दो पद्य मिलते हैं।

(५३) सोरठा (११-१३, ११-१३)

पुलकित होकर राम बोले लक्ष्मण वीर से—
'और नहीं कुछ काम, मिलने आते है भरत।'

—कानन कुसुम : चित्रकूट (२) पृ० ९९

सोरठा दोहे का उलटा है। अतः इसके विषम में ११ और सम चरण में १३ मात्राएँ होती है। इसमें तुक योजना का विधान विषम चरणों में है। कानन-कुसुम का संपूर्ण चित्रकूट (२) सोरठे में निबद्ध है। सोरठों में इस प्रकार किसी कथा-कथानक को संभवतः सर्वप्रथम प्रसाद ने ही लिपिबद्ध किया है। इसके अतिरिक्त सोरठे का विपुल प्रयोग हम (चित्राधार उर्वशी, पृ० ३, १८; बभ्रुवाहन, पृ० २२, २६, ३२; अयोध्या का उद्धार, पृ० ४९, ५२, ५४; सज्जन, पृ० ९७, ९८) में पाते हैं। झरना के 'सुधा में गरल' शीर्षक कविता में शृंगार (अन्त। ऽ) की दो अर्द्धालियों के बीच एक सोरठा रख कर एक अनुच्छेद बनाया गया है।

मिश्र छंद

(५४) छप्पय (रोला + उल्लाला)

जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक-नरेश समान रहा है
जिसके हैं आराम प्रकृति-कानन ही सारे
जिस मन्दिर के दीप इंदु, दिनकर औ तारे
उस मंदिर के नाथ को, निरुपम निरमम स्वस्थ को

1. आ० हि० का० में छंदयोजना : पृ. ३१७।

नमस्कार मेरा सदा, पूरे विश्व गृहस्थ को।

—कानन-कुसुम : नमस्कार, पृ० ४

रोला के चार और उल्लाला के दो चरणों के मेल से छप्पय का निर्माण होता है। उल्लाला अर्द्धसम छंद है, जिसके विषम में १५ और सम में १३ मात्राएँ होती हैं। छप्पय में प्रयुक्त उल्लाला में कहीं-कही १३-१३ (सम उल्लाला) मात्राएँ भी मिलती हैं। उक्त पद्य में उल्लाला का यही स्वरूप दिखलाई पड़ता है। छप्पय का प्रयोग काननकुसुम (नमस्कार, ठहरो, बाल-क्रीड़ा, कोकिल, रमणी-हृदय (अंतिम पद्य), तुलसीदास (अंतिम पद्य), मकरंद-विंदु (प्रारम्भ-अन्त) तथा चित्राधार (वभ्रुवाहन, पृ० २२, ३२, ४१; प्रेम-राज्य, पृ० ६७; सज्जन, पृ० ८१) में हुआ है।

वर्णवृत्त

सम

(५५) विध्वंकमाला=त त त ग ग।

आओ हिये में अहो प्राण प्यारे !

—प्र० सं० (अजातशत्रु) पृ० ४६

जयकीर्त्ति[1] और हेमचन्द्र[2] ने लयग्राहि तथा केदारभट्ट[3] ने इसे विध्वंक-माला कहा है। भुजंगप्रयात के आदि लघु को निकालकर इसका आविष्कार कर लिया गया है। प्रसाद-साहित्य में इसका प्रयोग केवल उक्त छंदक (टेक) में हुआ है।

(५६) प्रियंवदा=न भ ज र।

नव तमाल कल कुंज सों घने
सरित-तीर अति रम्य हैं वने।
अरध रैनि महँ भीजि भावती
लसत चारु नगरी 'कुशावती'।

—चित्राधार (अयोध्या का उद्धार) पृ० ४५

यह प्राचीन छंद है। इसका उल्लेख जयकीर्त्ति ने मत्तकोकिल[4] तथा हेम-

१. छंदोऽनुशासन २/१०८।
२. वही, २/१२९।
३. वृत्तरत्नाकर ३/४३-३।
४. छंदोऽनुशासन २/१३३।

चन्द्र[1] एवं केदार भट्ट[2] ने प्रियंवदा नाम से किया है। प्रसाद ने इसका प्रयोग केवल उक्त पुस्तक के ५ पद्यों (पृ० ४५, ४६, ५०, ५१, ५३) में किया है।

(५७) वंशस्थ = ज त ज र।

सुरम्य शस्यावलि सों प्रपूरिता।
अनंत सौंदर्य विभा विराजिता।
सुअन्न ते पालत है जहान को।
'धरा' धरै मूर्त्ति महा विधान को।

—चित्राधार (पराग-अष्टमूर्त्ति) पृ० १३६

प्रसाद-साहित्य में वंशस्थ के १० पद्य (उक्त अष्टमूर्त्ति ६; सज्जन—१; पृ० १०३) प्राप्त होते हैं।

(५८) द्रुतविलंवित = न भ भ र।

'यह सही, तुम ! सिंधु अगाध हो
हृदय में वहु रत्न भरे पड़े
प्रवल भाव विशाल तरंग से
प्रकट हो उठते दिन-रात ही।

—काननकुसुम : गंगा सागर, पृ० ७४

इस कविता के अतिरिक्त द्रुतविलंवित का प्रयोग चित्राधार के पराग (नीरव प्रेम, पृ० १६५-१६७; विस्मृत प्रेम, पृ० १६८-१६६) तथा सज्जन के दो पद्यों (पृ० ६८, १००) में हुआ है।

(५६) तोटक = स स स स।

निसि फैलि रही निसिनाथ-कला।
किरणावलि कांति लसै अमला।
विलसे चहुँ ओर लखात भला।
निधि छीर मनो विहरै कमला।

—चित्राधार (पराग) चंद्र, पृ० १४६

तोटक का प्रयोग उक्त कविता के अतिरिक्त चित्राधार के 'उद्यानलता' (पृ० १५०) में भी हुआ है।

(६०) वसंततिलका = त भ ज ज ग ग।

छाने लगी जगत में सुषमा निराली,

१. छंदोऽनुशासन २/१७४।
२. वृत्तरत्नाकर ३/५५।

गाने लगी मधुर मंगल कोकिलाली।
फैला पराग मलयानिल की बधाई,
देते मिलिंद कुसुमाकर की दुहाई।
—प्र० सं० (विशाख) पृ० २६

इस पद्य के अतिरिक्त वसंततिलका का प्रयोग चित्राधार के सज्जन के सात पद्यों (पृ० ६४, ६६, १००, १०१/३, १०६) तथा पराग के 'विनय' एवं 'प्रभो' कविताओं में हुआ है।

(६१) मालिनी = न न म य य।

प्रिय जन दृग-सीमा से जभी दूर होते
यह नयन-वियोगी रक्त के अश्रु रोते
सहचर-सुख क्रीड़ा नेत्र के सामने भी
प्रति क्षण लगती है नाचने चित्त में भी।
—काननकुसुम : विरह, पृ० ६८

इस कविता के अतिरिक्त मालिनी का प्रयोग चित्राधार के अयोध्या के उद्धार के पाँच (पृ० ४५-४६ (४) पृ० ५० (१) एवं सज्जन के तीन पद्यों पृ० १०१(१); पृ० १०७-१०८ (२) में हुआ है।

(६२) पंचचामर = ज र ज र ज ग।

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं-प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'
—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० ११७

पंचचामर का प्रयोग केवल चंद्रगुप्त के उक्त गीत में हुआ है।

(६३) सवैया—इसके तीन भेदों का प्रयोग प्रसाद-साहित्य में मिलता है—

(क) मत्तगयंद = भ ७ + ग ग

सोंधे सरोज की माल सी चारु
अनंग भरे अँग है अरसों है।
गोल कपोल पै है अरुनाई
अमंद छटा सुख की सरसो है।
—चित्राधार (उर्वशी) पृ० ३

मत्तगयंद के केवल चार पद्य चित्राधार (उर्वशी, पृ० ३, ६; मकरन्द

विन्दु, पृ० १८२, १८३) में प्राप्त होते हैं।

(ख) दुर्मिल = स ८

जब प्रीति नहीं मन में कुछ भी
तब क्यों फिर बात बनाने लगे।
जब रीति प्रतीति उठी पिछली
फिर भी हँसने मुसकाने लगे।
मुख देख सभी सुख खो दिया था--
दुख मोल इसी सुख को लिया था
सर्वस्व ही तो हमने दिया था
तुम देखने को तरसाने लगे।

—प्र० सं० (राज्यश्री) पृ० ४

सवैये के चारों चरणों में समान तुक रहती है। यहाँ प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ में तुक-योजना है। तृतीय तुक-विहीन है, यही नवीनता है। चौथी पंक्ति के 'सर्वस्व' को 'सरवस्व' होना चाहिए। इस पद्य के अतिरिक्त दुर्मिल के और दो पद्य चित्राधार (वभ्रुवाहन, पृ० २३; मकरंद-बिंदु, पृ० १८३) में मिलते हैं।

(ग) मुक्तहरा = ज ८

प्रमोद भरी ये सुपद्मिनी वृंद
भरी मकरंद लगी ललचान।
चित्तौन लगी निज प्रीतम ओर
रह्यो नहिं धीर छुट्यो सकुचान।

—चित्राधार (उर्वशी) पृ० ६

मुक्तहरा का केवल उक्त पद्य प्रसाद-साहित्य में प्राप्त होता है।

अर्द्धसम

(६४) वियोगिनी = स स ज ग; स भ र ल ग।

वरुणालय चित्त शांत था,
अरुणा थी पहली नई उषा,
तरुणाब्ज अतीत था खिला,
करुणा की मकरंद वृष्टि थी।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० ८

इस छंद को जयकीर्त्ति ने विबोधिता (३/१५) हेमचंद्र ने प्रबोधिता (३/१४) और मंदारमरंद चंपूकार (२१/१६) ने वियोगिनी कहा है। मात्रिक

रूप में यही छंद वैतालीय कहा जाता है।[१] प्रसाद-साहित्य में 'विशाख' के चार पद्य वाले उक्त गीत के अतिरिक्त इसका प्रयोग चित्राधार के 'अयोध्या का उद्धार' के २१ पद्यों में पृ० ४५ (१) ४६-४६ (१८) ५१ (१) ५४ (१) हुआ है। इस प्रकार इसका प्रयोग २५ पद्यों में पाया जाता है। यह वही छंद है, जिसका प्रयोग कालिदास ने कुमारसंभव के रति-विलाप (सर्ग ४) में और मैथिलीशरण ने साकेत के दशम सर्ग में किया है।

वर्णिक मुक्तक

(६५) लघुत्रिपदी = ६, ६, ८ अक्षर।

सघन सुंदर मेघ मनोहर
गगन सोहत हेरि।
धरा पुलकित अति अनंदित
रूप धर्‌यो चहुँ फेरि।

—चित्राधार : वर्षा में नदी-कूल, पृ० १५०

लघु त्रिपदी बँगला छंद है, जिसमें तीन चरण होते है। प्रथम और द्वितीय चरणों में छह-छह एवं तृतीय में ८ अक्षर रहते हैं। प्रथम-द्वितीय में तुक मिली रहती है और तृतीय की तुक आगे के छंद के तृतीय चरण से मिलती है। यथा—

कैलास भूधर अति मनोहर
कोटि शशि परकाश।
गंधर्व किन्नर यक्ष विद्याधर
अप्सरो गणेर वास।

—अन्नदामंगल।[२]

प्रसाद-साहित्य में लघुत्रिपदी का प्रयोग केवल चित्राधार की उक्त कविता

१. This is often described as वैतालीय (6 + र ल ग; 8 + र ल ग) when considered as a मात्रावृत्त, when such a metre has the same अक्षरगण S in both the balves as above, it should be considered as a वर्णवृत्त; otherwise it should be regarded as a मात्रावृत्त।

—जयदामन-एच० डी० वेलंकर, पृ० १४६,१५७

२. साहित्य प्रवेश (बाँगला भाषार व्याकरण)—प्रसन्न चंद्र विद्यारत्न: पृ० ३५१।

में हुआ है। विद्यापति में दीर्घत्रिपदी का प्रयोग मिलता है। लघुत्रिपदी का प्रयोग हिंदी साहित्य में संभवतः प्रसाद ने ही किया है।

(६६) पयार = १४ अक्षर

समीरन मंद मंद चलि अनुकूल,
खेलत रसाल सँग अति सुखमूल।
उदार चरित तुम तरुवर राज,
तुम्हरे सहाय वली होत ऋतुराज।

—चित्राधार (पराग) रसाल, पृ० १४६

पयार वँगला छंद है, जिसके चरण में ८-६ पर यति देकर १४ अक्षर होते हैं। इस छंद में निवद्ध उक्त पद्य के अतिरिक्त एक और पद्य (चित्राधार-पराग : संध्यातारा, पृ० १६०) प्रसाद-साहित्य में उपलव्ध होता है।

(६७) मनहरण घनाक्षरी = ३१ अक्षर, अंत में ऽ

जीवन जगत के, विकास विश्व वेद के हो,
परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्ण काम हो,
विधि के विरोध हो, निपेध की व्यवस्था तुम
खेद भय रहित, अभेद, अभिराम हो।
कारण तुम्हीं थे, अव कर्म हो रहे हो तुम्हीं,
धर्म कृषि मर्म के नवीन घनश्याम हो,
रमणीय आप महामोदमय धाम, तो भी
रोम रोम रम रहे, कैसे तुम राम हो।

—झरना : तुम, पृ० ४६

मनहरण घनाक्षरी में १६-१५ पर विश्राम देकर ३१ अक्षर होते हैं। अंत में गुरु रहता है। प्रसाद-साहित्य में मनहरण के २७ पद्य (झरना-अनुनय १, तुम ५; चित्राधार-पराग—२१ पद्य) मिलते हैं। अजातशत्रु की निम्नांकित दो पंक्तियाँ भी

मानव-हृदय-भूमि करुणा से सींच कर,
वोधन-विवेक-वीज अंकुरित कीजिए।

—प्र० सं०, पृ० ५४

मनहरण का एक चरण मानी जा सकती हैं।

(६८) रूपघनाक्षरी = ३२ अक्षर, अंत में ऽ।

मिलि रहे माते मधुकर मनमोद भरे

खिलि रहे सुमन सुगंध सरसाये देत।
सीरी कछु भीनी-सी समीर हू चलत जौन
मिलित पराग ह्वै गुलाल वगराये देत।
वरसा-सी कीन्हीं है वसंत मकरंद विंदु
कमल-कली की पिचुकारियाँ चलाये देत।
वैठि के रसालन की डालन पै कूकि कूकि
तैसी पिक-पाँती हूँ धमार धुन गाये देत।
—चित्राधार (मकरंद विंदु), पृ० १८०

रूपघनाक्षरी में १६-१६ पर विश्राम देकर ३२ अक्षर होते हैं। अंत में ऽ। रहता है। रूपघनाक्षरी का केवल उक्त पद्य प्रसाद-साहित्य में उपलब्ध होता है।

(६९) जलहरण = ३२ अक्षर, अंत में।।

मानस की तरल तरंग उठै रंग भरी
पाइ के बयार सुख सार स्वच्छ जल पर।
रूप के प्रभाव भरि आनंद अपार खिल्यो
हृदय स्वभाव-मकरंद लै अमल पर।
सींचत युगल दृग-कुंभ सुधा-धारन ते
पूजत 'प्रसाद' प्रेम पूरन अचल पर।
को हौ तुम आइकै हृदय में निवास कियो
आसन जमायो जनु कमला कमल पर।
—चित्राधार (मकरंद विंदु), पृ० १७७

जलहरण में १६-१६ पर विश्राम देकर ३२ अक्षर होते हैं। अन्त में दो लघु रहते है। प्रसाद-साहित्य में इसके अतिरिक्त जलहरण का एक पद्य 'झरना' के 'तुम' (पृ० ५१) में भी मिलता है, जिसके अंत में।ऽ है। पर यहाँ अंतिम दीर्घ का लघूच्चारण अभीष्ट है।[1]

मुक्त छंद

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की······१६ वर्ण
संध्या है आज भी तो। धूसर क्षितिज में······७-७ ,,
और उस दिन तो;·························७ ,,
निर्जन जलधि-वेला । रागमयी संध्या से······८-७ ,,

---

१. द्रष्टव्य-छंदःप्रभाकर, पृ० २१८।

सीखती थी सौरभ से। भरी रंग-रलियाँ......८-७ वर्ण
दूरागत वंशी-रव..........................८ ,,
गूंजता था धीवरों की। छोटी-छोटी नावों से...८-७ ,,
मेरे उस यौवन के। मालती-मुकुल में.........८-७ ,,
रंध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें......१५ ,,
उसे उकसाने को।—हँसाने को।............७-४ ,,

—लहर, प्रलय की छाया, पृ० ६५

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने मुक्त छंद के मुख्यत: दो विभाग किए है। मात्रिक और वर्णिक।[1] उक्त छंद वर्णिक मनहरण घनाक्षरी के लयाधार पर चलने वाला है, जिसमें मनहरण का कहीं तो अर्द्धांश और कहीं उससे न्यूनाधिक वर्ण का प्रयोग हुआ है। इसी छंद में लिखी 'लहर' में और दो कविताएँ हैं—शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण और पेशोला की प्रतिध्वनि। निराला की तरह प्रसाद ने स्वच्छंद छंद (जिसे डॉ० शुक्ल मात्रिक मुक्त छंद कहते है) का प्रयोग नहीं किया है।[2]

उर्दू छंद

इन छंदों के अतिरिक्त प्रसाद ने कुछ उर्दू छंदों का भी प्रयोग किया है। पीयूषवर्षी, सुमेरु, दिगपाल, विधाता आदि छंद भी उर्दू से ही आए हैं। पर फ़ारसी-उर्दू की तत्तत् लय (बहर) को ग्रहण कर हिन्दी छंद:शास्त्री ने उसका नामकरण कर दिया है। अनेक कवियों ने इन्हें हिन्दी में इस प्रकार रूपायित कर दिया है कि ये अब हिन्दी के छंद हो गए हैं। नीचे प्रसाद-द्वारा फारसी-उर्दू की उन बहरों में लिखे पद्यों का उल्लेख किया जाता है, जिनका न तो हिन्दी छंद:शास्त्र में उल्लेख हुआ है, (एकाध को छोड़कर) और न कवियों ने सामान्य रूप से प्रयोग ही किया है।

(१) न छेड़ना उस अतीत स्मृति से
खिंचे हुए वीन-तार कोकिल
करुणा रागिनी तड़प उठेगी

---

१. हिन्दी भाषा की मूल प्रकृति के अनुसार मात्रिक और वर्णिक दो ही भेद मुक्त छंदों में भी मानना समीचीन है। आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० ४३८।

२. स्वच्छंद-मुक्त छंद की विशेष जानकारी के लिए आगे देखिए—निराला की छंदोयोजना।

सुना न ऐसी पुकार कोकिल

—प्र० सं० (स्कंदगुप्त) पृ० ८३

१६ मात्रापादी उक्त पंक्तियों को 'विहंग' नाम देते हुए डॉ० शुक्ल ने वताया है कि फ़ऊल फेलुन अरकान तरकीव से यह छंद उर्दू में वहुत प्रचलित है।[1] फऊल फेलुन (जगण+चौकल) की दो आवृत्तियों से इस छंद का एक चरण वन जाता है। इस दृष्टि से ऊपर की तीसरी पंक्ति दोपयुक्त है। प्रसाद के पूर्व हरिऔध ने इस छंद का प्रयोग 'पद्यप्रमोद' की 'चित्तौड़ की एक शरद रजनी' (पृ० ३६) में किया है। उनके 'वैदेही वनवास' के सर्ग ७ में भी यही छंद प्रयुक्त हुआ है। 'निराला' की गीतिका का ५६वाँ गीत इसी छंद में निवद्ध है। प्रसाद-साहित्य में उक्त गीत के अतिरिक्त 'अजातशत्रु' के दो गीतों में इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

(क) वहुत छिपाया, उफन पड़ा अब,
सँभालने का समय नहीं है।

—प्र० सं०, पृ० ५१

(ख) स्वजन दीखता न विश्व में अव
न वात मन में समाय कोई।

—प्र० सं०, पृ० ६२

(२) यह सत्य यही स्वर्ग यही पुण्य घोष है,
सत्कर्म कर्मयोग यही विश्व-कोश है।
किसने कहा कि झूठ है संसार कूप है
तू खोजता किसे अरे आनंद-रूप है।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० १७

हिन्दी संस्कृत में इस लय वाला कोई छंद शास्त्रों में प्राप्त नहीं। इसके चरण का गठन वताता है कि इसका निर्माण छह त्रिकलों के आदि और अंत में एक-एक गुरु के योग से हो जाता है। भानु ने एक विहारी छंद (१४-८) का उल्लेख किया है—विशाख की उक्त पंक्तियों और विहारी में यही अंतर है

द्वै चार छहौ आठ रच्यो, रास विहारी।
सुनि संग सखी राधै लै, कुंज सिधारी।

—छंद: प्रभाकर, पृ० ६०

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २६७।

कि इसके अंत में यगण (। ऽ ऽ) और उनके अंत में रगण (ऽ । ऽ) है। भानु के अनुसार विहारी उर्दू छंद की मफऊल मफाईल मफाईल फऊलन (अर्थात् त य ल य ल य) वहर से मिलता है। इस दृष्टि से विशाख की उक्त पंक्तियों की वहर मफऊल मफाईल मफाईल फायलुन् हो सकती है। 'विशाख' के उक्त पद्य के अतिरिक्त प्रसाद ने इसका प्रयोग 'अजातशत्रु' में एक जगह और किया है—

अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में।—प्र० सं० पृ० ५५

यहाँ 'अ' का दीर्घोच्चारण अपेक्षित है।

(३) मेरे मन को चुरा के कहाँ ले चले—
मेरे प्यारे मुझे क्यों भुला के चले।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० २७

इसकी उर्दू वहर है—फायलुन् फायलुन् फायलुन् फायलुन्।

'रे' को ह्रस्व मान लेने पर यह अरुण का चरण भी हो जाता है।

(४) प्रसार तेरी दया का कितना ये देखना हो तो देखे सागर
तेरी प्रशंसा का राग प्यारे तरंगमालाएँ गा रही है।
तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना वो देख सकता है चंद्रिका को
तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ निनाद करती ही जा रही हैं।

—काननकुसुम : प्रभो।

फऊल फालन (फेलुन) की चार आवृत्तियों से इस छंद का एक चरण बन जाता है। उपरिलिखित विहंग के दो चरणों को एक इकाई मान लेने से इसके चरण का निर्माण उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार चौपाई को द्विगुणित कर देने से समानसवैये का। इसी वहर का प्रयोग कानन-कुसुम की 'सरोज' कविता (पृ० ३६) में भी हुआ है।

प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में निम्नांकित दो पंक्तियाँ

समीर स्पर्श कली को नहीं खिलाता है।
विकस गई, खुली, मकरंद जवकि आता है।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० १९

ऐसी हैं, जिनमें संयुक्ताक्षर 'स्प' के पूर्व 'र' को गुरु मान लेने पर २३-२३ मात्राएँ तो हो जाती हैं। पर दोनों पंक्तियों में एकरूपता का अभाव है—दोनों की गति का कोई एक आधार स्पष्ट नहीं है। साथ ही इस लय वाला कोई छंद संस्कृत-हिन्दी में तो है ही नहीं; एकरूपता के अभाव में किसी उर्दू वहर में भी ये पंक्तियाँ नहीं वैठतीं।

छंदोविवेचन के वाद अव प्रसाद के छंद:प्रयोग की प्रवृत्ति पर एक नजर डाल लेनी चाहिए। प्रसाद भाव और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से चाहे छायावाद के प्रवर्त्तक माने जायँ, पर उनके ग्रंथों में प्रयुक्त छंदों का अध्ययन यह स्पष्टतया वताता है कि उन छंदों के द्वारा उन्होंने छायावाद का प्रतिनिधित्व उतना नहीं किया, जितना द्विवेदी-युग का साथ दिया है। द्विवेदी-युग में प्रचलित उर्दू छंद, वर्णवृत्त, पद, कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि उनके काव्यों में वहुलता से मिलते हैं। झरना, राज्यश्री और विशाख तक उनकी यह प्रवृत्ति आसानी से देखी जा सकती है। दोहे का प्रयोग तो हमें स्कंदगुप्त तथा चंद्रगुप्त तक में मिलता है। अवश्य यहाँ दोहे का प्रयोग अन्य छंदों के मेल से वने अनुच्छेद (पद-वंध) में या गीत में हुआ है। 'झरना' में जहाँ कवित्त (मनहरण, जलहरण) का प्रयोग हुआ है, वहाँ दो छंदो के मेल से (जैसे—शृंगार-दोहा, शृंगार-सोरठा) नूतन पद-वंध भी बनाए गए है। इस प्रकार झरना से छंद के क्षेत्र में भी नूतन युग का कुछ-कुछ आभास मिलने लगता है। आँसू, लहर और कामायनी में उक्त छंदों का एकदम वहिष्कार कर दिया गया है। यदि लहर और कामायनी में हम एक ओर दो-तीन छंदों के मिश्रण-द्वारा निर्मित गीतो को (कामायनी के निर्वेद सर्ग में श्रद्धा द्वारा गाया गया गीत) पाते है, तो दूसरी ओर दो छंदों के मेल तथा तुक के विशिष्ट क्रमायोजन से वने अनुच्छेद (कामायनी के इड़ा तथा दर्शन सर्ग) के भी दर्शन करते है। लहर की तीन कविताएँ मुक्त छंद में लिखी दिखलाई पड़ती हैं। इस प्रकार झरना के कुछ अंश में तथा लहर एवं कामायनी में छायावादी छंद:प्रयोग की सामान्य विशेषताओं को हम आसानी से पा जाते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि प्रसाद प्राचीन और नवीन दोनों के संगम-स्थल थे। हम उन्हें द्विवेदी और छायावाद दोनो युगों के बीच की कड़ी मान सकते हैं। क्योंकि दोनों युगों में प्रचलित छंदो को उन्होंने समान रूप से सम्मान दिया है। वे निराला और पंत की तरह कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा आदि छंदों को एकवारगी झटक कर हिंदी-साहित्य में अवतरित नहीं हुए थे, वल्कि उन्हें दुलराते हुए नए क्षितिज पर धीरे-धीरे प्रकट हुए थे। निराला और पंत एकवारगी इन छंदों को झटक कर हिंदी के मंच पर दिखलाई पड़े। कई विद्वानों के द्वारा जो छायावाद के प्रवर्त्तन का सेहरा इन दोनों में किसी एक के सिर पर वाँधा जाता है, उसमें एक रहस्य यह भी है।

छंद: प्रयोग की प्रवृत्ति को देख लेने के वाद अव प्रसाद के छंद:प्रयोग-

कौशल पर भी दृष्टि-पात कर लेना चाहिए। भावों में मग्न रहने वाले प्रसाद ने जिस प्रकार व्याकरण के नियम-पालन की ओर असावधानता दिखलाई है, उसी प्रकार छंदों के नियमों की भी अवहेलना की है। छंदः प्रयोग में सर्वप्रथम हमारी दृष्टि गति अथवा लय पर जाती है। यह लय छंदों की जान है। इसी लय का टूट जाना गति-भंग कहा जाता है। गति-रक्षा छंदःप्रयोग-कौशल की प्रथम कसौटी है और गति-भंग कवि की असफलता की पहली निशानी। यह गति-भंग दोष पद्य में चार तरह से आता है।

(१) पाद में मात्रा अथवा वर्ण की न्यूनता या आधिक्य से।
(२) लय-निर्दिष्ट लघु-गुरु के क्रमायोजन के विपरीत शब्द-संस्थापन से।
(३) यति-भंग दोष से।
(४) पाद के अश्रव्य होने से।

कहना न होगा कि प्रसाद के काव्य में ये चारों प्रकार के दोष मिलते हैं। छायावाद का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य कामायनी तो इन दोषों से बुरी तरह पीड़ित है। कतिपय उदाहरणों से मेरे कथन की सत्यता सिद्ध हो जायगी।

(१) पाद में मात्रा की न्यूनता--

(क) किसी स्वार्थी मतवाले हाथी से हा/पद दलित हुई।

—कानन कुसुम : दलित कुमुदिनी, पृ० ५५

(ख) आत्मा सबकी सदा थी, है, रहेगी मान लो।

—कानन कुसुम : कुरुक्षेत्र, पृ० ११६

(ग) कंस-हृदय की दुश्चित-सा जगत् में।

—कानन कुसुम : श्री कृष्ण जयंती, पृ० १२३

(घ) प्रणय-प्रभाकर से चढ़ कर इस, अनंत का करते माप।

—प्र० सं० (अजातशत्रु) पृ० ६०

(ङ) उषा ज्योत्स्ना सा यौवन-स्मित मधुप सदृश निश्चित विहार।

—कामायनी, पृ० ६

(च) लीला का स्पंदित आह्लाद।

—कामायनी, पृ० ७५३

यहाँ स्वार्थी, आत्मा तथा ज्योत्स्ना का उच्चारण पंचमात्रिक (स्वारथी, आतमा, ज्योतसना) रूप में करना पड़ता है, जबकि इनमें चार ही मात्राएँ हैं। आह्लाद को आहलाद के रूप में पढ़ना पड़ता है। 'ग' और 'घ' में क्रमशः एक और दो मात्राओं की कमी है।

पाद में मात्रा या वर्ण की अधिकता—

(क) फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ।

—कानन कुसुम + झरना : प्रथम प्रभात, पृ० १५, ६,

प्लवंगम की उक्त पंक्ति में २१ की जगह २२ मात्राएँ हैं।

(ख) कि 'तुम भी मुझ पर अनुरक्त हो।'

—कानन कुसुम : गंगासागर, पृ० ७५

द्रुतविलंबित की उक्त पंक्ति में 'पै' की जगह 'पर' आ जाने से एक अक्षर बढ़ गया है। साथ ही गण-क्रम भी बिगड़ गया है।

(ग) मधु राका जग कर बिता चुके।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० २०

वियोगिनी के उक्त चरण में 'कर' की जगह 'के' होना चाहिए। तभी इसमें गण-क्रम के साथ ११ अक्षर हो सकते हैं।

(घ) आवश्यकता जितनी बढ़ जावे उतने रूप बदलते हैं।

—प्र० सं० (विशाख) पृ० २८

नाटंक के उक्त चरण में प्रारंभिक 'आ' के कारण दो मात्राओं क अधिकता है।

(२) **लय-निर्दिष्ट लघु-गुरु के क्रमायोजन के विपरीत शब्द-संस्थापन—**

प्रसाद-साहित्य में शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय विपुल परिमाण में पाया जाता है। अतः अन्य पुस्तकों को छोड़ कर केवल कामायनी से ही कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

(क) अंतरिक्ष के मधु उत्सव के विद्युत् कण मिले झलकते से। पृ० ७३

काम सर्ग की यह पंक्ति समानसवैये की हो गई है, जबकि सारा सर्ग मत्तसवैये में लिखा गया है। मत्तसवैये का प्रारंभ 'अंतरिक्ष' जैसे षट्कलात्मक शब्द से नहीं हो सकता। पंक्ति इस प्रकार ठीक हो जा सकती है—इस अंतरिक्ष के उत्सव के विद्युत्कण मिले झलकते से।

(ख) अग्रसर हो रही यहाँ फूट।

यहाँ प्रारंभ में त्रिकल का प्रयोग पद्धरि के प्रवाह का विघातक है। हो रही अग्रसर यहाँ फूट—होना चाहिए।

मूल पाठ		प्रस्तावित पाठ
(ग) छूने में हिचक, देखने में	(पृ० ९९)	है हिचक स्पर्श में, लखने में
(घ) उज्ज्वल वरदान चेतना का	(पृ० १०२)	वरदान चेतना का उज्ज्वल
(ङ) वन आवर्जना मूर्त्ति दीना	(पृ० १०२)	बन कर आवर्जन मूर्त्ति दीन
(च) देवों की विजय, दानवों की	(पृ० १०६)	देवों की जय, दानव-गण की
(छ) सुख अपने संतोष के लिए	(पृ० १३३)	सुख अपने संतोष-तृप्ति-हित
(ज) हृदय काल्पनिक विजय में सुखी	(पृ० १३५)	हृदय काल्पनिक जय में मोदित।
(झ) तुम उसका पटल खोलने में	(पृ० १७१)	तुम पटल खोलने में उसका
(ञ) न्याय तपस, ऐश्वर्य में पगे ये प्राणी चमकीले लगते	पृ० २७०	न्याय-तपस-ऐश्वर्य मग्न ये प्राणी सब चमकीले लगते।

उक्त सारी पंक्तियाँ, कुछ तो क्रम-भंग और कुछ यति-भंग के कारण अस्त-व्यस्त हो गई हैं। यदि इनमें शब्दों का क्रम थोड़ा बदल दिया जाय, जैसा मैंने प्रस्तावित पाठ में किया है, तो ये सारी पंक्तियाँ प्रवाह-पूर्ण हो जायँ।

(३) यति-भंग दोष—

(क) कलरव मधुर विहंग-संग परि/मुदित करत चित धीरो।

—चित्राधार, पृ० १४४

(ख) जयति महासंगीत ! विश्व-वी/णा जिसकी ध्वनि गाती है।

—का० कु०; वंदना, पृ० ३

(ग) तुम सुन कर सुख पाओगे, दे/खोगे—यह गागर रीती।

—लहर, पृ० ५

(घ) रत्न-सौध के वातायन, जिन/में आता मधु मदिर समीर।

—कामायनी, पृ० १२

(ङ) प्रश्न था यदि एक तो उ/त्तर द्वितीय उदार।

—कामायनी, पृ० ८१

(च) इसी विपिन में मानस की आ/शा का कुसुम खिलेगा।

—कामायनी, पृ० १०३

इनमें तथा इसी प्रकार की अनेक पंक्तियों में पुराने छंदःशास्त्री स्पष्टतः यति-दोष देखेंगे। पर आधुनिक छंदःशास्त्री यहाँ दोष नहीं देख कर मनोहारी विविधता (Variation) पाते हैं।[1] उनके विचार से ऐसी पंक्तियों में समान

१. द्रष्टव्य—आ० हि० का० में छंद योजना, डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २०९

मात्रा पर पड़ने वाली यति की समरसता को मिटाने के लिए कवि ने निर्दिष्ट स्थान से हट कर पूर्व ही यति दे दी है। इस विचार से ये पंक्तियाँ दोषयुत नहीं मानी जानी चाहिए।

उपरि चर्चित पंक्तियों को यदि हम छोड़ भी दें, तो भी ऐसी अनेक पंक्तियाँ प्रसाद-काव्य में पाई जाती हैं, जो यति-दोष से स्पष्टतः पीड़ित हैं। यथा —

(क) नील सरसी सलिल कंज, सु/नील प्रफुलित चारु।

—चित्राधार, वभ्रुवाहन, पृ० २३

(ख) कोकिला-कलरव-समान न/वीन नूपुर बज उठा।

—काननकुसुम : नववसंत, पृ० १६

(ग) जहाँ सरल के लिए अनेक अ/निष्ट विचारे जाते है।

— प्रेम पथिक: पृ० ११

(घ) मधुर आँच से गला वहावे/गा शैलों से निर्झर लोक।

—झरना: चिह्न, पृ० २०

(ङ) अब सांध्य मलय-आकुलित दुकू/ल कलित हो, यों छिपते हो क्यों

—प्र० सं० (चन्द्रगुप्त) पृ० १०६

(च) मेरा अस्ति/त्व हुआ अतीत।

—कामायनी, पृ० १४१

(छ) पर मैं तो दे/ख रहा अभाव।

—कामायनी, पृ० १४५

(ज) जीवन विक्षु/ब्ध महासमीर।

—कामायनी, पृ० १५७

(४) पाद का अश्रव्य होना।

शास्त्रानुसार छंद के सभी नियमों का पालन किए जाने भर भी कभी-कभी कोई पाद सुनने में अच्छा नहीं लगता।[1] मात्रिक छंद में इसके दो कारण वतलाए जा सकते हैं—

(१) जहाँ छंद की अपेक्षित लय के लिए शब्द को खंडित कर पढ़ना पड़ता है। यथा—

(क) मधुप माधविकाकुसुम से कुंज में।

—झरना : मिलन, पृ० ४२

---

१. काव्यप्रकाश : मम्मट, सप्तम उल्लास, सूत्र ५, श्लोक २१५।

यहाँ पीयूषवर्षी की लय के लिए 'माधविकाकुसुम' को तीन खण्डों (माधवि, काकु, सुम) में विभाजित कर पढ़ना पड़ता है।

(ख) निराधार उस महादेश में उदित सचेतनता नवीन सी।

—कामायनी : रहस्य, पृ० २६१

यहाँ समान सवैये की लय के लिए 'सचेतनता' को 'सचे' और 'तनता'— इन दो खण्डों को विभाजित कर पढ़ना पड़ता है।

(२) जहाँ जगण (। ऽ ।) का प्रयोग उपयुक्त स्थल पर नहीं होता है। यथा--

(क) हाँ अभाव का अभाव होकर आवश्यकता पूरी है।

—प्रेमपथिक, पृ० ६

(ख) घेर रही थी नव जीवन को वसंत की सुखमय संध्या।

--प्रेमपथिक, पृ० १०

(ग) निशादपति का दूत, मैं प्रेरित आया यहाँ।

—कानन कुसुम : चित्रकूट, पृ० ६६

यहाँ सोरठे के प्रारम्भ में जगण लय का वाधक है।

(घ) सरसों के पीले कागज पर वसंत की आज्ञा पाकर।

—झरना : पाई वाग, पृ० ३७

(ङ) रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र।

--कामायनी, पृ० १४६

ऐसे प्रयोग में शब्द-संस्थापन का व्यतिक्रम इसलिए नहीं कहा जायगा कि उसमें विषम-सम, त्रिकल-चतुष्कल आदि को रखने का जो क्रम है, वह खंडित होता है। पर इसमें ऐसी वात नहीं होती। क्रम ठीक रहता है, पर जगण के प्रयोग से लय प्रतिहत हो जाती है। उपरिलिखित सभी पंक्तियाँ समात्मक हैं, पर जगण का प्रयोग लय में वाधा उपस्थित करता है। यदि 'वसंत' की जगह 'ऋतुपति' रख दिया जाय, तो अभीष्ट लय की प्राप्ति हो जाय।

प्रसाद के काव्य में ऐसी यति-गति-दोष से ग्रस्त पंक्तियाँ आसानी से मिल जाती हैं। तिलोकी और रोला में निवद्ध पद्यो को देखने से मेरे कथन की सत्यता स्पष्ट हो जायगी। इतना ही नहीं, प्रसाद ने तिलोकी के अन्त्य। ऽ के नियम को नहीं मानकर उसके अन्त में, हरिऔध के समान, दो गुरुओं की भी योजना की है। यथा--

भारतवासी ! नाम बताना पड़ेगा ।—महाराणा का महत्त्व, पृ० ६
कहो ! मुझे फिर सच कहना ही पड़ेगा ।— ,, पृ० २१
शांतिवारि से सिंचित हो, फलवती हो ।— ,, पृ० २४

यति-गति की बात को छोड़कर अब प्रसाद के छंदों की भावानुकूलता पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। कामायनी के चिंता सर्ग में देव-जाति के विनाश का चित्रण और आशा सर्ग में जल-प्लावन के बाद सृष्टि का नए सिरे से विकास और मनु के फिर से कर्म-संलग्न होने का वर्णन है। इस वर्णनात्मकता के लिए ताटंक-वीर जैसे लम्बे छंदों का प्रयोग सर्वथा समुचित है। श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा के रूप-वर्णन और श्रद्धा-द्वारा मनु के लिए कल्याणमय प्रबोधन वाक्यों के कथन में श्रृंगार जैसे छोटे और गत्यात्मक (ऽ।) अन्त वाले छंद का प्रयोग अत्यंत प्रभविष्णु बन पड़ा है। काम सर्ग में मनु के हृदय के उद्वेलित काम-भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने मत्तसवैया-जैसे छंद का प्रयोग किया है, जिसमें वर्णन-विस्तार की गरिमा के साथ भाव-चांचल्य की अभिव्यक्ति की शक्ति भी है। वासना सर्ग में रूपमाला का प्रयोग हुआ है, जो दो हृदयों के आत्म-समर्पण के भाव को अपनी मन्द्रगति और अचानक रुक जाने वाले गत्यात्मक अन्त से सांद्र, निविड तथा गंभीर बनाने में समर्थ हो सकी है। आत्म-समर्पण के समय श्रद्धा के हृदय में उदित संकोच, भय और लज्जा के भावों की अभिव्यक्ति के लिए लज्जा सर्ग में समानसवैये के विपरीत चंचल भावों को वहन करने वाले मत्तसवैये का प्रयोग सर्वथा समुचित है। कर्म सर्ग में प्रयुक्त सार छंद मनु की कर्म-तत्परता और श्रद्धा के प्रति उसके हृदय में उदित होने वाली उदासी की अभिव्यंजना अपने अपेक्षाकृत लघु-कलेवर तथा अंत्य लघु-गुरु या दो गुरुओं से पूरी तरह कर देता है। ईर्ष्या की उत्पत्ति कुछ-कुछ क्रोध और घृणा से होती है। मनु के हृदय के इन्हीं दोनों भावों की अभिव्यक्ति ईर्ष्या सर्ग में कवि ने पद-पादाकुलक और पद्धरि की पंक्तियों के मेल से बने अनुच्छेद में की है। इस सर्ग में गर्भवती श्रद्धा का जो रूप-वर्णन है, वह अपभ्रंश कवि पुष्पदंत और चंदबरदाई के द्वारा पद्धरि छंद में नारी-रूप-वर्णन की परंपरा से अलग नहीं। इड़ा सर्ग में जीवन-जगत् की एक-एक समस्या बारी-बारी से मनु के समीप समुपस्थित होती है। उसका वर्णन कवि ने धारावाहिक पद्य में नहीं कर एक-एक पद में किया है, जिसका निर्माण पदपादाकुलक और पद्धरि के चरणों को एक इकाई मानकर तुक के विशिष्ट क्रमायोजन के साथ हुआ है। विरहिणी श्रद्धा की दशा, उसका प्रलाप तथा उसका स्वप्न-दर्शन—सभ

वर्णनात्मकता की अपेक्षा रखते हैं। इसीलिए कवि ने स्वप्न सर्ग में ताटंक-वीर का प्रयोग किया है। इस सर्ग में प्रयुक्त एकायात तुक का यह रहस्य है कि पाठक तीसरी पंक्ति में आकर श्रद्धा की दृश्य तथा उसके स्वप्न के संबंध में ज्यों ही कुछ सोचने को सिर उठाता है, त्यों ही प्रथम-द्वितीय के समान तुक रखने वाली चतुर्थ पंक्ति उसे भाव-विभोर कर देती है। संघर्ष सर्ग में मनु और जनता के बीच होने वाले संघर्ष का वर्णन घोड़े की सरपट चाल से चलने वाले रोला छंद में करना बड़ा ही भाव-व्यंजक है। निर्वेद सर्ग में इड़ा और मनु के मानसिक उद्वेलन को अभिव्यक्त करने के लिए ताटंक-जैसे लम्बे छंद का प्रयोग तो किया ही गया है, रुक-रुककर चलने वाले मनोरम और माधव मालती में निबद्ध श्रद्धा का गीत विचार-वीथी में भटकने वाले पाठक के कानों में जैसे अमृत ढाल देता है। दर्शन सर्ग में केवल नटराज का ही दर्शन नहीं होता; श्रद्धा और इड़ा अपने पारस्परिक वार्तालाप में एक-दूसरे के हृदय का भी दर्शन करती हैं। इस दर्शन की अनुभूति को कवि ने पदपादाकुलक-पद्धरि जैसे छोटे छंदों में निबद्ध किया है। दर्शन के मुख्यतः तीन क्षण होते हैं—साक्षात्कार, उपभोग तथा तृप्ति का आनन्द अथवा अतृप्ति की बेचैनी। ये तीनों क्षण क्रमशः पद्धरि के दो, पदपादाकुलक के चार और पद्धरि के दो चरणों के मेल से बने अनुच्छेद मे चित्रित किए गए हैं। रहस्य सर्ग में त्रिलोक के रहस्य का उद्घाटन समानसवैये-जैसे विस्तृत और गंभीर चाल वाले छंद में किया गया है। आनन्द सर्ग में आनन्द की अभिव्यंजना सखी जैसे छोटे छंद में सर्वथा उपयुक्त बन पड़ी है। इस प्रकार प्रसाद ने छंद की भावानुकूलता का सदैव ध्यान रखा है। इतर काव्यों में भी यह बात देखी जा सकती है। दो-तीन छंदों के मिश्रण-द्वारा जो अनुच्छेद बनाए गए हैं, उनके निर्माण के पीछे भी भावानुकूलता का यही रहस्य निहित है। नाटकों में जो गीत प्रयुक्त हुए हैं, उनमें भी परिस्थिति और भाव के अनुसार छंदों का प्रयोग हुआ है।

प्रसाद ने महाकाव्य (कामायनी) खंड काव्य (महाराणा का महत्त्व, प्रेम-पथिक) चंपूकाव्य (उर्वशी, बभ्रुवाहन) कथात्मक पद्य (अयोध्या का उद्धार, वन-मिलन, प्रेमराज्य, चित्रकूट, भरत आदि) निबंधात्मक पद्य, मुक्तक काव्य (चित्राधार—मकरंद बिंदु) पद तथा गीत—सब कुछ लिखा है। महा-काव्य में प्रत्येक सर्ग की आद्योपांत रचना एक ही छंद में करने का आचार्यों ने जो आदेश दिया है, उसके मूल मे छंदों की भावानुकूलता ही है। प्रसाद ने कामायनी के प्रत्येक सर्ग को एक ही छंद में निबद्ध कर शास्त्रीय नियम का ही

पालन किया है। अवश्य उन्होंने शास्त्र-नियमानुसार सर्ग के अंतिम पद्य में छंद का परिवर्त्तन नहीं किया है। खंड-काव्य में जीवन की एक घटना का वर्णन होता है। अतः एक ही छंद में खंड काव्य का लिखा जाना सर्वथा युक्तिसंगत है। यही बात बहुत दूर तक छोटे कथात्मक पद्य के लिए भी कही जा सकती है। प्रसाद ने अपने खंड काव्यों तथा कथात्मक पद्यों में इसी नियम का पालन किया है। 'चित्रकूट' और 'अयोध्या का उद्धार'—ये दोनों अवश्य इस नियम के अपवाद है। पर 'चित्रकूट' चार खंडों में विभाजित है। अतः प्रत्येक खंड का भिन्न-भिन्न छंदों में लिखा जाना अखरता नहीं। पर 'अयोध्या का उद्धार' में मात्रिक और वर्णिक छंदों का मेला लग गया है, जो रस के स्वारस्य में बाधा उपस्थित करता है। एक भावनिष्ठ निबंधात्मक पद्य प्रायः एक ही छंद में लिखा गया है। पद की रचना एक छंद में भी देखी जाती है, और कई छंदों के मेल से भी उसका निर्माण होता रहा है। प्रसाद के पद हरिऔध और मैथिली-शरण के समान प्रायः एक ही छंद में निबद्ध हैं। गीतों की रचना भाव के चढ़ाव-उतार के कारण कई छंदों के सहारे भारतेंदु से ही प्रारंभ हो गई थी। प्रसाद ने भी कई छंदों के मेल से गीतों की सृष्टि कर उस परंपरा को आगे बढ़ाया।

अपने भाव को अभिव्यक्त करने के लिए कभी-कभी प्रचलित छंदों को असमर्थ पाकर कवि नूतन छंदों की भी सृष्टि करता है। प्रसाद के साहित्य में नूतन छंदों के नाम पर केवल चार छंद मिलते हैं। वे हैं—शृंगाराभास, आलोक, शृंगारकल्प और ग्रह। इन छंदों के अतिरिक्त उन्होंने दो छंदों के मिश्रण-द्वारा कुछ नूतन प्रागाथिक सृष्टि भी की है। जैसे—झरना की 'उपेक्षा करना' और 'वेदने ठहरो' कविताओं में क्रमशः ग्रह-शृंगारकल्प का और ग्रह-शृंगार का सम्मिश्रण हुआ है। इसी प्रकार झरना की 'सुधा में गरल' कविता में शृंगार की दो अर्द्धालियो के बीच एक सोरठा रख कर एक अनुच्छेद बनाया गया है।

प्रसाद के साहित्य में वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छंद मिलते हैं। वर्णिक छंदों का प्रयोग द्विवेदी-युग का प्रभाव सूचित करता है। इसीलिए उनका प्रयोग प्रारंभिक काव्य-नाटक में ही हो पाया है। उत्तरकालीन साहित्य में केवल पंचचामर का प्रयोग चंद्रगुप्त में अभियान-गीत गीत में हुआ है। द्विवेदी-युग में जब काव्य-भाषा बदली, तो कवि लोग नए छंदों की ओर भी

उन्मुख हुए। उसी के फलस्वरूप संस्कृत के वर्णवृत्त तो अपनाए ही गए; उर्दू और बँगला छंदों की ओर भी दृष्टि डाली गई। प्रसाद ने भी कतिपय पद्य उर्दू बहरों में लिखे। साथ ही बँगला के पयार और लघु त्रिपदी छंदों में भी दो-एक कविताओं को निबद्ध किया। पयार प्रसाद के पूर्व गोरखनाथ, भारतेंदु तथा हरिऔध द्वारा प्रयुक्त हो चुका था। पर लघुत्रिपदी का प्रयोग संभवतः सर्वप्रथम प्रसाद ने ही किया है। विद्यापति में बँगला के दीर्घ त्रिपदी का तो प्रयोग हुआ है, पर लघुत्रिपदी का नहीं। इन दोनों वर्णिक मुक्तक छंदों का प्रयोग भी प्रारंभिक कृति चित्राधार में ही हुआ है। बाद की कृतियों में इनके दर्शन नहीं होते। यही बात मनहरण और रूपघनाक्षरी के साथ भी कही जा सकती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्णवृत्त और वर्णिक मुक्तक अधिकांशतः द्विवेदी-युगीन प्रसाद के छंद हैं, छायावादी प्रसाद के नहीं।

छायावादी प्रसाद ने अपना संपूर्ण साहित्य मुख्यतः मात्रिक छंदों में रचा है, ऐसा कहना बहुत दूर तक युक्तियुक्त है। मात्रिक छंदों में छोटे-बड़े सभी प्रकार के छन्द हैं। मात्रिक दंडक का प्रचलन तो एक तरह से द्विवेदी-युग में ही उठ गया था। अतः ३२ से अधिक मात्रा वाले छन्दों का प्रसाद के साहित्य में नहीं पाया जाना सर्वथा संगत है। प्रसाद-साहित्य में सर्वाधिक बड़े छन्द ३२ मात्रापादी समान सवैया और मत्त सवैया है। और सबसे छोटा छन्द ७ मात्रापादी सुगति। यों तो प्रसाद के साहित्य में अनेक प्रकार के मात्रिक छन्द मिलते हैं, पर उन्होंने सखी, गोपी, चौपाई, शृंगार, पद्धरि, पदपादाकुलक, तिलोकी, रोला, रूपमाला, सार, ताटंक-वीर, समान सवैया, मत्त सवैया, दोहा तथा सोरठा का विशेष प्रयोग किया है। मात्रिक छन्दों में चन्द्र का प्रयोग तो प्राचीन है, पर आधुनिक युग में हरिऔध, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा प्रसाद आदि दो-एक कवियो में ही यह दिखलाई पड़ा। हरिऔध ने इसे विपुल सम्मान दिया है। प्रसाद ने इसमें दो-चार पद्य रचकर मानों इस भूले हुए छन्द की ओर अंगुलि-निर्देश कर दिया है। चन्द्र के अतिरिक्त उन्होंने तमाल का भी प्रयोग किया है, जो प्रसाद के पूर्व गोरखनाथ में ही दिखलाई पड़ता है। अतः प्रसाद को हम तमाल का प्रथम प्रयोक्ता तो नहीं कह सकते, पर इस बात का श्रेय उन्हें अवश्य दिया जायगा कि इस छंद में उन्होंने अधिक परिमाण में रचना की है।

मात्रिक छन्द त्रिकल, चौकल, पंचकल, षट्कल, सप्तकल और अष्टकल पर चलते हैं। प्रसाद-साहित्य में यां तो इन सभी आधारों पर चलने वाले

छन्द मिल जाते हैं, पर त्रिकल-षट्कल के आधार पर चलने वाले लीला और कुंडल छन्द उपलब्ध नहीं होते। लीला का प्रयोग पन्त और निराला ने पर्याप्त रूप में किया है और कुंडल का सहारा निराला ने कई गीतों में लिया है। प्रसाद के यहाँ त्रिकल पर चलने वाले केवल दो छन्द हैं। एक योग, जिसका प्रयोग मात्र एक पद्य में हुआ है। दूसरा शिव, जो छन्दक (टेक) में प्रयुक्त हुआ है। पंचकल पर चलने वाले छन्दों में चन्द्र के अतिरिक्त दिगपाल माना जा सकता है। सप्तकल पर आधारित उर्वशी, सुलक्षण, मनोरम, पीयूषवर्षी, रूपमाला, गीतिका, माधवमालती, हरिगीतिका तो हैं ही, चतुर्थ सप्तक (। ऽ ऽ ऽ) के आधार पर चलने वाले सुमेरु और विधाता का प्रयोग भी प्रसाद ने किया है। चौकल-अष्टकल पर चलने वाले तो अनेक छन्द हैं। नवक पर चलने वाला छन्द विरल है। प्रसाद ने नवक पर चलने वाला स्वनिर्मित ग्रह छन्द का भी प्रयोग किया है।

इतने छंदों में प्रसाद का सर्वाधिक प्रिय छंद कौन है? यह जानने के लिए यह देखना होगा कि किस छंद में उन्होंने विपुल परिमाण में रचना की है। 'महाराणा का महत्त्व' और 'करुणालय' दोनों पुस्तकें आद्योपांत तिलोकी में रचित हैं। 'कानन कुसुम' तथा 'झरना' की अनेक कविताएँ इस छंद में निबद्ध हैं। अतः तिलोकी प्रसाद का प्रिय छंद माना जा सकता है। संपूर्ण 'आँसू' और 'कामायनी' के आनंद-सर्ग की रचना सखी छंद में हुई है। इस प्रकार यह छंद भी उनके प्रिय छंदों में है। पद्धरि, पदपादाकुलक, शृंगार, ताटंक-वीर तथा मत्तसवैये का उन्होंने विपुल प्रयोग किया है। अतः इन छंदों की ओर उनका रुझान सहज ही देखा जा सकता है।

सफलता की दृष्टि से देखें तो यह सहज ही कहा जायगा कि प्रसाद को सब से अधिक सफलता सखी छंद में प्राप्त हुई है। शृंगार छंद में भी उनकी सफलता असंदिग्ध है। सार, ताटंक, वीर, समान सवैया जैसे लंबे छंदों का निर्वाह भी उन्होंने सम्यक् रूपेण किया है। पद्धरि-पदपादाकुलक में, विशेषतः 'कामायनी' में, उनका हाथ उतना सधा हुआ दिखलाई नहीं पड़ता। मत्तसवैया यद्यपि अच्छा बन पड़ा है, पर कहीं-कहीं पंक्तियाँ चुस्त नहीं दिखलाई पड़तीं। रूपमाला पर उनका अधिकार तो दिखलाई पड़ता है, पर कहीं-कहीं उन्होंने लघु की जगह गुरु रख कर तथा यति-भंग कर प्रवाह को बाधित कर दिया है। सबसे अधिक विफलता प्रसाद को रोला छंद में हाथ लगी है। ११वीं मात्रा पर यति देना आप आवश्यक न समझें, पर प्रवाह तो चाहिए ही। कामायनी

का संघर्ष सर्ग किसी भी छंदःशास्त्री के लिए पढ़ना दूभर हो जाता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद छंदों के उतने कुशल प्रयोक्ता नहीं, जितने गुंजन-ज्योत्स्ना तक के पंत और महादेवी। गुंजन-ज्योत्स्ना के बाद युग-वाणी, ग्राम्या, स्वर्णरश्मि, स्वर्ण धूलि आदि में तो पंत ने जान-बूझ कर शब्द-संस्थापन-क्रम को बिगाड़ा है। छंदः-प्रयोग की कुशलता के संबंध में निराला की तो चर्चा ही व्यर्थ है। उन्होंने तो परंपरित छंदःशास्त्र के नियमों को तोड़ने का ही बीड़ा उठाया था।

नवम्बर '७३]

निराला की छंदोयोजना

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के एक विशिष्ट कलाकार थे। छायावाद के प्रवर्तकों में उनका स्थान अन्यतम है। उन्होंने काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक निवन्ध लिखे जिसमें कुछ अप्रकाशित ही है।[1] निवंध, आलोचना, रेखाचित्र, आदि विविध साहित्य-विधाओं पर तो लेखनी की परिधि थी ही, अनेक उपन्यासों तथा कविताओं का अनुवाद भी किया। इस प्रकार निराला ने हिंदी को एक विशाल साहित्य प्रदान किया है, इसमें कोई संदेह नहीं। इस विशाल साहित्य में जो कविताएँ उपलब्ध होती हैं, वे परिमाण में शतांश हैं, ऐसा विद्वानों का मत है।[2] पर इस शतांश-रूप काव्य-कृति पर ही निराला की संपूर्ण कीर्ति आधृत है। वे हिंदी-गगन में मुख्यत: छायावादी कवि के रूप में ही प्रोद्भासित हो रहे हैं। निराला की १३ काव्य-कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। वे निम्नलिखित है—

(१) परिमल (१९३०ई०) (२) गीतिका (१९३६) (३) अनामिका (१९३८) (४) तुलसीदास (१९३८) (५) कुकुरमुत्ता (१९४२) (६) अणिमा (१९४३) (७) वेला (१९४६) (८) नये पत्ते (१९४६) (९) अर्चना (१९५०) (१०) आराधना (१९५३-संवत् २०१०) (११) गीतगुंज (१९५४) (१२) सांध्यकाकली (१९६९) और (१३) अपरा।

इन ग्रन्थों में 'अपरा' संग्रह-ग्रन्थ है। अत: उसके छंदोनिर्धारण की कोई बात ही नहीं उठती। शेष ग्रन्थों में 'कुकुरमुत्ता' की केवल इसी नाम की एक कविता तथा 'सांध्यकाकली' के २६ से ६५ गीतों की चर्चा ही वांछनीय है; क्योंकि 'कुकुरमुत्ता' की बाकी सभी कविताएँ 'नये पत्ते' में आ गई है और 'सांध्यकाकली' के प्रारंभिक २५ गीत अन्य पुस्तकों में भी प्राप्त होते है।

दिनकर ने लिखा है—'वदनाम तो निराला जी इसीलिए हुए कि उन्होंने छंदों का वंधन तोड़ कर उसका निरादर किया; लेकिन किसी ने अव तक भी यह नहीं वताया कि नए भावों की अभिव्यक्ति के लिए छंदों का अनुसंधान

---

१. द्रष्टव्य : गीतगुंज, पृ० ११२

२. ,, निराला की साहित्य-साधना : रामविलास शर्मा, पृ० ४७

करते हुए उन्होंने कितने पुराने छंदों का उद्धार तथा कितने नवीन छंदों की सृष्टि की है।'[1] हिंदी साहित्य के इसी अभाव को दूर करने के उद्देश्य से प्रस्तुत निबंध में निराला के समग्र काव्य का छंदोनिरूपण कर यह देखने का प्रयास किया गया है कि उन्होंने कितने प्रकार के छंदों में अपने काव्य-साहित्य को निबद्ध किया है ? उनके समस्त काव्य में पाये जाने वाले छंद १०७ हैं, जो निम्नलिखित है—

मात्रिक सम छंद

युग, बाण, अलिपद, धारी, सुगति, अखंड, मुक्ति, तिलकामात्रिक, मधुभार, छवि, निधि, शृंगाराभास, गंग, दीप, ज्योति, नयन, विमोहामात्रिक, शशिवदना, शिव, अहीर, शिखंडी, तोमर, मालिका, महानुभाव, तांडव, दिग, लीला, पदपादांक, पदपादांकुर, शृंगार-कल्प, चंग, उल्लाला, लक्ष्मीमात्रिक, मधुमालती, विजात, हाकलि, सखी, कज्जल, मनोरम, कोकिला, सुलक्षण, गोपी, चौपई, चौबोला, लीलाधर, उज्ज्वलामात्रिक, शृंगार, पद्धरि, पदपादाकुलक, चौपाई, वसंतमालती, लघिमा, राम, उर्मिला, अणिमा, माली, तारकमात्रिक, लीलावृत्त, पीयूषवर्षी, तमाल, विध्वंकमाला मात्रिक, सुमेरु, रतिवल्लभ, हंसगति, मंजुतिलका, अरुण, योग, भुजंगप्रयातमात्रिक, पीयूषराशि, प्रणय, पीयूपनिर्झर, कंदमात्रिक. मधुवल्लरी, प्लवंगम-चांद्रायण, साधिक राधिका, रास, सुखदा, कुंडल, रजनी, निश्चल, हीर, रोला, मंजुतिलकावली, रूपमाला, दिगपाल, शक्तिपूजा, चंचलामात्रिक, सारस, विष्णुपद, गीतिका, दिगंबरी, सरसी, सार, विधाता, हरिगीतिका, माधवमालती, विशुद्धगा, हरिगीतामृत, चतुष्पद, ताटंक, वीर, समान सवैया, मत्तसवैया = १०४

मात्रिक मिश्र छंद

छप्पय = १

वर्णिक मुक्तक

अर्चना, मदनहरघनाक्षरी = २

आगे प्रत्येक छंद का विवेचन उदाहरण-सहित प्रस्तुत किया जाता है।

(१) युग (४ मा०)

हिल हिल,
खिल खिल,

—परिमल : बादल राग (६)

---

१. मिट्टी की ओर, पृ० ११३

चार मात्रापादी किसी छंद का उल्लेख भानु ने नहीं किया है। भिखारीदास ने जिन छंदों का (कामा, रमणी, नरिंद, मंदर तथा हरि) उल्लेख मात्रिक कह कर किया है,[1] वे सब-के-सब वर्णिक हैं। डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने चार मात्रापादी छंद का उल्लेख तो किया है, पर कोई नाम नहीं दिया। लक्षण में उन्होंने बताया है कि किसी भी चतुष्क (।।ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ।।।।) की आवृत्ति की जा सकती है और अलग-अलग चरणों में चतुष्क भिन्न प्रस्तार में भी आ सकते हैं।[2] निराला के संपूर्ण साहित्य में चार मात्रापादी छंद की उक्त दो पंक्तियाँ मिलती हैं, जिनमें चार-चार लघु आए हैं। दूसरे चतुष्क को छोड़ कर प्रायः सब में किंचित् लय-साम्य है। अतः शेष चतुष्कों का नाम युग रक्खा जा सकता है।

(२) वाण (५ मा०)

(क) साथ दो/बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए। (वाण + हंसगति)

—परिमल : भिक्षुक

(ख) मेघमय/आसमान से उतर रही है। (वाण + चौपाई)

—परिमल : संध्यासुन्दरी

पंचमात्रापादी कोई छंद भानु में नहीं मिलता। भिखारीदास के पंचमात्रिक सभी छंद (शशि, प्रिया, तरणिजा, पंचाल, वीर, बुद्धि, निशि तथा यमक) वर्णिक हैं।[3] डॉ० शुक्ल ने ऐसे छंद को कोई नाम नहीं दिया। भिखारी दास-द्वारा उल्लिखित छन्दों में पंचाल (ऽऽ।) और वीर (।।ऽ।) के अतिरिक्त प्रायः सब में किंचित् लय-साम्य है। अतः उन दोनों को छोड़ कर, सुविधा के लिए सब का नाम वाण रक्खा जा सकता है।

निराला-साहित्य में स्वतंत्र रूप से किसी पंचमात्रापादी छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल उक्त पंक्तियों में एक-एक पंचमात्रापादी रगणात्मक लय-खंड (साथ दो ; मेघमय) क्रमशः हंसगति और चौपाई के आदि में जोड़ दिया गया है।

(३) अलिपद (६ मा०)

क्षण भंगुर

---

१. भिखारीदास ग्रंथावली (छंदार्णव) सं० विश्वनाथ प्र० मिश्र, ५।१४-१८

२. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ. २४२

३. भिखारीदास ग्रंथावली (छंदार्णव), ५।२०-२७

अविचल उर

—परिमल : प्रार्थना ।

षड्मात्रापादी छन्द का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है, पर कोई नाम नहीं दिया । उनके अनुसार इस वर्ग के चरण दो त्रिकलों अथवा चौकल और द्विकल के योग से बनते हैं । उदाहरण में उन्होंने पंत का निम्नांकित पद्य रक्खा है—

चिर पावन,
सृजन चरण,
अर्पित तन,
मन-जीवन ।[1]

भिखारी दास के सभी षड्मात्रापादी छन्द (१२ छन्द) वर्णिक हैं । अतः उनके अनुसार उक्त पद के प्रथम-चतुर्थ चरण नायक के, द्वितीय मदनक के तथा तृतीय विष्णु के हैं ।[2] मात्रिक रूप में इन सभी समान लय पर चलने वाली पंक्तियों में अलिपद छन्द माना जा सकता है । निराला-काव्य में इस छन्द का स्वतंत्र नहीं, अन्य छन्दों के साथ (जैसे उपर्युद्धृत पद्य में) तथा स्वच्छन्द छन्द में प्रयोग हुआ है । यथा—

(क) वह आता······परिमल : भिक्षुक
(ख) बहने दो ······ ,, धारा
(ग) चल रे चल······ ,, बादल राग (१)
(घ) तुम आए ······ ,, ,, (३) अणिमा, २३

(४) धारी (६ मा०)

प्रिया साथ ।

—बेला : गीत ६७

धारी (र ल) का उल्लेख प्रा० पैं० (२/२६) में हुआ है । जयकीर्त्ति इसी को वर्त्म कहते हैं (२/२६) डॉ० शुक्ल ने षड्मात्रापादी के अंतर्गत शुद्ध प्रत्नमूलक (गुरु लघुमूलक) का निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया है—

प्रेम-राग । भाव-याग ।
आत्म-दान । मुक्ति मान ।[3]

पर इसे भी कोई नाम नहीं दिया । भिखारीदास के यहाँ ऐसा छन्द धारी नाम से उल्लिखित है ।[4]

---

१. + ३. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ. २४३
२. + ४. छंदार्णव : ५।३८, ४१, ४२; ५।२६

निराला काव्य में ऐसी एक ही पंक्ति मिलती है, जिसमें दो त्रिकल तो हैं, पर र ल की जगह य ल है। य ल से निर्मित होने वाले छन्द को जयकीर्त्ति ने सदम् (२/२५) और भानु ने उषा (छं० प्र०, पृ० ११८) कहा है।

मेरा विचार है कि दो त्रिकलों से बने अंत्य गुरु-लघु (ऽ।) वाले इन दोनों छन्दों को गणबंधन से मुक्त मान कर मात्रिक रूप में एक छन्द मान लेना चाहिये।

(५) सुगति (७ मा०)

(क) वज्र बादल।—परिमल : स्वागत, पृ० ६२
(ख) सफल करके।— ,, बादल-राग (३) पृ० १५३
(ग) मै अकेला।—अणिमा, पद्य ११
(घ) तरु के सुमन।—परिमल : बादल-राग (३) पृ० १५३
(ङ) सदा अशांति।— ,, दीन, पृ० १२०
(च) केवल शेष।— ,, कण, पृ० १४६
(छ) ऐ निर्बंध।— ,, बादल राग (२) पृ० १५१
(ज) मौन कुटीर।— ,, ,, (३) पृ० १५४

निराला-काव्य में सुगति का प्रयोग स्वच्छन्द छन्द के अन्तर्गत और भी कई स्थलों (परिमल : पृ० १५१, १५७, १६१) पर हुआ है। अणिमा के पद्य ११ की टेक भी सुगति में निबद्ध है।

(६) अखंड (८ मा०)

नील जलधि-जल,
नील गगन-तल,
नील कमल-दल,
नील नयन द्वय।

—अर्चना, ७६

अखंड का उल्लेख डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार इसमें समात्मक दो चौकलों का प्रयोग होता है। साथ ही पंचक और त्रिकल का योग भी मान्य है।[1] वस्तुतः यह चौपाई का अर्द्धांश है। अखंड का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त गीत में हुआ है। जिसके तीन (प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ)

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २४४

अनुच्छेद तो अखंड में निबद्ध हैं, और तृतीय में मुक्ति का प्रयोग हुआ है। टेक अखंड की पंक्ति है। अणिमा के गीत ३ के निर्माण में अखंड की एक-एक अर्द्धाली के बाद एक-एक चरण चौपाई का रक्खा गया है तथा टेक चौपाई की है। इसके अतिरिक्त अखंड का प्रयोग परिमल (प्रार्थना, पृ० १४८, १६१), आराधना (गीत ७५, ६० की टेक में) तथा अर्चना (१३-टेक में) में भी हुआ है।

(७) मुक्ति (८ मा०)

नील मोर के,
नील नृत्य रे, } मुक्ति
नील कृत्य से,
नील शवाशय। —अर्चना, ७६

मुक्ति का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। इसमें दो त्रिकलों और गुरु का योग रहता है।[1] वस्तुतः यह भी रगणांत चौपाई का उत्तरांश है। इसका प्रयोग उक्त गीत के अतिरिक्त अर्चना के गीत ७२ की टेक में भी हुआ है।

(८) मधुभार (८ मा०)

निश्चल समीर।—परिमल; विधवा, पृ० १०१
वीक्षण अराल।—अनामिका : सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति, पृ० १८
वैभव विशाल।— ,, ,, ... पृ० १६

मधुभार में ८ मात्राएँ होती हैं और अंत में ऽ। रहता है। यह वस्तुतः पद्धरि का उत्तरांश है। इसका स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं हुआ। इसके चरण स्वच्छन्द छन्द में ही मिलते हैं।

(६) तिलका मात्रिक (८ मा०)

(क) विच्छुरित छटा।—अनामिका : सम्राट् एडवर्ड अष्टम, पृ० १६
(ख) तू ठहर ठहर।—परिमल : शरत् पूर्णिमा की विदाई, पृ० ११२

यह तिलका या डिल्ला (स स) का मात्रिक रूप है। अतः इसके अन्त में ऽ होना आवश्यक है। पर कवि-प्रयोग में गुरु की जगह दो लघु भी मिलते हैं। यथा 'ख' में। इसके चरण भी स्वच्छन्द छन्द में ही मिलते हैं।

---

१. आ० हि० का० में छन्दयोजना, पृ० २४४

(१०) छवि (८ मा०)

आह ! उत्पात ।—परिमल : दीन, पृ० ११८
दिवस का पार ।— ,, आग्रह, पृ० १४८
सिंधु के अश्रु ।— ,, बादल-राग (३) पृ० १५३
कभी दुख दाह ।— ,, ,, (५) पृ० १५८
जलधि में तरी ।—बेला, गीत ३०
कहो, तुम कहो ।—गीतिका, २१
सजल कण उड़े ।—अनामिका, मित्र के प्रति, पृ० ११

इस अष्टमात्रापादी छन्द का निर्माण एक त्रिकल, एक द्विकल और एक त्रिकल से होता है। अन्त में । ऽ, ऽ ।, या । । । कुछ भी रह सकता है। यह शृंगार छन्द का अर्द्धांश है। भिखारीदास ने इसको छवि नाम दिया है। 'छवि त्रिपंच जति जानिए।'[1] और उदाहरण के चरणों के अन्त में जगण (। ऽ ।) रक्खा है। भानु की छवि प्रा० पैं० का मधुभार है। उन्होंने छवि का अन्य नाम मधुभार बतलाया भी है।[2] निराला-काव्य में इसका प्रयोग कहीं स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ। इसकी पंक्तियाँ स्वच्छन्द छन्द में ही पाई जाती हैं।

(११) निधि (९ मा०)

मुकुल सुरभि - भार ।
× ×
भर कर वह प्यार ।
× ×
यह सितार तार ।
× ×
स्वर की झंकार ।

—गीतिका : गीत २३

त्रिकल-षट्कल के आधार पर चलने वाला यह नवमात्रापादी छंद स्वयंभू के ध्रुवक से पूर्ण साम्य रखता है।
यथा—

---

१. छंदार्णव, ५
२. छन्दःप्रभाकर, पृ० ४३

कारणहो मज्ज । उम्भगिम करेवि ।
सोहकिसोरठिउ । वणे पइसरेवि ।

—स्वयंभूच्छंद: उत्तरभाग ८/३-१

विद्यापति की पदावली में इसकी कतिपय पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यथा —

भमर करइ रोर। परिमल नहि ओर।

भानु ने नवमात्रिक निधि का उल्लेख किया है, जिसके अंत में लघु का रहना आवश्यक बतलाया है। जैसे—

निधि लहौ अपार। भजि राम उदार।
नर जनम सुधार। प्रभु पद हिय धार।

—छंद: प्रभाकर: पृ० ४४

इसके चतुर्थ चरण में षट्क आधार स्पष्ट है। प्रथम तीन चरण पंचक और चौकल के मेल से बने हैं। पर इनमें त्रिकल आधार भी देखा जा सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि स्वयंभू का ध्रुवक ही भानु के यहाँ निधि बन गया है। निराला ने ऐसे छंद के अंत में सर्वत्र ऽ। ही रक्खा है। एकाध स्थल पर 'सोहकिसोरठिउ' के अनुसार ।ऽ और ।।। भी देखा जाता है। इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से कही नहीं हुआ है। अन्य छंदों के साथ इसकी पंक्तियाँ निम्न पुस्तकों में प्राप्त होती हैं—

परिमल—शेष (सुमन भर न लिए, हर्ष हरण हृदय) बहू
(उसकी साधना)
गीतिका—६१ (फूटा आलोक, बाँधो यह ज्ञान)
बेला—३० (पवन मंद-मंद) ३१ (खोल दिया हृदय, चलती है हवा)
अनामिका—मित्र के प्रति (रहा विवश प्यार, गाती मल्लार)
अणिमा—५ (परसे ज्यों प्राण, उठी है तरंग)
आराधना—६ (बैठे हैं कई)

इसी निधि के आदि में दो मात्राओं के योग से गीतिका के उक्त गीत का छंदक (टेक) निर्मित हुआ है। यथा—

तुम छोड़ गये द्वार।

(१२) शृंगाराभास (६ मा०)

द्वार यह खोलो—। } परिमल: अंजलि, पृ० ११५
जरा कुछ बोलो—.

विश्व यह सारा
काँपते थर - थर } परिमल : धारा, पृ० १२२

निराला-साहित्य में शृंगाराभास का प्रयोग स्वच्छंद छंद में अथवा अन्य छंदों के साथ उपलब्ध होता है। उक्त स्थलों के अतिरिक्त इसका प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

परिमल—शेष (याद थी आई, एक दिन होगा, जब न मैं हूँगा)

" —वह (कांति सुषमा है)

गीतिका—गीत २ (यामिनी जागी)

वेला—गीत ३ (गुनगुनाए जा, धुन सुनाए जा, अचल पाखें है)

शृंगाराभास और चौपई के एक-एक चरण को इकाई मान कर बनाए गए २४ मात्राओं का चरण भी स्वच्छंद छंद में मिलता है। यथा—

समझ जाते हो / उस जड़ का सारा अज्ञान।

—परिमल : प्रपात के प्रति, पृ० १४२

(१३) गंग (९ मा०)

जो प्राण, हारे।
× ×
छूटे सहारे।
× ×
मन रहे मारे।
× ×
तट के किनारे।

—वेला : गीत ९४

गंग छंद का उल्लेख भानु ने किया है। उनके अनुसार इस छंद के अंत में ऽ ऽ रहता है।[1] डॉ० शुक्ल ने जयकीर्त्ति-द्वारा उल्लिखित महेंद्रवज्रा (स य स य) से इसका पूर्ण लय-साम्य माना है। इस युग में इसका प्रयोग नहीं पाकर उन्होंने इसका स्वरचित उदाहरण दिया है, और इसका उपयुक्त नाम इंद्राणी बतलाया है।[2] इसका लय-साम्य महेंद्रवज्रा के अर्द्धांश (स य) से अवश्य है, पर यह प्रा० पैं० में उल्लिखित हारी (त ग ग)[3] का मात्रिक रूप माना जा

१. छंदः प्रभाकर, पृ० ४३

२. आ० हिं० का० में छंदयोजना, पृ० २४५

३. प्रा० पैं० २/३५

सकता है। मधुमालती (१४ मा०) की अंतिम पाँच मात्राओं को हटा कर इसका निर्माण कर लिया गया है (जो प्राण हारे हैं अभी; तट के किनारे यह तरी) उक्त गीत के अतिरिक्त वेला के गीत ७ में भी इसकी पंक्ति पाई जाती है (लाले पड़े हैं)।

(१४) दीप (१० मा०)

अरि- दल- दलन- कारि ,
शंकर , समनुसारि ,
पद - युगल – तट - वारि ,
सरिता , सकल याम ।

—अर्चना, गीत १००

पंचक के आधार पर चलने वाले दीप छंद में १० मात्राएँ होती है। अंत में ऽ। रहता है। वस्तुतः इसके चरण का निर्माण दो तगण (ऽऽ।) के आधार पर होता है। प्रा० पैं० के लक्षणोदाहरण पद्यों से इसकी स्पष्टतः पुष्टि होती है। दीप मंथान (त त) अन्य नाम कामावतार का मात्रिक रूप है, जिसका उल्लेख प्रा० पैं० (२/५०) में हुआ है। अतिरिक्त प्रयोग स्थल——

गीतिका : गीत ५३ , ६३, ७० (टेक)
वेला—गीत ९४ (अहरह तुम्हारे न)
आराधना—गीत ७ (टेक) ४८ (ऋषि-मुनि-मनोहंस आदि) ८६

(१५) ज्योति (१० मा०)

बैठ लें कुछ देर ।
मौन मधु हो जाय।
सरल अति स्वच्छंद।

—परिमल : मौन

ज्योति का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार इसके चरण का निर्माण तगण के आधार पर होता है।[1] दीप का रगण आधार मान कर उन्होंने गलती तो की है, पर तगण के आधार पर दीप के निर्माण की संभावना भी प्रकट की है। यदि दीप का निर्माण तगण के आधार पर भी संभव है (संभव नहीं, दीप तगण के आधार पर ही चलता है) तो फिर दीप और ज्योति एक छंद हो जाते हैं। अतः ज्योति को दीप से भिन्न मानने के लिए इसका लक्षण यह होना चाहिए कि इसमें दो पंचक होते हैं, पर ये दोनों पंचक रगण, यगण

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २४५

अथवा तगण पर आधृत नहीं रहते। क्योंकि ऐसी दशा में छंद क्रमशः विमोहा, सोमराजी और मंथान के मात्रिक रूप हो जायगा। अतः भिन्न-भिन्न दो पंचकों का आधार तो इसके लिए अपेक्षित है। पर अंतिम पंचक को तगण होना चाहिए। प्रयोग-स्थल—

गीतिका – ४७ (स्नेह ओत-प्रोत) ५३
(शेष-जीवन-मात्र दुरित से दो त्राण) ५६ (रहा तेरा ध्यान)
अणिमा – गीत २६ (टेक – मत्त है जो प्राण)
अनामिका – मरण दृश्य (विश्व सीमाहीन, सकल साभिप्राय)

(१६) नयन (१० मा०)

अधूरी कथाओं
करारी व्यथाओं

—आराधना : गीत ७

नयन सोमराजी वर्णवृत्त (दो यगण) का मात्रिक रूप है। इसका उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है।[१] निराला के काव्य में इसका प्रयोग उक्त गीत के अतिरिक्त गीतिका के ६६ वे गीत की टेक में (रही आज मन में) तथा वेला के गीत ३१ वें में (रहेगा स्वर सुधर) हुआ है। इन पंक्तियों मे एक गुरु की जगह दो लघु (मन, रसु, धर) प्रयुक्त हुए हैं। आराधना की दोनों पंक्तियों में गण-व्यवस्था बिलकुल ठीक है।

(१७) विमोहा मात्रिक (१० मा०)

पार संसार के,
विश्व के हार के,
दुरित संभार के,
नाश के क्षार के।

—अर्चना : गीत २६

निराला ने विमोहा का मात्रिक प्रयोग कई पुस्तकों में किया है। जैसे—
गीतिका—गीत ६, १८, ५३, ६३, ७०
वेला—गीत ३०, ३१
अर्चना—गीत २६
आराधना—गीत ४६, ६४, ७०, ७८, ७६, ८६

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २४६

दीप, विमोहा और ज्योति का प्रयोग निराला ने अनेक स्थलों पर किया है। पर इनमें किसी का स्वतंत्र प्रयोग शायद ही कहीं किसी पद्य में मिले। प्रायः इन तीनों का मिश्रित प्रयोग ही दृष्टिगोचर होता है।

(१८) शशिवदना (१० मा०)

अपनापन भूला,
प्राण-शयन झूला,
बैठी तुम, चितवन से संचर (चौपाई)
छाये घन अंबर।

—अनामिका : वारिद-वेदना।

शशिवदना का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। केवल उक्त गीत में इसके तीन तथा चौपाई के एक चरण का मिश्रण हुआ है। अन्यत्र यह प्रायः छंदक में प्रयुक्त हुई है। स्वच्छंद छंद में भी इसकी छिटपुट पंक्तियाँ मिल जाती हैं। प्रयोग स्थल—

परिमल खंड (१)—प्रभाती, गीत (पृ० १७) युक्ति, गीत (पृ० ७७)
" " (२)—दीन (अंत विराम मरण, पृ० ११६) बादल राग (३) आज भेंट होगी, (पृ० १५४) बादल-राग (५)—बने नयन अंजन, पृ० १५८
गीतिका—गीत ४ (टेक—छाया एक पड़ी) ५, १०, १५, १६, १७, २८, २६, ३६, ६७, ६६ आदि
बेला—गीत ३०, ३१, ६७, ६२
अणिमा—५, ६
आराधना—गीत ६६, ७५
सांध्यकाकली—गीत २६, ५१
अनामिका—वारिद-वंदना
अर्चना—गीत ६०

स्वच्छंद छंद में शशिवदना और तमाल के योग से निर्मित चरण भी उपलब्ध होते है। यथा—

वह कविता ही थी/और आज था उसका बस-शृंगार।

—परिमल : कविता, पृ० १०५

(१६) शिव (११ मा०)

देख पड़ा है जहाँ,

सभी झूठ है वहाँ
भूख-प्यास सत्य, होंठ सूख रहे हैं अरे। (हीर)
—अर्चना, गीत १२

अपना जपना रहा,
सत्य कल्पना रहा,
यौवन सपना रहा,
ज्ञान वही धो गया
—आराधना : गीत ६५

डॉ० शुक्ल ने एकादशमात्रापादी एक छंद प्रात का उल्लेख किया है, जिसका निर्माण षट्क और पंचक के संयोग से होता है। षट्क त्रिकलात्मक न होकर समात्मक (४+२ या २+४ मात्राएँ) होता है और पंचक रगण के प्रस्तार से वनता है।[1] इस दृष्टि से उपर्युद्धृत आराधना की पहली और तीसरी पंक्तियाँ शिव की नहीं प्रात की कही जायँगी। पर त्रिकल के आधार पर चलने वाले लीला, योग, कुंडल, हीर आदि सभी छंदों में समात्मक षट्क की योजना भी मान्य है। अत: शिव में भी त्रिकल के साथ षट्क का प्रयोग मान्य होना चाहिए और षट्क के आधार पर चलने वाले छंद को भी शिव में अंतर्भुक्त कर लेना चाहिए। प्रात जैसा एक नया नाम देकर छंदों की संख्या में व्यर्थ वृद्धि करना वांछनीय नहीं प्रतीत होता।

निराला ने आराधना के उक्त गीत में शिव का स्वतंत्र और अर्चना के उक्त गीत में हीर के साथ मिश्र प्रयोग किया है। इन दोनों गीतों के अतिरिक्त निम्न पुस्तकों में शिव की कतिपय पंक्तियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं—

परिमल—खंड १—वदला—आशा की फाँस में। प्रणय, साँस साँस में। पृ० ४६

,, खंड २—दलित कुसुम क्यों कहो (पृ० १२६) यह तेरी रण-तरी (पृ० १६०)

,, मुक्त शिशु पुन: पुन:/एक ही राग अनुराग (शिव+शृंगार-कल्प)—बादल राग (४)

गीतिका—गीत २१ (होते यदि तुम नहीं)

वेला—गीत ३० (आए हो आस के) ३१ (आँखों में आ गए)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २४६

अणिमा—पद्य ६ (देश का समाज का)

अनामिका—प्राप्ति (कितने चुंबन दिए, नैसर्गिकता लिए)

आराधना—गीत ६६ (उभय रूप सँभाले)

'नए पत्ते' के 'खून की होली जो खेली' में १४ मात्रावाली दो पंक्तियाँ ऐसी हैं, जिनका निर्माण शिव के आदि में ३ मात्राओं के योग से हुआ है। यथा—

किरण उतरी है प्रात की ।
आम लीची की मंजरी ।

(२०) अहीर (११ मा०)

टूट गई पतवार
जीवन खेवनहार
× ×
पारावार अपार
जीवन खेवनहार ।—परिमल : खेवा

अहीर का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं मिलता। स्वच्छंद छंद में तथा टेक में इसकी पंक्तियाँ देखी जाती हैं। जैसे—

परिमल, खंड २—पृ० ११५ (वंद तुम्हारा द्वार) पृ० ११६ (मेरा नाम निशान) पृ० १२७ (अमल कमल मुख देख)

गीतिका—गीत ८, ३३, ४४, ८६ (टेक में)

अर्चना—गीत ४६, ११०

गीतगुंज—पृ० ६८

(२१) शिखंडी (११ मा०)

सामने बैठे हो ।—बेला, गीत ३०
लक्ष्य पर आँखें हैं ।—बेला, गीत ३१
रात्रि की सुप्ति, पतन ।—परिमल : दीन, पृ० ११६
तालियों की सरनी ।—आराधना : गीत ६६

एक पंचक और एक छकल या दो त्रिकलों के योग से इस छंद का निर्माण होता है। सूरदास ने दो छंदकों में (कन्हैया हेरी दै; चितै, चलि, ठिठुकि रहत)[1] इसका प्रयोग किया है। इसी से लय-साम्य रखने वाला एक वर्णवृत्त शिखंडिनी (य म) है, जिसका उल्लेख हेमचंद्र ने किया है।[2] शिखंडी उसी

१. द्रष्टव्य : सूरसागर ना० प्र० सभा (काशी) पद १०६८, ३२०३

२. य्मौ शिखंडिनी : छंदोऽनुशासन २/५१

शिखंडिनी का मात्रिक रूप है। यों इसका निर्माण शृंगार की अंतिम पाँच मात्राओं को हटा देने से हो जाता है। इसका प्रयोग निराला-काव्य में स्वच्छंद छंद के अंतर्गत कहीं-कहीं हो गया है।

(२२) तोमर (१२ मा०)

तम-गहन-जीवन घरे।
जल-विंदु-सा बह जाय।
रह जाय चुप निर्द्वंद्व।

—परिमल : मौन

तुम ही हुए रखवाल।

—अर्चना : गीत ४६

आई सुवेश वहार।

—नए पत्ते : खून की होली।

निराला के संपूर्ण साहित्य में तोमर की केवल उक्त पाँच पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। 'परिमल' में कई छंदों के सहयोग से बने अनुच्छेद में, तथा 'अर्चना' और 'नए पत्ते' में स्वच्छंद छंद के अंतर्गत।

(२३) मालिका (१२ मा०)

कह रहा हूँ जो कथा,
वज रही उसकी व्यथा
× ×
वनो वासंती मृदुल
पत्रिका तरु की अतुल।

—गीतिका : गीत ६२

चंदवरदाई-द्वारा प्रयुक्त इस छंद का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने मालिका नाम से किया है। उनके अनुसार इसका निर्माण सप्तक (ऽ । ऽ ऽ) के आधार पर होता है।[१] यह वस्तुतः गीतिका-हरिगीतिका का उत्तरांश है। उक्त गीत में इसका प्रयोग गीतिका के साथ हुआ है। 'अनामिका' के 'आवेदन' में भी यह गीतिका, ज्योति और रूपमाला के साथ प्रयुक्त हुई है। इन दोनों कविताओं के अतिरिक्त इसकी छिटपुट पंक्तियाँ निम्न स्थलों पर पाई जाती हैं—

परिमल, खंड (१) निवेदन (दाग जव मिट जायगा; हम अगर वहते मिलें)

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २५०

परिमल, खंड (२) संध्या सुंदरी (अलसता की-सी लता, पृ० १०६) (और
क्या है ? कुछ नहीं, पृ० ११०)

अणिमा—५ (तान सुरसरिता बही, चला तुम से मिलन को)

अनामिका—तोड़ती पत्थर (गई चिनगी आ गई; देख कर कोई नहीं)

(२४) महानुभाव (१२ मा०)

जलद-पयोधर-भारा,
रवि-शशि-तारक-हारा,
व्योम-मुख-छवि सारा
गत धारा पय-हीना।

—अर्चना : गीत ६१

महानुभाव का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त गीत में हुआ है। इसके अतिरिक्त सर्वत्र इसकी पंक्तियाँ अन्य छंदों के साथ छंदों के साथ पाई जाती हैं। यथा—

परिमल (१) प्रिया के प्रति (समान सवैया, चौपाई, वीर, सखी, हंसगति तथा तमाल के साथ)

,, —प्रभाती (पद्धरि-पदपादाकुलक के साथ) तृप्ति (रास, हंसगति के साथ)

,, (२) पृ० ६२, ६३, ११२, ११६, १२१

बेला—गीत ३० (छाए हो ऐ किसलय)

अणिमा—पद्य ५ (दर्शन से जीवन पर)

अर्चना – गीत ४३ (हाकलि के साथ)

आराधना—गीत ६६ (युवती के कर-वीणा आदि) ७५ (अखंड, शशिवदना, हंसगति के साथ) ८० (हाकलि, चौपाई, लीला, योग के साथ) ९० (अखंड के साथ)
९४ (अणिमा, चौपाई, गोपी, हाकलि के साथ)

सांध्यकाकली—गीत २८ (शृंगार-कल्प, चौपाई के साथ)

अनामिका—प्रिया से (सार, चौपाई, ताटंक, सरसी के साथ) भ्रांति
भूले श्रम-सीकर वे)

स्वच्छंद छंद में महानुभाव और चौपाई, महानुभाव और अहीर तथा महानुभाव और चौपई के योग से बनी हुई क्रमश २८, २३ तथा २७ मात्रा वाली पंक्तियाँ भी मिलती हैं। यथा—

(क) थपकी एक मार कर|बड़े प्यार से इठलाते थे। (१२ + १६)

—परिमल पृ० १०५

(ख) राह प्रीति की अपनी/वही कंटकाकीर्ण। (१२+११)
—परिमल, पृ० ११६

(ग) मूर्च्छित हुआ पड़ा है/जहाँ वेदना का संसार। (१२+१५)
—परिमल, पृ० १४८

(२५) तांडव (१२ मा०)

भला इस गति का शेष। —परिमल : अधिवास, पृ० ९८
स्वार्थ ही से भरपूर।— ,, दीन, पृ० ११९
एक अव्यक्त प्रभाव।— ,, स्वप्न स्मृति, पृ० १३२
जहाँ केवल श्रम घोर।— ,, विस्मृत भोर पृ० १४०
सुरभि का कारागार।— ,, बादल-राग (३) पृ० १५३
वहा जीवन निस्संग।— ,, अणिमा : ५

तांडव छंद का उल्लेख भानु ने किया है। उन्होंने इसके लक्षण में १२ मात्राएँ बताकर आदि और अंत में लघु रखने का विधान किया है।[1] यह वस्तुतः शृंगार की अंतिम चार मात्राओं को हटा देने से बन जाता है। इसके आदि में त्रिकल (। ऽ, ऽ।, । । ।) और अंत में ऽ। रहते हैं।

निराला-काव्य में इसकी पंक्तियाँ केवल स्वच्छंद छंद में पायी जाती है। 'नये पत्ते' के 'खून की होली जो खेली' तथा 'अर्चना' के गीत ३२ जैसे स्वच्छंद छंद में एक-एक जगह तांडव के आदि में दो मात्राओं के योग से एक-एक चरण बनाया गया है। यथा—

(क) खुल गई गीतों की रात—नये पत्ते।
(ख) भर गये मोती के झाग। —अर्चना

(२६) दिग (१२ मा०)

श्रम से भरा हुआ है
पढ़ कर मरा हुआ है
डूबा तरा हुआ है
मैं कौन प्राण आनूँ।

—सांध्यकाकली, गीत ५६

दिग छंद दिगपाल का आधा चरण है, जो तगण (ऽ ऽ ।) रगण (ऽ । ऽ) और गुरु के आधार पर चलता है। हरिऔध और मैथिलीशरण दोनों

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ४५।

के काव्यों में यह उपलब्ध होता है। निराला ने उक्त गीत में इसका स्वतन्त्र प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त इसकी केवल एक पंक्ति अणिमा के पद्य ६ में मिलती है। यथा—जो द्वार-द्वार फिर कर।

(२७) लीला (१२ मा०)

शाख-शाख तनी तान,
विपिन-विपिन खिले गान,
खिंचे नयन-नयन प्राण,
गंध-गंध सिची गली।

—अर्चना, गीत २८

लीला के चरण का निर्माण चार त्रिकलों से होता है। दो त्रिकलों की जगह एक षट्कल भी रक्खा जाता है। भानु ने इसके अंत में जगण (। ऽ ।) का विधान किया है। पर कवियों ने इस पर विशेष बल नहीं दिया। प्रयोग में इसके अंत में ऽ ।, । ऽ, । । । सब मिलते हैं। निराला ने स्वतन्त्र और मिश्र दोनों रूपों में इसका विशद प्रयोग किया है। स्वतन्त्र प्रयोग के स्थल—

गीतिका—गीत ७,६५,६८,७३,७६,८४
वेला—गीत ८,३२,४२,६४,६५,७०,७१,८६,६५
अणिमा—पद्य ३६
अर्चना—गीत ६,१०,१४,२५,२८,३०,४०,४१,४२,४६,५५,५६,६६,७४,
७६,८०,८१,८२,६१,६२,६४,६६
आराधना—गीत ४,५,६,१२,१३,१४,२३,३१,३३,३६,३८,४५,५४,५५;
५६,६०,६७,६६,७६,७७
गीतगुंज—पृ० ६१
अनामिका—उक्ति, पृ० ११६

इसका मिश्र प्रयोग निम्न स्थलों पर हुआ है—

गीतिका—गीत १६, ७८ (कुंडल के साथ) २३ (कई छंदों के साथ)
वेला—गीत ११, ३७, ६३ (कुंडल के साथ) ६७ (कई छंदों के साथ)
अर्चना—गीत ६४, ८७ (कुंडल के साथ) ७२ (मुक्ति के साथ)
आराधना—गीत ८० (हाकलि, चौपाई, योग, महानुभाव के साथ)
अनामिका—मित्र के प्रति (प्रणय के साथ) मुक्ति (कुंडल, योग, कोकिला, लघिमा के साथ) कविता के प्रति (प्रणय, कुंडल आदि कई छंदों के साथ) और छवि (योग के साथ)

(२८) पदपादांक (१२ मा०)

रे, कुछ न हुआ, तो क्या ?
जग धोका, तो रो क्या ?
+ +
होता क्या, फिर हो क्या ?
+ +
जो धुला, उसे धो क्या ?

—गीतिका : गीत ४६

इन द्वादशमात्रिक पंक्तियों में दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ (इस गीत की और भी कुछ पंक्तियाँ) तो सहज ही महानुभाव की कही जायँगी। पर पहली और चौथी की लय द्विकल + दो त्रिकलों से प्रारम्भ होने के कारण महानुभाव से किंचित् भिन्न हो जाती है ; यद्यपि महानुभाव की गण-व्यवस्था ४+४+४ या ६+६ पूर्ण रूप से विद्यमान है। ये दोनों पंक्तियाँ पद्धरि-पदपादाकुलक की अंतिम चार मात्राओं को हटा कर अथवा मधुभार के अंत में चार मात्राएँ जोड कर बनाई गई है। अतः लय-भिन्नता के कारण इस प्रयोग को पदपादांक के नूतन नाम से अभिहित करना पड़ा। प्रारंभिक समात्मकता के कारण दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ पदपादांक और महानुभाव दोनों की हो सकती हैं। इसी गीत में निम्नांकित दो पंक्तियाँ—

तू घटा और बढ़ा। (११ मा०)
और गया और आया। (१३ मा०)

ऐसी हैं, जिनमें 'बढ़ा' का चतुर्मात्रिक तथा 'और' का द्विमात्रिक उच्चारण कर गवैया लय की रक्षा कर लेगा। इन पंक्तियों के अतिरिक्त गीतिका ३२ की टेक भी इसी छंद में निबद्ध है। यथा —

वह रूप जगा उर में।

(२६) पदपादांकुर (१३ मा०)

(क) दिवसावसान का समय। —परिमल : संध्या सुंदरी, पृ० १०६
है गूँज रहा सब कहीं। — " " पृ० ११०
तुम नभ हो, मैं नीलिमा
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा } " तुम और मैं, पृ० ६०

(ख) मैं सरसिज की मुसकान। —परिमल : तुम और मैं, पृ० ५८
वह थी निश्छल, अविकार।— " कविता, पृ० १०६

(ग) माथे अबीर से लाल। आँखें हुईं हैं गुलाल। अर्चना: गीत ३३,

पदपादांकुर छंद में १३ मात्राएँ होती हैं, अंत में । । ।, । ऽ, ऽ । में कोई भी रह सकता है। इसका निर्माण पद्धरि-पदपादाकुलक की अंतिम तीन मात्राओं को हटा कर हुआ है। (ख) और (ग) का निर्माण अहीर (११ मा०) के आदि में दो मात्राओं के योग से भी संभव है, पर (क) का नहीं। अतः ऐसे सभी प्रयोगों को पदपादाकुलक से निःसृत होने के कारण पदपादांकुर कहना समीचीन है। सूरदास ने इसका प्रयोग पद १४४३ के फंदक में तथा अवतार छंद (१३-१०) के निर्माण में किया है।[1]

निराला के काव्य में ऐसा प्रयोग स्वच्छंद छंद में तो मिलता ही है,'तुम और मैं' कविता में भी यह उपलब्ध होता है वस्तुतः तुम और मैं, कविता पद्धरि. पदपादाकुलक, पद पादांकुर, और सखी छंदों से गठित है। यथा—

तुम योग और मैं सिद्धि, ...पदपादांकुर

तुम हो रागानुग निश्छल तप,.........पदपादाकुलक

मैं शुचिता सरल समृद्धि ......पदपादांकुर

तुम मृदु मानस के भाव और ....पद्धरि

मैं मनोरंजिनी भाषा।.........सखी

डॉ० शुक्ल ने इस कविता के अनुच्छेद को २ + सार तथा २ + सरसी के संयोग से बना बताया है।[2]

तुम/हो रागानुग निश्छल तप मैं शुचिता सरल समृद्धि (२ + सरसी)

तुम/मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा (२ + सार)

ऐसा भी संभव है, पर इसे पद्धरि-पदपादाकुलक आदि से गठित कहना इसलिए विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है कि प्रत्येक पंक्ति का अंत सिद्धि, तप, समृद्धि आदि शब्दों पर पूर्ण यति के साथ होता है।

(३०) शृंगार-कल्प (१३ मा०)

यहाँ है सदा उठाना। —परिमल : दीन, पृ० ११६

अगर हठ-वश आओगे। — ,, धारा, पृ० १२२

सिद्धि की मधुर दृष्टि का।—,, रास्ते के फूल से, पृ० १३०

---

१. सूरसागर—पद १४४३—गोवर्धन पूजहु जाइ। (टेक)

,,—पद ९४२ { ब्रज भयौ महर के पूत, जब यह बात सुनी। पदपादांकुर (१३) + शशिवदना (१०) = २३ मात्राएँ

२. आ० हिं० का० में छंदयोजना, पृ० ३५०

वसन वासंती लेगी।— गीतिका : गीत १४

रही उनकी भी जी की।— अर्चना : गीत १८

श्रृंगारकल्प की पंक्तियाँ, निराला-साहित्य में, स्वच्छंद छंद में और गीत मे यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं। श्रृंगारकल्प के अंत में अखंड और अहीर के चरण के योग से बनी पंक्तियाँ भी स्वच्छंद छंद में प्राप्त होती हैं। यथा—

(क) लक्ष्य जीवन का प्यारा/—वह ध्रुव तारा।

—परिमल : पृ० १०९

(ख) विश्व की इस वीणा के/टूटेंगे सब तार।

—परिमल : पृ० १२५

(३१) चंग (१३ मा०)

चंग चढ़ी थी हमारी,......चंग
तुम्हारी डोर न टूटी,......श्रृंगारकल्प
आँख लगी जो हमारी ......चंग
तुम्हारी कोर न छूटी।......श्रृंगारकल्प

—अर्चना : गीत २३

चंग छंद का निर्माण २ त्रिकल + १ द्विकल + १ पंचकल से हुआ है। वस्तुतः लीला के अंत में एक मात्रा के योग से यह बन जाता है। (चंग चढ़ी थी हमार—लीला) इसका प्रयोग केवल उक्त गीत में श्रृंगारकल्प के साथ हुआ है। यहाँ प्रथम-तृतीय पंक्तियाँ चंग की और द्वितीय-चतुर्थ श्रृंगारकल्प की हैं। इसी गीत में एक पंक्ति अहीर की (जीवन था वलिहार) समाविष्ट हो गई है।

(३२) उल्लाला (१३ मा०)

झोंके में तरु था झुका।

—परिमल : रास्ते के फूल से, पृ० १२८

उल्लाला की यही एक पंक्ति निराला के संपूर्ण काव्य में दृष्टिगोचर होती है। निम्नलिखित पंक्ति में उत्तरांश उल्लाला का है और पूर्वांश कज्जल का—

हँसमुख किंतु ममत्वहीन। निर्दय वालों के लिए। =१४+१३

—परिमल : सिर्फ एक उन्माद, पृ० १४४

(३३) लक्ष्मी मात्रिक (१३ मा०)

विहग-कल-कंठ उपवीत
छिप गए जंतु भयभीत

हो गए नहा कर प्रीत
खुल गया ग्रीष्म या शीत ।

—बेला, गीत १

उक्त गीत में लिखित ऐसी छह पंक्तियाँ हैं, जिनका मिश्रण अरुण (२० मा०) के साथ हुआ है। ये छह पंक्तियाँ पंचक के आधार (५+५+३) पर चलती हैं। पंचक के आधार पर चलने वाला १३ मात्राओं का एक वर्णवृत्त लक्ष्मी (र र ग ल) है, जिसका उल्लेख भानु ने किया है।[1] उक्त तीन पंक्तियों में तो लक्ष्मी का आधार स्पष्ट है। तीसरी पंक्ति र य ग ल के आधार पर और 'समीरण बहा समधीन' य य ग ल पर चलती हैं। 'रवि गा गया किरण-गीन' को तो पंचक का आधार भी प्राप्त नहीं। छंद का ऐसा अस्तव्यस्त प्रयोग निराला के स्वभाव का एक अंग था। शास्त्र में इस प्रकार का और कोई छंद नहीं। अतः तीन पंक्तियों के शुद्ध प्रयोग के आधार पर ये छहों पंक्तियाँ लक्ष्मी की मान ली गईं।

(३४) मधुमालती (१४ मा०)

प्रिय, अंत और अनंत के,
मन सरलता की बाढ़ में,
उत्थान-पतनाघात में,

—परिमल : मौन, पृ० ३

देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।

—अनामिका : तोड़ती पत्थर

सप्तक (ऽ ऽ । ऽ) के आधार पर चलने वाली मधुमालती में १४ मात्राएँ होती हैं। यह हरिगीतिका के पूर्वांश की अंतिम दो मात्राओं को हटा कर बनाई गई है। निराला के काव्य में इसकी यही पाँच पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। स्वच्छंद छंद में लिखित 'तोड़ती पत्थर' में अन्य छंदों के साथ मधुमालती की केवल उक्त पंक्तियाँ मिलती हैं। परिमल की 'भिक्षुक' कविता की निम्न पंक्ति—

अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम

मधुमालती के अंत में चार मात्राएँ (युग छंद) जोड़ कर बना ली गई है।

१. छंद : प्रभाकर, पृ० १२५

(३५) विजात (१४ मा०)

तुम्हारी छाँह है, छल है,
तुम्हारी बाल है, बल है,
दृगों में ज्योति है, शय है।
हृदय में स्पंद है, भय है।

—अर्चना : गीत १०७

विजात के चरण का निर्माण दो सप्तकों (। ऽ ऽ ऽ) से होता है। यह विधाता छंद का अर्द्धांश है। निराला-काव्य में इसका प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में प्राप्त होता है। उक्त गीत में स्वतंत्र प्रयोग हुआ है। 'सांध्यकाकली' के दो गीतों (३७,५५) में कतिपय पंक्तियाँ विधाता की हैं। अणिमा के विधाता-निवद्ध पद्य ३३ के आदि में इसकी दो पंक्तियाँ और 'परिमल' के 'निवेदन' में भी अनेक छंदों के साथ दो पंक्तियाँ (तुम्हारे प्रेम-अंचल में, परम प्रिय संग अतल जल में) मिलती हैं।

(३६) हाकलि (१४ मा०)

नयनों में हँस-हँस जाती
कौन न मर्म समझ पाती,
मौन कौन उर में गाती—
आओ हे प्राणों के धन।

—गीतिका, गीत ६४

निराला-साहित्य में हाकलि का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में मिलता है। गीतिका के तीन (५४, ६४, १०१) और सांध्यकाकली के एक गीत (४६) में इसका स्वतंत्र प्रयोग हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्न-लिखित है—

परिमल—प्रार्थना (विष्णुपद, अखंड के साथ)
पतनोन्मुख (श्रृंगार, ताटंक, सरसी के साथ)
तरंगों के प्रति (रोला, तमाल, सरसी के साथ)
गीतिका—गीत ११ (ताटंक, चौपाई के साथ) गीत २०
(ताटंक के साथ)
वेला— गीत ३५ (चौपाई, योग, अणिमा के साथ) ३९
(सखी, चौपाई के साथ) ६७ (अनेक छंदों के साथ)
अणिमा—१ (चौपाई, ताटंक) ५ (अनेक छंद) २३ (अनेक छंद)

अर्चना—४३ (महानुभाव) ४६ (अनेक छंद)

आराधना—४१,५२ (चौपाई) ८०,६४ (अनेक छंद)

गीतगुंज—पृ० ८८ (चौपाई)

अनामिका—हताश (चौपई, सरसी आदि) वे किसान की नई बहू की आँखें (रास, हंसगति, रोला)

(३७) सखी (१४ मा०)

प्रिय, नील-गगन-सागर तिर,
चिर, काट तिमिर के बंधन,
उतरो जग में, उतरो फिर
भर दो, पग-पग नव स्पंदन।

—परिमल : वासंती।

उक्त कविता के अतिरिक्त इसका स्वतंत्र प्रयोग परिमल (दो कविताएँ-उसकी स्मृति, सिर्फ एक उन्माद) गीतिका (गीत ५५,६०-पदपादांकुर की टेक, १००) अर्चना (गीत ३४,६७) तथा गीतगुंज (पृ० ५६) में हुआ है। गीतिका के गीत ५५ में ८ पंक्तियाँ है, जिनमें ५ तो ठीक हैं। तीन में शब्द-संस्थापन का क्रम बिगड़ गया है। यथा—

मार दी तुझे पिचकारी।

मिश्र प्रयोग निम्न स्थलों पर मिलता है—

गीतिका—गीत ५८ (पदपादाकुलक के साथ)

बेला—गीत ३६ (हाकलि, चौपाई)

इसके अतिरिक्त सखी के अंत में महानुभाव के चरण को जोड़ कर भी पंक्ति बनाई गई है। यथा—

जो पुष्प नहीं कहते कुछ/केवल रो जाते हैं।

—परिमल : विफल वासना : पृ० १३८

सखी छंद का छाया-युग में अत्यधिक प्रचलन रहा। प्रसाद और पंत ने इसमें विपुल परिमाण में रचना की है। निराला के काव्य में इसे अपेक्षाकृत बहुत कम स्थान मिला है।

(३८) कज्जल (१४ मा०)

नई रोशनी, नई तान।—अर्चना : गीत १८

देख रहा तू भूल—शूर।—गीतिका : प्रारंभ

मध्य देश में गुड़ाकेश।—परिमल : बादल राग (४)
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष।— ,, (६)

कज्जल में १४ मात्राएँ होती हैं।[1] पद्धरि के प्रारंभिक द्विकल को निकाल देने से इसका निर्माण हो जाता है। निराला के काव्य में कज्जल की पंक्तियाँ अत्यंत विरल हैं। उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त ऐसी पंक्तियाँ भी मिलती है, जिनमें कज्जल और मधुभार के चरणों को एक इकाई मानकर एक पंक्ति बना ली गई है। यथा—

(क) मुक्तबंध संध्या समीर/सुंदरी संग।—परिमल : कविता, पृ० १०५
(ख) किंतु नहीं चंचल प्रवाह/उद्दाम वेग।—,, वही, पृ० १३४

(३६) मनोरम (१४ मा०)

कांत है कांतार दुर्मिल,
सुघर स्वर से अनिल ऊर्मिल,
मीड़ से शत मोह धूमिल,
तार से तारक, कलाधर।

—अर्चना, गीत ७३

मनोरम का स्वतंत्र प्रयोग गीतिका (गीत ४५) अणिमा (पद्य ७) अर्चना (गीत ३, ८, २७, ६३, ७३, ८३, ८६, १०१)

आराधना (गीत १०, ५६) गीतगुंज (पृ० ७४) तथा सांध्यकाकली (गीत ६३, ६५) में हुआ है।

मिश्र प्रयोग के निम्न स्थल हैं—

गीतिका—गीत १२ (रूपमाला के साथ)
बेला— ,, ४३ (माधवमालती के साथ)
नए पत्ते—खून की होली (कुसुम किंशुक के सुहाए)
अणिमा—गीत ६, ८, ११ (माधवमालती) २४ (पीयूषवर्षी, पीयूषनिर्झर) ४१ (उर्मिला के साथ)
अर्चना—गीत १६, ७७, ७८, ८८, ६६, १०४, १०६ (माधवमालती)
आराधना—गीत ३५, ४२, ८७ (माधवमालती)
गीतगुंज—पृ० ६४, ७६ (माधवमालती)
सांध्यकाकली—गीत ३४ (माधवमालती)
अनामिका—तोड़ती पत्थर, मरण दृश्य (रजनी, ज्योति, रूपमाला)

1. छन्द:प्रभाकर पृ० ४६

प्रसाद-साहित्य में मनोरम की केवल दस पंक्तियाँ मिलती हैं। निराला और महादेवी ने इसका विपुल प्रयोग किया है।

(४०) कोकिला (१४ मा०)

तिमिर-वरण हुई इसलिए,
पलकों के द्वार दे दिए,
× ×
प्रार्थना, प्रभात जैसी,
खुलें तुम्हारे लिए वैसी।

—अर्चना : गीत १५

कोकिला का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार उन्होंने ही दो षट्कों और गुरु के योग से इस नवीन छंद का संयोजन किया है।[1] वस्तुतः यह लीला के अंत में दो मात्राओं को जोड़ कर बनाया गया है। इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं हुआ है। उक्त गीत में योग के साथ, गीतगुंज (पृ० ५६) में लीला के साथ तथा अनामिका की मुक्ति कविता में कुंडल, लीला, योग, लघिमा के साथ इसकी पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। गीतिका के गीत २३ में (गाया जो राग, सब बहा; केवल मिजराव ही रहा) बेला के गीत १२ में (अपने को सदा लचा जा, आदि) तथा नए पत्ते की 'खून की होली' (हार पड़े अमलतास के) में भी यह प्रयुक्त हुई है।

(४१) सुलक्षण (१४ मा०)

जगत के जन्मगत अधिकार
आये बंध के इस पार,
छूटा स्वच्छ कारागार।

—सांध्यकाकली, गीत ५४

उक्त गीत में विधाता और विजात के बाद सुलक्षण की उक्त तीन पंक्तियाँ मिलती हैं। यहाँ नियमानुसार 'जगत' की जगह 'जग' होना चाहिए। इन पंक्तियों के अतिरिक्त इसका प्रयोग स्वच्छंद छंद तथा टेक में भी प्राप्त होता है। यथा—

गीतिका—गीत २२ (जग का एक देखा तार—टेक)
नए पत्ते—खून की होली (कोकनद के पाये प्राण)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २५७

'कोकनद के पाये प्राण' में सप्तक (ऽ ऽ ऽ ।) के नियम का उल्लंघन स्पष्ट है।

(४२) गोपी (१५ मा०)

दिशाओं के सहस्र दश दल,
खुल गए नए-नए कोमल
मध्य तुम बैठी चिर अचपल
वह रहा प्रतिपल सौरभ-ज्ञान (शृंगार)

—गीतिका, गीत ७०

गोपी का स्वतंत्र प्रयोग निराला ने कहीं नहीं किया। यह अधिकतर शृंगार के साथ अथवा टेक में प्रयुक्त हुई है। प्रयोग स्थल—

परिमल—खोज और उपहार (अंतिम दो पंक्तियाँ) गीत,
पृ० ८० (टेक के बाद दो पंक्तियाँ) दोनों में शृंगार के साथ
गीतिका—गीत ६६, ७१, ७२, ७६, ८२, ८५ (सब में शृंगार के साथ)
अणिमा—पद्य ५ (तुम्हारे मंगल पद छू कर)
आराधना—गीत ६४ (कहाँ से कहाँ चली आई)
सांध्यकाकली—गीत ४१, ५३ (शृंगार के साथ) २६
(तुम्हारे वंदनवार बने)
अनामिका—प्याला (शृंगार के साथ)

इसके अतिरिक्त गोपी के अंत में ६ (अलिपद) ८ (अखंड) तथा १० (शशिवदना) के योग से बने क्रमशः २१, २३ और २५ मात्राओं के चरण भी स्वच्छंद छंद में मिलते हैं। यथा—

(क) धूलि में नजर गड़ाए हो/फैलाए ?

—परिमल : रास्ते के फूल से, पृ० १२६

(ख) यही मेरा, इनका उनका/सब का स्पंदन।

—परिमल : दीन, पृ० ११६

(ग) तुम्हारी अनुरागिनियों के/निष्ठुर चरणों में।

—परिमल : विफल वासना, पृ० १३७

(४३) चौपई (१५ मा०)

कँपा त्रस्त अंवर के छोर,
उठा लाज की सरल हिलोर,
× ×
स्वप्न-जटित जीवन कैशोर,

उच्छृंखलता की गह डोर।

—परिमल : प्रथम प्रभात

निराला ने चौपई का बहुत विरल प्रयोग किया है। उक्त कविता में चौपई का *मिश्रण तमाल के साथ हुआ है।* इसके *अतिरिक्त* इसकी *छिटपुट* पंक्तियाँ निम्न स्थलों पर मिलती हैं—

परिमल (१)—प्रिया के प्रति (सत्य हृदय का अपना हाल;
मौन दृष्टि सब कहती हाल)

,, (२)—पृ० ६२ (कितने ही विघ्नों का जाल) पृ० ६४
(अभी न होगा मेरा अंत)

गीतिका—गीत २१ (पत्रों में तुम हो सर्वत्र) २३ (तब से यह सूना संसार—टेक)

नए पत्ते—खून की होली (पाया है लोगों में मान)

अर्चना—गीत १३ (तीन पंक्तियाँ—कहीं बढ़े चलने का चाव आदि)

अनामिका—खुला आसमान (दिखी दिशाएँ, झलके पेड़)

(४४) चौबोला (१५ मा०)

और परार्थ वही जो रहे।—परिमल : दीन, पृ० ११६
जग के अंतस्थल से उमड़।—'' बादलराग (४) पृ० १५७
इसी तरह उर पर रख मधुर।—गीतिका : गीत २१
गूँजी अलियों की अवलियाँ।—अर्चना : गीत ७०

चौबोले की ये ही कतिपय पंक्तियाँ निराला-काव्य में मिलती हैं। चौबोले के अंत में। ऽ रखने का विधान भानु ने किया है।[1] यहाँ द्वितीय-तृतीय पंक्तियों में गुरु की जगह दो लघु रखने की स्वच्छंदता है।

(४५) लीलाधर (१५ मा०)

गए सब पराग, नहीं ज्ञात,
शून्य डाल, रही अंध रात,
आयेगा फिर क्या वह प्रात।

—गीतिका : गीत २३

ज्योति में न लगती है रेणु
× ×
व्यर्थ हुआ जीवन यह भार।

—गीतिका : गीत ५१

---

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ४८

लीलाधर छंद का चरण लीला के अंत में एक त्रिकल के योग से बना है। गीतिका के गीत २३ के दूसरे अनुच्छेद में तथा ५१ में प्रणय और कुंडल के साथ इसका प्रयोग हुआ है। ऊपर की तीसरी, चौथी और पाँचवी पंक्तियाँ समात्मक (षट् कलात्मक) होने के कारण चौपई की भी हो सकती हैं। इन दोनों गीतों के अतिरिक्त परिमल की 'बदला' कविता में भी यह प्रयुक्त हुआ है। यथा—

बहता है, भौंरा मधु-मुग्ध,
कहता अति चकित चित्त क्षुब्ध।

—पृ० ४६

(४६) उज्ज्वला मात्रिक (१५ मा०)

गहरी विभावरी शीत की,
× ×
कुँकहाया, सिहरी, शीत की,
× ×
सुधि सारी बिसरी शीत की,
× ×
दुहरी उगर भरी, शीत की।

—सांध्यकाकली, गीत ४०

प्रसाद-साहित्य की तरह (बीती विभावरी जाग री) निराला मे भी टेक के रूप में उज्ज्वला मात्रिक की उक्त चार पंक्तियाँ प्राप्त होती है।

(४७) शृंगार (१६ मा०)

वृंत पर टल मल उज्ज्वल प्राण,
नवल-यौवन-कोमल नव ज्ञान,
सुरभि से मिला आशु आह्वान,
प्रथम फूटा प्रिय मेरा गान।

—परिमल : भ्रमर गीत

शृंगार का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपो मे हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

परिमल (१)—भ्रमर गीत
गीतिका—गीत २५, २७, ३०, ३१, ६१, ७५, ७७. ८०
वेला—गीत २

अर्चना—गीत १११

आराधना—गीत २७

मिश्र प्रयोग के स्थल—

परिमल— खेवा (रोला, अहीर के साथ) खोज और उपहार (गोपी के साथ) पतनोन्मुख (हाकलि, तार्टंक, सरसी)

गीतिका – गीत ६६, ७१. ७२, ७६, ८२, ८५ (सब गोपी के साथ)

बेला—गीत ३८ (चौपाई के साथ)

अर्चना—गीत ११० (चौपाई, अहीर)

गीतगुंज—पृ० ६८ (चौपाई, अहीर)

सांध्यकाकली—गीत ४१. ५३ (गोपी)

अनामिका—प्याला (गोपी)

प्रसाद की तरह निराला-काव्य में भी लयात्मक अन्त वाला शृंगार पाया जाता है। यथा—

परिमल (२)—कौन उसको धीरज दे सके।—पृ० १०१
मोतियों की मानो है लड़ी।—पृ० १३४

बेला—गीत २ (कभी धँसने भी दोगे मुझे) आदि

स्वच्छन्द छन्द में शृंगार के अन्त में छवि और शृंगाराभास के एक-एक चरण को जोड़ कर क्रमशः २४ और २५ मात्राओं के चरण भी बनाए गए हैं। यथा—

नहीं होता कोई अनुराग/राग-आलाप।
—परिमल : संध्यासुन्दरी, पृ० ११०

जा रही मैं मिलने के लिए/पार कर सीमा।
—परिमल : धारा, पृ० १२३

इसी प्रकार शृंगार के अन्त में चार मात्राओं के योग से निम्नांकित पंक्ति का

सव्य साची-से तुम अध्ययन/अधीर।
—परिमल : बादल-राग (३) पृ० १५४

निर्माण माना जा सकता है।

(४८) पद्धरि (१६ मा०)

करता रह-रह वह विफल प्राण
उठता जग जो वह जन्म गान
जीवन का, खो खो दिशा-ज्ञान

जाने वह जाता कहाँ मुखर। (पदपादाकुलक)

—गीतिका : गीत ८८

पद्धरि का स्वतंत्र प्रयोग निराला ने कहीं नहीं किया। प्रायः पदपादाकुलक के साथ यह अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। यथा—

परिमल (१)—प्रभाती (महानुभाव, पदपादाकुलक, शशिवदना के साथ)
तुम और मैं (पदपादाकुलक, सखी, पदपादांकुर)

गीतिका—गीत ३७, ४८, ५२, ८८, ९० (पदपादाकुलक)

वेला—गीत ४ (पदपादाकुलक, लघिमा के साथ) १३, १४, २९, ३४, ४०, ४१, ४७, ६८ (पदपादा० के साथ) ७८ (पदपादा०, मत्तसवैया)

अणिमा—पद्य ३० (पदपादाकुलक)

अर्चना—गीत ३७, ३८ (पदपादा०)

आराधना—गीत ९, २०, ४९, ८३ (पदपादा०) २५ (चौपाई, ताटंक)

गीतगुंज—पृ० ६३, ७६, ८९ (पदपादा०)

सांध्यकाकली—गीत ३८ (पदपादा०) ४५ (विष्णुपद, चौपाई)

अनामिका—दान, हिंदी के सुमनों के प्रति, सरोजस्मृति (सब पदपादाकुलक के साथ)

तुलसीदास—पदपादाकुलक, राधिका के साथ।

'तुलसीदास' में प्रयुक्त अनुच्छेद के सम्बन्ध में डॉ० शुक्ल ने लिखा है—'तीसरे और छठे चरण की २२ मात्राएँ चौपाई में समप्रवाही षष्ठक जोड़ने से बनी हैं। चौपाई के दो चरण और २२ मात्राओं के चरण के योग से छन्द का आधा भाग बनता है।'[1] डॉ० शुक्ल ने जिसे चौपाई समझ लिया, वह वास्तव में पदपादाकुलक है। उनके द्वारा उद्धृत उदाहरण की तीसरी पंक्ति—

जीवन-समीर शुचि, निःश्वसना/ वरदात्री

का १६ मात्रिक खंड समात्मक होने के कारण चौपाई का भी माना जा सकता है। पर छठी पंक्ति का

यह विश्वहंस है चरण सुधर/जिस पर श्री

१६ मात्रिक खंड चौपाई का नहीं हो सकता। वस्तुतः ये दोनों पंक्तियाँ राधिका छन्द की हैं, जिसका निर्माण पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में ६ मात्राओं के योग से हुआ है। उसी प्रकार 'तुलसीदास' में प्रयुक्त अनुच्छेद की पहली, दूसरी, चौथी

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३६०

और पाँचवी पंक्तियाँ कहीं तो पद्धरि की हैं और कहीं पदपादाकुलक की। वे चौपाई की नहीं कही जा सकतीं। इस प्रकार उसके सभी अनुच्छेदों का निर्माण पद्धरि-राधिका अथवा पदपादाकुलक-राधिका के मिश्रण से हुआ है। बच्चन सिंह का यह कहना कि 'तुलसीदास ऐसा श्रेष्ठ अन्तर्मुखी प्रबन्ध पद्धटिका छन्द पर आधारित है'[1] एकदम सही है; क्योंकि पदपादाकुलक पद्धटिका (अन्य नाम पद्धरि) का ही भेद है।

(४६) पदपादाकुलक (१६ मा०)

अति सुकृत भरे जो सहज करे,
जल थल-नभ पर निर्भय विचरे,
शशि से उतरे, रस पर छहरे
पत्तों में ध्वज-पताक फहरे।

—वेला : गीत ७१

पदपादाकुलक का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। मिश्र प्रयोग की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

अर्चना—गीत ६, ३६, ४४, ५७, ८४, ८६
आराधना—गीत २, १८, २२, २६, ३०, ५१, ५८, ६८
गीतगुंज—पृ० ६०
सांध्यकाकली—गीत २६, ५०, ५८

पदपादाकुलक का वर्णवृत्त तोटक की लय से पूर्ण साम्य है। यह तोटक का मात्रिक रूप भी कहा जा सकता है। आराधना का गीत ५१ की प्रथम चार पंक्तियाँ पदपादाकुलक की हैं। शेष ८ पंक्तियों में तोटक के गण-क्रम का भी पालन हो गया है। अतः ये पंक्तियाँ तोटक की भी मानी जा सकती हैं।

पद्धरि के अतिरिक्त अन्य छंदों के साथ भी पदपादाकुलक का मिश्रण दो-एक स्थलों पर पाया जाता है। यथा—

अर्चना—गीत ४७ (मत्तसवैये के साथ)

स्वच्छंद छंद में लिखित कविताओं में पदपादाकुलक और सखी तथा पदपादाकुलक और पदपादांकुर के चरणों को एक इकाई मान कर क्रमशः ३० और २८ मात्रा वाली पंक्तियाँ भी लिखी गई हैं। यथा—

१. क्रांतिकारी निराला : पृ० १८०

(क) यों थी वह प्रियतम के आगे/मृदु स्निग्ध हास्य की रेखा ।

—परिमल : वह, पृ० १३५

(ख) सुकुमार लता के वाताहत/मृदु छिन्न पुष्प से दीन ।

—परिमल : स्वप्न स्मृति, पृ० १३२

पदपादाकुलक के अंत में एक मात्रा के योग से बनी हुई एक पंक्ति इस प्रकार है—

प्रति-श्वास-शब्द-गति से उस ओर ।

—परिमल : विस्मृत भोर : पृ० १३६

(५०) चौपाई (१६ मा०)

चली स्नान हित शोभा-वलयित,
गीत-सदृश चित प्रिय छवि-निर्मित
क्षालित शत-तरंग-तनु-पालित
अवगाहित निकली द्युति निर्मल ।

—गीतिका : गीत ८३

निराला ने चौपाई का दोनों रूपों में (स्वतंत्र और मिश्र) विशद प्रयोग किया है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

गीतिका—गीत ३६, ४२, ४६, ८३ (टेक को छोड़कर)

बेला—गीत ६ (अनेक वर्णों का ह्रस्वोच्चारण), ६१

अणिमा—पद्य २५

अर्चना—गीत १, २, ४, ७, २४, २५, ३१, ३२, ३५, ३६, ५० ५१,५२,५३,५४,६५,६८,७०,७१,९०,९३,९५,९७,१०२, १०३, १०५,१०६,१०८

आराधना—गीत १,३,८,११,१७,२६,२८,३७,३६,४०,४३,४४,५३,६३, ८१,८२,८५,८८,९३

गीतगुंज—पृ० ५५ (ह्रस्वोच्चारण), ५७, ५८,६१,६५,६६,७०,७१,७३, ७७,७८,८१,८३,८५,८७,९३,९४,१०३

सांध्यकाकली—३२,३३,३५,३६,४२,४३,४४,४६,५७,६२

अनामिका—विनय ।

मिश्र प्रयोग के स्थल—

परिमल—गीत (पृ० १७ विष्णुपद के साथ) युक्ति (निश्चल, शशिवदना, सरसी) प्रिया के प्रति (समानसवैया, वीर, महानुभाव, सखी,

हंसगति, तमाल के साथ) गीत (पृ० ७७,८२—शशिवदना के साथ)

गीतिका—प्रारंभ (पदपादांकुर, कज्जल) गीत १ (विष्णुपद) गीत ४, १०, १५,१६,१७,२८,३६ (विष्णुपद,शशिवदना) ५ (शशिवदना) ८ (अहीर) ११ (ताटंक, हाकलि) १३, ३८, ४०, ५०, ७४, ६३ (समान सवैया) १४ (विष्णुपद, शृंगार-कल्प) २६ (हंसगति, शशिवदना) ३४ (अहीर, सरसी)

बेला—गीत ५ (अणिमा, लघिमा के साथ) ३५ (हाकलि, योग, अणिमा) ३८ (शृंगार) ३६ (हाकलि, सखी) ६६ (सरसी)

अणिमा—पद्य १ (हाकलि, ताटंक) ३ (अखंड) ४ (समानसवैया)

अर्चना—गीत ४, १७, ४८ (समानसवैया) ५८ (लघिमा, अणिमा) ६६ (सार) ११० (शृंगार, अहीर) ११२ (ताटंक)

आराधना—गीत २४, ५०, ५७, ७२, ७३, ७४ (समानसवैया) २५ (पद्धरि, ताटंक) ४१, ५२ (हाकलि) ८० (हाकलि, लीला, योग, महानुभाव) ६४ (महानुभाव, अणिमा, गोपी, हाकलि)

गीतगुंज—पृ० ६२, ६७, ८०, ८६ (समानसवैया) ६८ (शृंगार, अहीर) ७२ (सार) ७५ (विष्णुपद) ८४ (सार, विष्णुपद) ८८ (हाकलि) ६२ (अणिमा)

सांध्यकाकली—गीत २८ (महानुभाव, शृंगारकल्प) २९ (शशिवदना, गोपी) ४० (विष्णुपद) ४५ (विष्णुपद, पद्धरि) ५१ (शशिवदना)

अनामिका—उत्साह (योग, रास, हंसगति) वारिद-वंदना (शशिवदना)

स्वच्छंद छंद में लिखित 'दीन' कविता में चौपाई के अंत में एक लघु जोड़कर एक पंक्ति बना ली गई है।

स्वार्थ सदा रहता परार्थ दूर।

—परिमल : दीन, पृ० ११६

(५१) वसंतमालती (१६ मा०)

आओ, एक पथ के पथिक से,

× ×

भाषा मूकता की आड़ में,

× ×

जीवन, प्रात के लघु-पात से।

—परिमल : मौन, पृ० ३

मधुमालती के आदि में दो मात्राएँ जोड़कर यह छंद बना लिया गया है। अतः इसका नाम वसंतमालती रक्खा गया है। इसका प्रयोग केवल उक्त कविता के अनुच्छेद में हुआ है, जिसका निर्माण ज्योति, मधुमालती, तोमर तथा वसंतमालती के चरणों के योग से हुआ है।

(५२) लघिमा (१६ मा०)

सही आँख तुम्हीं दिखे पहले,
नहले पर तुम्हीं रहे दहले,
वहते थे जितने थे बहले
किसी जीभ तुमको टेरा था।

—अर्चना, गीत ५८

मार पलक परिमल के शीतल,
छन-छन कर पुलकित धरणीतल,
वहती है वायु, मुक्त कुंतल।

—परिमल : पारस।

चार त्रिकल और एक चतुष्कल के योग से लघिमा छन्द का निर्माण होता है। यह वस्तुतः लीला के अन्त में एक चौकल जोड़ देने से बन जाता है। अतः लीला की तरह इसमें भी षट्कल की योजना मान्य है। २ षट्कल + १ चतुष्कल से बनी या २ त्रिकल + षट्कल + चतुष्कल से निर्मित पंक्ति चौपाई की भी हो सकती है। पर ४ त्रिकल + चतुष्कल अथवा १ षट्कल + २ त्रिकल + १ चतुष्कल से संगठित पंक्ति चौपाई की नहीं हो सकती। ऐसी पंक्ति में न तो चौपाई के चरण की गण-व्यवस्था (अष्टकाधार) है, और न उसकी वांछित लय। ऊपर की पंक्तियों में तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठीं चौपाई की कही जा सकती है; पर पहली, दूसरी और सातवी को चौपाई मानना ठीक नहीं। डॉ० शुक्ल ने जो द्वितीय उदाहरण में चौपाई मानी है,[1] वह संगत प्रतीत नहीं होता। यह नई लय है। अतः अणिमा (देखिये आगे) के वजन पर इसे लघिमा नाम दिया गया है।

लघिमा का स्वतंत्र प्रयोग केवल सांध्यकाकली के दो गीतों (५२, ६०) में हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित है—

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३५६

परिमल—पारस (चंचलामात्रिक के साथ)

गीतिका—गीत ३ (कुंडल, अणिमा के साथ) ३२, ६४ (अणिमा के साथ) ५१ (लीलाधर, प्रणय, कुंडल)

बेला—गीत ४ (पद्धरि, पदपादाकुलक) ८० (योग के साथ) ६३ (शशि-वदना, लीलावृत्त, कोकिला के साथ) ३, ५, में एक-एक पंक्ति और १० में दो पंक्तियाँ।

अर्चना—गीत ४५ (लीलावृत्त के साथ) ५८ (अणिमा, चौपाई)

आराधना—गीत १६ (लीलावृत्त) ३२ (अणिमा)

अनामिका—खुला आसमान (लीलावृत्त, लीलाधर, प्रणय, कोकिला, अणिमा के साथ-केवल एक पंक्ति)

(५३) राम (१७ मा०)

दलित भारत की ही विधवा है।—परिमल : विधवा, पृ० १००

स्वार्थ का मारा यहाँ भटकता।— .. पहचान, पृ० १०४

भूख से सूख ओठ जब जाते।— ,, भिक्षुक, पृ० १०७

पपीहे के 'पिउ पिउ' कूजन में।— ,, शरद् पूर्णिमा, पृ० ११३

राम का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। स्वच्छन्द छन्द में इसकी अनेक पंक्तियाँ यत्र-यत्र उपलब्ध होती हैं। गीतों की टेक में भी यह प्रयुक्त हुआ है। यथा—

कल्पना के कानन की रानी।— गीतिका : गीत २४

स्वच्छन्द छन्द में राम के बाद अन्य छन्दों के चरणों को जोड़कर भी कतिपय पंक्तियाँ बनाई गई हैं। यथा—

राम + सुगति = सखी नीरवता के कंधे पर/डाले बाँह/परि० : संध्या सुन्दरी, पृ० ११०

राम + चौपई = सुबह को बिछी हुई शय्या का/दिखा जब ऐसा शृंगार।
—परिमल : वन कुसुमों की शय्या, पृ० १०८

राम + मुक्ति = सरलता से ही उसकी होती/मनोरंजना।
—परिमल : वह, पृ० १३५

राम + अखंड = जिसे पा कहीं भूलते अपना/पन यह क्षण भर।
—परिमल : सिर्फ एक उन्माद, पृ० १६३

(५४) उर्मिला (१७ मा०)

हेर उर पट, फेर मुख के बाल,

लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल,

—गीतिका, गीत २

मैथिलीशरण-द्वारा आविष्कृत और साकेत के सप्तम सर्ग में प्रयुक्त उर्मिला छंद का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार यह छंद दूसरे सप्तक (ऽ । ऽ ऽ) की दो आवृत्तियों और गुरु-लघु के योग से बनता है।[1]. वस्तुतः इसका निर्माण पीयूषवर्षी के अंतिम गुरु को निकाल देने से हुआ है। निराला-काव्य में इसका प्रयोग दो स्थलों पर हुआ है। अणिमा के गीत ४१ में इसका प्रयोग मनोरम की टेक देकर स्वतंत्र रूप से और गीतिका के उक्त गीत में रजनी और पीयूषवर्षी के साथ।

(५५) अणिमा (१७ मा०)

ज्ञात रश्मि गात चूम रे गई,
बँधी हुई खुली भावना नई,
गई दूर दृष्टि जो सुखाशयी
छिपे वे रहस्य दिखे नूतन ।

—गीतिका : गीत ६४

अणिमा छंद का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है।[2]. इसके चरण का निर्माण ४ त्रिकल और एक पंचक से अथवा ६+६+५ मात्राओं के क्रम से होता है। भिखारीदास ने इसे हीरकी छंद कहा है और यह उदाहरण दिया है—

दास कहै बुद्धि थकै धीर की।
देखि प्रभा अद्भुत पाटीर की।

—छंदार्णव ६।६ पृ०, २१५

हीर-हीरक की विद्यमानता में इस छंद का अणिमा नाम ही उपयुक्त प्रतीत होता है। यह वस्तुतः वर्णवृत्त श्येनिका (र ज र ल ग) का मात्रिक रूप है, जिसमें दो त्रिकलों की जगह एक षट्क तो रक्खा ही गया है, कहीं-कहीं त्रिकल का रूप भी बदल दिया गया है। इस प्रकार यह लीला के अंत में एक पंचक जोड़ देने से बन जाता है। इसका स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। अन्य छंदों के साथ यह निम्नलिखित स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है—

गीतिका—गीत ३ (कुंडल, लघिमा के साथ) ३२, ६४ (लघिमा)

---

१. +२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २६८, २६९

बेला—गीत ३, ५ (चौपाई के साथ) ३५ (आँखों पर पानी है लाज का) ४५ (चौपाई)

अणिमा —पद्य ९ (भूख अगर रोटी की ही मिटी आदि) २३ (अखंड, हाकलि, कुंडल, लीलावृत्त)

अर्चना —गीत १८ (राह कभी नहीं भूली तुम्हारी) २० (योग के साथ) ५८ (लघिमा के साथ)

आराधना—गीत १५ (लीलावृत्त के साथ) २३ (लघिमा) ८४ (चौपाई) ९८ (परिमल के निर्झर जो बहे ये)

गीतगुंज —पृ० ९२ (चौपाई)

अनामिका—सच है (चौपाई) खुला आसमान (पनघट में बड़ी भीड़ हो रही)

(५६) माली (१८ मा०)

हाँ, उस कानन में खिले हुए तुम।—परि०: पहचाना, पृ० १०३
जहाँ हाय, केवल श्रम, केवल श्रम।— ,, विस्मृत भोर, पृ० १३९
स्वप्न प्रबल विज्ञान, धर्म, दर्शन।— ,, ,, पृ० १४०
निर्दय विप्लव की प्लावित माया।— ,, बादलराग(६)पृ० १६०

माली का उल्लेख भिखारीदास ने किया है। उन्होंने इसमें किसी नियम का निर्धारण नहीं किया। 'अनियम माली बंस।'[1] पर उनके उदाहरण-पद्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौपाई के अंत में दो मात्राओं के योग से इसका निर्माण हो जाता है। माली का प्रयोग केवल स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में यत्र-तत्र मिलता है। गीतगुंज (पृ० ९६) की 'नेत्र' कविता की टेक इसी में निबद्ध है। यथा—एक दूसरे के दुख में सहृदय।

(५७) तारक मात्रिक (१८ मा०)

संकुचित एक लज्जित गति है वह।—परिमल : वह, पृ० १३४
जब बढ़ी अर्घ्य देने को तुम को।— ,, विफलवासना, पृ० १३८
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं। - ,, बादलराग (६) पृ० १६०
वीथियाँ विविध बातों से कटती।—बेला : गीत ६७
उत्ताल-तरंग-भंग से होंगे।—परिमल : आवाहन, पृ० १७५

इस छंद का निर्माण पदपादाकुलक के अंत में दो मात्राओं के योग से

१. भिखारीदास ग्रंथावली, भाग १, छंदार्णव ५।१३३, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

हुआ है। पदपादाकुलक का वर्णिक तोटक (स स स स) से पूर्ण लय-साम्य है। और तोटक के अंत में एक गुरु रख देने से तारक (स स स स ग) बन जाता है। (प्रा० पैं० २।१४३) इस प्रकार यह छंद तारक का मात्रिक रूप माना जा सकता है।

(५८) लीलावृत्त (१८ मा०)

ऐसी ही एक बात चलती है,
घात खड़ी खड़ी हाथ मलती है,
तभी सही-सही दाल गलती है।

—अर्चना, गीत ४५

लीलावृत्त का निर्माण लीला के अंत में छह मात्राओं के योग से हुआ है। इसका स्वतंत्र प्रयोग आराधना के गीत १६ (लघिमा की टेक के साथ) में और मिश्र प्रयोग अर्चना के उक्त गीत (लघिमा के साथ) में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इसकी पंक्तियाँ निम्न स्थलों पर भी मिलती हैं—

गीतिका—गीत ८६ (वह शोभा जो देखी थी वन में)

परिमल—बादल-राग (६) (निराकार है तीनों मिले भवन)

बेला—गीत १२ (जीवन के हुए और कोस कड़े) ७६ (पाँच पंक्तियाँ—
आती है धूप छाँह लस लस कर)

अणिमा—गीत २३ (अंतिम अनुच्छेद की दो पंक्तियाँ)

आराधना—गीत १५ (कोई मुझको यहाँ उबार गया)

(५६) पीयूषवर्षी (१६ मा०)

तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता ?
या किसी दुख-दीन की है आह तू
या किसी तरु की तरुण वनिता-लता ?

—परिमल : माया

पीयूषवर्षी का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग—

परिमल—नयन, माया, अध्यात्म फल।

नए पत्ते—खेल

आराधना—गीत ६१

अणिमा—गीत २६

मिश्र प्रयोग—
गीतिका—गीत २ (रजनी, उर्मिला के साथ)
नए पत्ते—चौथी जुलाई के प्रति (पीयूषराशि की एक पंक्ति)
अणिमा—पद्य १४ (पीयूषराशि की दो पंक्तियाँ) २४, ३४
अनामिका—तोड़ती पत्थर (एक छन के बाद वह काँपी सुघर)
परिमल—निवेदन (विशुद्धगा, रजनी, मालिका, विजात के साथ) शेष
(निधि, शृंगाराभास, ज्योति के साथ)

(६०) तमाल (१६ मा०)

(क) निर्झरिणी की सी विकास की लास—
गिरि-गह्वर में फूट रही सोच्छ्वास।
जग कर मैंने खोला अपना द्वार,
पाया मुख पर किरणों का अधिकार।
—परिमल : प्रथम प्रभात

(ख) झूम झूम मृदु गरज-गरज घन घोर।
राग अमर ! अंबर में भर निज रोर।
—परिमल : बादल-राग, पृ० १४६

दिनकर ने 'ख' को बरवै की पंक्तियाँ मानी है।[1] बरवै अर्द्धसम छंद है, जिसके विषम चरणों में १२-१२ और सम चरणों में ७-७ मात्राएँ होती हैं, अंत में ऽ। रहता है। 'ख' की पहली पंक्ति में १२ पर यति नहीं है। दूसरी में मानी जा सकती है। पर अर्द्धसम छंद के विषम चरणों के अंत में जिस पूर्ण यति की अपेक्षा रहती है, वह यहाँ नहीं है। ऐसी पंक्तियों में कुछ में तो यति है ही नहीं, कुछ में पूर्ण नहीं, हलकी-सी यति मानी जा सकती है। अतः 'ख' में बरवै मानना ठीक नहीं। दिनकर भूल गए कि यह भानु का तमाल छंद है, जिसका निर्माण चौपाई के अंत में ऽ। रखने से हो जाता है।[2] लय को नहीं, केवल १६ मात्राओं को ध्यान में रखकर नागार्जुन और शिवकुमार मिश्र भी धोखे में आ गए और 'भस्मांकुर' के छंद को बरवै मान लिया। 'भस्मांकुर' का छंद तमाल है। और इस प्रकार कवि की बरवै छंद में एक समग्र लघु काव्य लिखने की अभिलाषा अपूर्ण ही रह गई।[3]

---

१. मिट्टी की ओर : पृ० ११४।
२. छंदःप्रभाकर, पृ० ५५।
३. (क) आज हमारी यह पुरानी अभिलाषा पूर्ण हुई कि 'बरवै' छंद में एक समग्र लघु काव्य पूर्ण हुआ।—भस्मांकुर, पृ० १०
(ख) तुलसी और रहीम द्वारा माँजे गए × × × बरवै छंद को नया प्राण दिया है, नागार्जुन ने।—भस्मांकुर का कवि : एक परिचय, पृ० ३३।

प्रसाद ने 'चित्राधार' में तमाल का विधिवत् प्रयोग किया है। निराला में इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं मिलता। 'परिमल' के 'प्रथम प्रभात' में चौपाई के साथ, 'गीतिका' के गीत २४ के प्रथम अनुच्छेद की तीन पंक्तियों में तथा 'गीतगुंज' (पृ० ६६) के 'नेत्र' की दो पंक्तियों में यह उपलब्ध होता है। परिमल (२) की स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में भी यत्र-तत्र इसकी पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती है।

तमाल के अंत में । ऽ और । । । भी देखा जाता है। यथा...

(क) चित्रित करने के उपाय तो किए।

(ख) मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर।

(६१) विध्वंकमाला मात्रिक (१६ मा०)

तिल नीलिमा को रहे स्नेह से भर
जग कर नई ज्योति उतरी धरा पर
रँग से भरी है, हरी हो उठी हर

—अनामिका : अपराजिता

विध्वंकमाला (त त त ग ग) की यही तीन पंक्तियाँ उक्त कविता में मंजुतिलकावली के साथ मात्रिक रूप में पाई जाती है।

(६२) सुमेरु (१६ मा०)

कहाँ की मित्रता, वे हँस के बोले,
न कोई जबकि दिल की गाँठ खोले।
बुरा दुश्मन से है जो जी को भाया,
खरा काँटा कली की आँख तोले।

—वेला : गीत २७

(रेखांकित वर्णो का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित)

निराला के संपूर्ण साहित्य में सुमेरु में निवद्ध यही उक्त पद्य मिलता है। सुमेरु छंद संभवतः उर्दू से आया है। इसकी उर्दू वहर है—मफाईलुन् मफाईलुन् फऊलुन्। उर्दू में गुरु का ह्रस्वोच्चारण साधारण वात है। इसीलिए भिखारीदास ने सुमेरु को मात्रा मुक्तक के प्रकरण में रख कर इसमें १६ या २० मात्राएँ मानी है। यथा—

कल वानईसै वीस को छन्द सुमेरु निवेरि।

—छन्दार्णव, पृ० २१६

मैथिलीशरण आदि ने गुरु का लघु जैसा प्रयोग नहीं कर इसे विलकुल हिन्दी के साँचे में ढाल दिया था । निराला ने इसका प्रयोग उर्दू ढंग पर किया है । अतः गुरु का ह्रस्वोच्चारण प्रचुर परिमाण में पाया जाता है । बच्चन सिंह ने लिखा है—'गुरु को लघु, लघु को गुरु करने की आवश्यकता से भी बचने का प्रयत्न किया गया है ।'[1] जहाँ चार पंक्तियों में तीन जगह ह्रस्वोच्चारण करना पड़ता है, वहाँ बचने की बात नहीं कही जा सकती । उर्दू छन्दों में लिखी प्रायः सभी कविताओं में यह दोष दिखलाई पड़ता है ।

(६३) रतिवल्लभ (१६ मा०)

शंकर शुभंकर हुए जो न, तो क्या ?
अन्न पूर्णा विना लो क्या व दो क्या ?
काशी विना शांति का वास भी है ?
क्षिति नहीं तो अचल विश्वास भी है ?

—सांध्यकाकली : गीत ६१

चन्द छन्द (५+५+५+२) के आगे दो मात्राओं के योग से यह छन्द बना है । इसका उल्लेख हेमचन्द्र ने किया है ।[2] सूरदास ने एक पद (सूरसागर, पद २५६२) की रचना इस छन्द में की है । निराला-साहित्य में इसका प्रयोग केवल उक्त गीत में हुआ है ।

(६४) हंसगति (२० मा०)

यौवन-मरु की पहली ही मंजिल में
अस्थिर एक किरण-सी झलकी आशा,
मैं क्या जानूँ है यह कितनी सुन्दर,
भरी हुई उतनी ही तीव्र पिपासा ।

—परिमल : जागो ।

दिनकर ने उक्त पद्य की प्रथम पंक्ति में 'की' और 'पहली' अथवा 'ही' और 'मंजिल' के बीच दो मात्राओं के योग से इसके शुद्ध राधिका छन्द की पंक्ति हो जाने की संभावना प्रकट की है ।[3] उनके अनुसार कुछ काट-छाँट के साथ निराला ने राधिका का प्रयोग इस पंक्ति में किया है । पर यहाँ काट-

---

१. क्रांतिकारी कवि निराला : पृ० १४७
२. छंदोऽनुशासनः पिचौ रतिवल्लभः ४।४७
३. मिट्टी की ओर, पृ० ११५

छाँट नहीं की गई है, यह हंसगति छन्द है। भानु के अनुसार इस पद्य की कुछ पंक्तियों में स्पष्टतः ११ पर यति है। अवश्य कुछ में नहीं है (ऊपर की चारों पंक्तियों में भी नहीं है) पर भिखारीदास ने हंसगति में यति की कोई बात नहीं कही। बीसै कल बिन नियम हंसगति सो है। इस दृष्टि से बिना यति की २० मात्रा वाली समप्रवाही पंक्तियों को भी हंसगति मान लेना सर्वथा समीचीन है।

निराला-साहित्य में हंसगति का स्वतंत्र और मिश्र—दोनों रूपों में प्रयोग हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग तो बस उक्त कविता में ही मिलता है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

परिमल—प्रिया के प्रति (समान सवैया आदि अनेक छन्दों के साथ) वृत्ति (रास, महानुभाव के साथ)

गीतिका—गीत २४ (तमाल, ताटंक, सार के साथ) २६ (वीर, सरसी, अहीर के साथ)[1] २९ (चौपाई, शशिवदना)

अर्चना—गीत २३ (अखंड, हाकलि, चौपाई के साथ)

आराधना—गीत ७५ (अखंड, शशिवदना, महानुभाव)

गीतगुंज—पृ० ९८, पथ (उलझ गए तुम कभी करीले वन में, आदि चार पंक्तियाँ)

अनामिका—ज्येष्ठ (सरसी, शृंगार, छवि के साथ) उत्साह (योग, चौपाई, रास के साथ) वे किसान की वहू (रास, हाकलि, रोला के साथ)

हंसगति की अनेक पंक्तियाँ स्वच्छन्द छंद में भी प्राप्त होती हैं।

(६५) मंजुतिलका (२० मा०)

विपदा हरण हार हरि हे करो पार।
प्रणय से जो कुछ चराचर तुम्हीं सार
तुम्हीं अविनाशी विहग व्योम के देश,
परिमित अपरिमाण में तुम हुए शेप।

—आराधना : गीत २१

भानु के अनुसार मंजुतिलका में १२—८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण

१. डॉ० शुक्ल ने 'मेरे वन में भ्रमण करोगे जब तुम' में योग छन्द माना है (आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० ३८०) योग त्रिकलाधृत छन्द है। अतः यहाँ योग नहीं; हंसगति छन्द है—लेखक।

(। ऽ ।) रहता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इसके लक्षण में और कुछ नहीं कहा। परन्तु उनके लक्षणोदाहरण-पद्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तगण (ऽ ऽ ।) के आधार पर चलने वाला छन्द है। पद्य के प्रथम तीन चरण पंचकाधार पर निर्मित है, चौथे में इसकी अवहेलना की गई है। यथा—

रच मंजु/तिलकाहिं/कल भानु/वसु साज।
सो धन्य/नित सेव/जो संत/न समाज।
भजु सो स/दा प्रेम/सो केश/व उदार।
नसिहैं भव फंद लहै तू सुख सार।

—छन्द:प्रभाकर, पृ० ५७

तीन चरणों के बल पर यह कहा जा सकता है कि मंजुतिलका सारंग (त त त त) का मात्रिक रूप है। पर निराला ने सर्वत्र तगण के आधार का पालन नहीं किया है। उपर्युद्धृत पंक्तियों में दूसरी के प्रारंभिक गण का आधार रगण (ऽ । ऽ) और तीसरी का यगण (। ऽ ऽ) है। अत: सामान्यत: यही कहा जायगा कि निराला ने मंजुतिलका की रचना ४ पंचकों के आधार पर की है और अंत में ऽ । रक्खा है।

स्वतंत्र रूप में इसका प्रयोग केवल आराधना के उक्त गीत में हुआ है। मिश्र प्रयोग के निम्न स्थल हैं—

गीतिका—गीत ८१, ६५, ६६ (अरुण के साथ)
वेला—गीत ६१, ६० (अरुण के साथ)
अर्चना—गीत ७५, ८५ (अरुण के साथ)
आराधना—गीत ३४ (अरुण के साथ)
सांध्यकाकली—गीत ४७ (अरुण के साथ)

(६६) अरुण (२० मा०)

विपद-भय-निवारण करेगा वही सुन,
उसी का ज्ञान है, ध्यान है मान-गुन;
वेग-चल, वेग चल, आयु घटती हुई
प्रमुद-पद की सुखद वायु कटती हुई।

—अर्चना, गीत ६८

पंचक के आधार पर चलने वाले अरुण को डॉ० शुक्ल ने स्रग्विणी (र र र र) के आधार पर बना हुआ मान कर यह कहा है कि भानु को स्रग्विणी आधार का ध्यान नहीं आया, इसीलिए उन्होंने ५-५-१० मात्राओं

के बाद यति मानी और अन्त में (ऽ। ऽ) की व्यवस्था की।[1] भानु के लक्षणोदाहरण से यह स्पष्ट है कि उनका ध्यान स्रग्विणी आधार पर अवश्य था। उनकी चार पंक्तियों में एक पंचक के अतिरिक्त सभी पंचक रगणाधृत ही हैं। 'राम भज, मोह तज, परो कह फंद में' में 'परो कह' जैसे यगणाधृत पंचक का प्रयोग कर शायद उन्होने यह संकेत करना चाहा कि रगण के बीच दो एक अन्य गणाधृत पंचक भी आ जायँ, तो हर्ज नहीं। ऐसा उन्होंने संभवतः गण-बंधन को थोड़ा शिथिल करने के लिए किया हो। निराला-काव्य में रगण की पूरी पाबंदी नहीं पाई जाती। वस्तुतः निराला ने ४ पंचकों के आधार पर इसकी रचना की है और अंतिम पंचक रगणाधृत रक्खा है। अरुण का मंजुतिलका के साथ मिश्रण की चर्चा पीछे हो चुकी है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित है—

गीतिका—गीत ९२
बेला—गीत ७
अर्चना—गीत ११, ९८
आराधना—गीत १९, ७१
गीतगुंज—पृ० ८२, ९५

(६७) योग (२० मा०)

जब से उसकी छवि में रूप बहाए।
साथ छुटा स्वजनों का पाँख फ़िर गई,
चली हुई पहली वह राह घिर गई
उमड़ा उर तलने को जिस पुर आए।

—अर्चना : गीत २३

योग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

वेला—गीत ३३
अर्चना—गीत २३
मिश्र प्रयोग—
गीतिका—गीत ९१,९७ (प्रणय के साथ) ९८ (हीर के साथ) ९१ में प्रयुक्त 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जावगे चले' में डॉ० शुक्ल ने भृंग-

१. आ० हि० का० में छन्दयोजना, पृ० २७७

चुंबित छंद माना है।[1] नया नाम व्यर्थ है। यहाँ त्रिकल-षट्क लय पर आधृत योग छंद स्पष्ट है।

बेला—गीत ३५ (भेद खुला सविता के किरण व्याज का) ८० (लघिमा के साथ)

अर्चना—गीत १५ (कोकिला के साथ)

आराधना—गीत ८० (लोगों ने रूप पी लिया गले-गले)

अनामिका—उत्साह (घेर घेर घोर गगन धाराधर ओ)

और और छवि (नूतन से भी कवि, रे यह और और छवि)

(६८) भुजंगप्रयात मात्रिक (२० मा०)

(क) हजारों जवानों की जानों लड़े है; ('की' का ह्रस्वोच्चारण)
कहीं चोट खाई कि कोसों बढ़े हैं।

× ×

(ख) काटे कटी काटते ही रहे तो
पड़े उम्र भर पाटते ही रहे तो।

—आराधना : गीत ७

(ग) मातः, किरण हाथ प्रातः बढ़ाया।
कि भय के हृदय से पकड़ कर छुड़ाया।

—अर्चना : गीत ११

यहाँ 'ख' और 'ग' की पहली पंक्तियों में एक लघु की कमी है। इसे या तो कवि का स्खलन समझिए अथवा उन दोनों को विध्वंकमाला मात्रिक की पंक्तियाँ मानिए।

इस लय की उर्दू बहर फऊलुन् फऊलुन फऊलुन् फऊलुन् है। निराला ने उक्त छह पंक्तियों के अतिरिक्त इसी छंद को उर्दू बहर में भी 'बेला' के दो गीतों में (५१, ५२) प्रयुक्त किया है। यथा—

पता उसकी दुनिया का कैसे लगाएँ,
सितारे सितारे टुटा जा रहा है।

—बेला, गीत ५१

(६९) पीयूषराशि (२० मा०)

ज्ञान-गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २७८

से इसका निर्माण हुआ है। निराला के काव्य में इसकी केवल उक्त तीन पंक्तियाँ मिलती है। प्रथम पंक्ति दोषयुक्त है। इसके आदि में एक लघु चाहिए।

(७३) मधुवल्लरी (२१ मा०)

यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
+ +
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

—परिमल : विधवा, पृ० १०२

मधुवल्लरी छंद का निर्माण ऽ ऽ । ऽ की तीन आवृत्तियों से होता है। यह वस्तुतः हरिगीतिका के अंत से ७ मात्राओं को निकाल कर अथवा पीयूषवर्षी के आदि में दो मात्राओं को जोड़कर बना लिया गया है। मैथिलीशरण ने इसका प्रयोग 'कुणाल-गीत' (गीत ७२) और 'वकसंहार' के प्रत्येक अनुच्छेद में किया है। निराला-काव्य में इसकी केवल उक्त दो पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में लिखी 'विधवा' कविता में मिलती हैं।

(७४) प्लवंगम-चांद्रायण (२१ मा०)

प्ल { लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ा कर।
—परिमल : विधवा, पृ० १०१
वं } और जागरण, जगत का—इस संसृति का।
ग —परिमल : दीन, पृ० ११६
म { वह नव वसंत की किसलय कोमल लता।
केवल निज सरोज-मुख पति को ताकना।

—परिमल : वह, पृ० १३४, १३६

(चांद्रायण) कुछ भी हो, तू ठहर देख लूँ नजर भर।

—परिमल : शरत् पूर्णिमा, पृ० ११२

प्लवंगम-चांद्रायण का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में इनकी पंक्तियाँ यत्र-तत्र मिल जाती हैं।

(७५) साधिका (२१ मा०)

(७६) राधिका (२२ मा०)

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी, (राधिका)
वह दीप-शिखा-सी शांत, भाव में लीन (साधिका)
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति-रेखा-सी (राधिका)
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन (साधिका)

—परिमल : विधवा, पृ० १००

पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में ६ मात्राओं के योग से राधिका का निर्माण हुआ है, जिसके अंत में ऽ। नहीं रह सकता। इसी राधिका के अंतिम गुरु को लघु कर देने से साधिका छंद बन जाता है। 'लीना' और 'दीना' कर देने से उक्त द्वितीय और तृतीय पंक्तियाँ राधिका की हो जायँगी। साधिका का स्वतंत्र प्रयोग प्राप्त नहीं होता। स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में (विशेषत: 'परिमल' की 'उसकी स्मृति' और 'विधवा' में) इसकी पंक्तियाँ पाई जाती हैं। आगे चलकर भगवती चरण वर्मा ने 'उल्टी सीधी' नामक कविता में इसका प्रयोग किया; जिसके चार चरणों के बाद एक पंक्ति शांता छंद(२६ मात्राएँ) की है।[१]

राधिका का प्रयोग भी स्वच्छंद छंद में रचित कविताओं में तथा 'तुलसीदास' में प्रयुक्त अनुच्छेद (तीसरी और छठी पंक्तियाँ) में ही मिलता है। 'राम की शक्तिपूजा' में राधिका छंद देखना बच्चन सिंह की सरासर भूल है।[२] राधिका में २२ मात्राएँ होती हैं, जब कि उस कविता में २४ मात्रापादी छंद प्रयुक्त हुआ है।

(७७) रास (२२ मा०)

देख चुका जो-जो आए थे, चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब भले गए।
आए थे जो निष्ठुर कर से मले गए,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे छले गए।

—परिमल : वृत्ति, पृ० ४२-४३

रास छंद का उल्लेख भानु ने किया है, जिसमें ८-८-६ मात्राएँ होती हैं; अंत में सगण (।।ऽ) रहता है।[३] डॉ० शुक्ल अंतिम सगण के स्थान पर भगण (ऽ।।) अथवा दो गुरु का विधान भी मानते हैं।[४] सूरदास के प्रयोग में नगण (।।।) भी मिलता है। (द्रष्टव्य : सूरसागर, पद ३२०२) इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि चौपाई के अंत में छह मात्राओं के योग से रास का निर्माण हो जाता है। और उपर्युद्धृत पंक्तियों में यह लक्षण पूर्ण रूप से घटित होता है। अत: ये पंक्तियाँ रास की हैं, इसमें संदेह नहीं। दिनकर ने

---

१. द्रष्टव्य : मेरी कविताएँ, पृ० २३३
२. क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १८०
३. छंद: प्रभाकर, पृ० ५६
४. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २८३

इसे निराला का नया प्रयोग मान कर बरवै के साम्य पर बना हुआ बताया है। इन पंक्तियों का शुद्ध बरवै—रूपांतर निम्न रूप में—

देख चुके जो-जो आए थे लेव (गए)
मेरे प्रिय सब बुरे गए सब लेभ (गए)[1]

उपस्थित करने का जो कष्ट उन्होने उठाया है, वह बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि उनके द्वारा रूपांतरित पंक्तियों में न तो बरवै की १२ पर पूर्ण यति मिलती है, और न बरवै की लय।

निराला-काव्य में उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त रास की एक पंक्ति—

नही चलाना जहाँ जहाज न/ही सागर।—अणिमा, पद्य ६ और मिलती है, जो यति-भंग-दोष से पीड़ित है।

(७८) सुखदा (२२ मा०)

मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को।—परिमल : भिक्षुक, पृ० १०७
घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर।—,, बादलराग (६) पृ० १६०
विद्युत-छवि उर में कवि, नव जीवन वाले।—अनामिका : उत्साह
समर करो जीवन में, जन के लिए कभी।—बेला : गीत ८८

भानु-द्वारा उल्लिखित सुखदा में २२ मात्राएँ होती हैं। १२-१० पर यति रहती है और अंत में ऽ रहता है।[2] डॉ० शुक्ल के अनुसार सार और विष्णुपद के द्वितीय खंडों को क्रमशः रखने से यह छंद बनता है।[3] निराला काव्य में सुखदा का प्रयोग इन्हीं कुछ पंक्तियों में प्राप्त होता है।

(७९) कुंडल (२२ मा०)

सब से तुम छुटे और आँखों पर आए,
फूलों के सुघर सुघर शाखों पर छाए।
× × ×
पापों के शुद्धिकरण चारु चरण धोए,
तुम्हीं अखिलेश-वरण विश्व-शरण रोए।

—बेला : गीत ३७

त्रिकल के आधार पर चलने वाले कुंडल छंद में २२ मात्राएँ होती है।

---

१. मिट्टी की ओर, पृ० ११४
२. छंदः प्रभाकर, पृ०६१
३. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २८४

१२-१० पर विश्राम होता है और अंत में ऽ ऽ रहता है। अंत में एक गुरु वाले कुंडल को उड़ियाना कहते हैं।[1] कुंडल का प्रयोग स्वतंत्र रूप में कहीं नहीं हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

गीतिका—गीत ३ (लघिमा, अणिमा के साथ) ६ (प्रणय, हीर के साथ) १८, ७८ (लीला के साथ) ५१ (लीलाधर, प्रणय के साथ) ८६ (हीर के साथ)

गीत ६ के एक चरण के आदि में दो मात्राएँ अधिक हैं। यथा—

उन/चरणों को छोड़, और शरण कहाँ पाऊँ।

वेला—गीत ११, ३७, ६३ (लीला के साथ)

अणिमा—गीत १० (लीला के साथ)

अर्चना—गीत ६० (शशिवदना के साथ)

अनामिका—मुक्ति (लीला, योग, कोकिला, चौपाई के साथ)

(८०) रजनी (२३ मा०)

जब कहीं झड़ जायँगे वे कह न पाएगी,
वह हमारी मौन भाषा क्या सुनाएगी?
× × ×
फिर किधर को हम बहेंगे तुम किधर होगे,
कौन जाने फिर सहारा तुम किसे दोगे?

—परिमल : निवेदन, पृ० ६

विद्यापति और सूरदास के द्वारा प्रयुक्त इस छंद का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने नवीन प्रयोग मान कर किया है।[2] यह छंद सप्तक (ऽ।ऽऽ) की तीन आवृत्तियों और गुरु के योग से बनता है। रूपमाला के अंतिम लघु को निकाल कर इसका आविष्कार कर लिया गया है। निराला-काव्य में इसका प्रयोग अत्यंत विरल है। उक्त कविता में विशुद्धगा, मालिका, पीयूषवर्षी, विजात के साथ केवल ४ पंक्तियाँ, 'गीतिका' के गीत २ में तीन पंक्तियाँ (टेक, पीयूषवर्षी एवं उर्मिला में निबद्ध दो अनुच्छेदों के बाद) गीत ४७ में एक पंक्ति तथा 'अनामिका' के 'मरण दृश्य' में तीन पंक्तियाँ (ज्योति, रूपमाला, मनोरम के साथ—नित्य-नूतन, प्राण, अपने गान रच-रच दो, आदि)—बस, ये ही ११

१. छंदः प्रभाकर, पृ० ६१
२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २८५

पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। आधुनिक युग में रजनी का सर्वप्रथम प्रयोग संभवतः निराला ने ही किया है।

(८१) निश्चल (२३ मा०)

(क) काल-वायु से स्खलित न होंगे कनक प्रसून ?
क्या पलकों पर विचरे ही गी यौवन धूम ?

—परिमल : युक्ति, पृ० ३६

(ख) कंटक, कर्दम, भय-श्रम-निर्मम कितने शूल।

—परिमल : स्वागत, पृ० ६२

(ग) और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर।

—परिमल : दीर्न, पृ० ११८

भानु के अनुसार निश्चल छंद में १६-७ मात्राएँ होती हैं, अंत में ऽ। रहता है। उपरिलिखित पंक्तियों में 'क' को डॉ० शुक्ल ने निश्चल का अर्द्धसम रूप माना है।[1] क्योंकि निराला ने एक चरण को दो पंक्तियों में लिखा है। एक चरण को दो पंक्तियों में लिख देने से ही कोई समछंद अर्द्धसम नहीं हो जाता। उसके लिए विषम चरण में पूर्ण यति की आवश्यकता होती है, जो उक्त पंक्तियों में नहीं है। अतः 'क' को अर्द्धसम छंद मानना ठीक नहीं। स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में पाई जाने वाली पंक्तियों के अतिरिक्त निराला-काव्य में निश्चय के केवल दो चरण 'युक्ति' कविता में चौपाई, शशिवदना तथा सरसी के साथ प्राप्त होते हैं।

(८२) हीर (२३ मा०)

कण-कण कर कंकण, प्रिय, किण् किण् रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज लौट रंकिणी।

—गीतिका : गीत ६

साथ-साथ नृत्य-परा कलि-कलि की अप्सरा,
ताल लताएँ देतीं करतल-पल्लव-धरा।

—गीतिका : गीत ६६

भानु के अनुसार हीर छंद में ६-६-११ मात्राएँ होती हैं। आदि में ऽ तथा अंत में रगण (ऽ । ऽ) रहता है।[2] डॉ० शुक्ल का कथन है कि पहले इसके अंत में रगण अनिवार्य माना जाता था। अब तगण के आधार पर पाँच मात्राएँ

---

१. आ० हिं० का० में छन्दयोजना, पृ० ३१२

२. छंदः प्रभाकर, पृ० ६२

प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार रगण की जगह तगण का आधार मान कर उन्होंने जो निम्न उदाहरण दिया है—

सोओ जग दृग तारक भूलो पलक-निपात,
चपल वायु सा मानस पा स्मृतियों के घात।[1]

वह निश्चल का उदाहरण हो गया है। हीर चामर (र ज र ज र) का मात्रिक रूप है। अतः उसके लिए भानु का लक्षण ही मान्य होना चाहिए।

हीर का प्रयोग हिंदी काव्य में बहुत कम हुआ है। अनेक छंदों के प्रयोग-कर्त्ता मैथिलीशरण ने भी इसे नहीं अपनाया। निराला में भी इसकी कुछ ही पंक्तियाँ मिलती हैं। उक्त चार पंक्तियों के अतिरिक्त 'अणिमा' के ३५ वें पद्य में ११ (अंतिम अनुच्छेद का छंद रोला है) तथा 'अनामिका' में ८ पंक्तियाँ (कविता के प्रति में ४, वसंत की परी के प्रति में ४) हीर की उपलब्ध होती हैं।

(८३) रोला (२४ मा०)

अमा निशा थी समालोचना के अंबर पर
उदित हुए जब तुम हिंदी के दिव्य कलाधर।
दीप्ति द्वितीया हुई/लीन खिलने से पहले
किंतु निशाचर संध्या के अंतर में दहले।

—अणिमा : १५ श्रद्धांजलि।

आधुनिक काल में रोला की ११-१३ वाली यति-व्यवस्था प्रायः लुप्त हो रही है। तीन अष्टकों से रोला के पाद-निर्माण पर नवीन कवियों का अधिक जोर है। निराला ने रोला का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में किया है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

परिमल—परलोक
नए पत्ते—देवी सरस्वती, तिलांजलि, परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति,
अणिमा—पद्य १५, १७, २०, २२
सांध्यकाकली—पृ० ८७

मिश्र प्रयोग के स्थल—

परिमल—खेवा (शृंगार, अहीर के साथ) तरंगों के प्रति (तमाल, सरसी, हाकलि के साथ)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २८६

वेला—गीत ८८ (विष्णुपद के साथ)

अणिमा—पद्य १६ (शक्ति पूजा की चार पंक्तियाँ—अपनी ही.........वही बात, पृ० १६) ३५ (हीर के साथ)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छन्द में लिखे गीतों तथा पद्यों में भी यत्र-तत्र गोला की पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यथा—

ढँके हृदय में स्वार्थ लगाए ऊपर चंदन। आदि।

—परिमल : रास्ते के फूल से, पृ० १३०

(८४) मंजुतिलकावली (२४ मा०)

हारी नहीं, देख, आँखें परी नागरी की।
+ +
नभ कर गई पार पाँखें परी नागरी की।
+ +
तरु की तरुण-तान शाखें; परी नागरी की।

—अनामिका : अपराजिता।

यह छंद मंजुतिलका के अंत में चार मात्राओं के योग से निर्मित हुआ है। इसकी केवल उक्त तीन पंक्तियाँ विध्वंकमाला के साथ उपलब्ध होती हैं।

(८५) रूपमाला (२४ मा०)

वहु सुमन, वहुरंग निर्मित एक सुंदर हार;
एक ही कर से गुँथा, उर एक शोभा-भार।
गंध शत अरविंद-नंदन विश्व-वंदन सार,
अखिल-उर-रंजन निरंजन एक अनिल उदार।

—गीतिका : गीत २२

रूपमाला का स्वतंत्र प्रयोग 'गीतिका' के तीन गीतों (२२, ४३, ५६) में हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

गीतिका—गीत १२ (मनोरम के साथ) ४७ (माधवमालती, रजनी के साथ)

अर्चना—गीत २१ (मनोरम के साथ)

अनामिका—तोड़ती पत्थर (पेंड वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार) आवेदन (गीतिका, मालिका के साथ)

(८६) दिगपाल (२४ मा०)

जीवन-प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा,
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा।

बाँधी थी मूठ मैं ने संचय की चिंतना से,
मुद्रा दरिद्र की है, तुमने किया इशारा।

—बेला : गीत २६

(रेखांकित वर्णों का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित)

दिगपाल छंद का प्रयोग केवल 'बेला' के तीन गीतों (२६, ८१, ८२) में हुआ है। उर्दू से आए हुए इस छंद का हिंदीकरण हो गया था। पर निराला के इन तीनों गीतों पर उर्दू का गाढ़ा रंग है।

(८७) शक्ति पूजा (२४ मा०)

निशि हुई विगत: नभ के ललाट/पर प्रथम किरण
फूटी रघुनंदन के दृग महि/मा-ज्योति-हिरण;
है नहीं शरासन आज हस्त/—तूणीर स्कंध,
वह नहीं सोहता निविढ-जटा/दृढ़ मुकुट-बंध।

—अनामिका : राम की शक्ति पूजा।

पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में ८ मात्राएँ जोड़ देने से यह छंद बन जाता है। अष्टमात्रापादी छंद चाहे मधुभार हो (जैसे उपर्युद्धृत पंक्तियों में है) अथवा तिलका या अखंड हो। (जैसे—साधना-मध्य भी साम्य— वाम/कर दक्षिण-पद) राधिका छंद के अंत में दो मात्राओं के योग से भी यह बन जाता है यथा—

वंदना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर।

यहाँ अंतिम 'सत्वर' और 'तत्पर' को क्रमश: 'द्रुत' और 'रत' कर दीजिए, पंक्तियाँ राधिका की हो जायँगी। डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने इस छंद का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार इसके चरण का निर्माण तीन अष्टकों के आधार पर हुआ है और अधिकांश अष्टक का स्वरूप ऽ ऽ । ऽ । है।[1] यह वही अष्टक है, जिसका उपयोग पद्धरि के चरण-निर्माण में होता है। जहाँ यह अष्टक नहीं रक्खा गया है, वहाँ लय प्रतिहत हो गई है और छंदोदोष आ गया है। यथा—

आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर।

यहाँ प्रारंभ में जिस अष्टक (ऽ । ऽ ऽ ।) का प्रयोग हुआ है, वह पद्धरि में नहीं रह सकता। निराला ने पद्धरि-पदपादाकुलक के आदि में त्रिकल रख कर इन

१. आ० हिं० का० में छंद योजना, पृ० २६०

दोनों छंदों को अनेक स्थलों पर विगाड़ दिया है। जब पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में मधुभार तिनका या अखंड के योग से इसका निर्माण होता है, तो इसके अंत में ऽ ।, । ऽ, (खींचते हुए, सींचते हुए पृ० १६१) । । और ऽ ऽ (फिर देखी भीमा मूर्त्ति आज रण देखी जो) सभी रह सकते हैं। डॉ० शुक्ल के अनुसार केवल ऽ । ही नहीं रह सकता। इस छंद के अंत में ऽ । मान लेने के कारण ही इसके विपरीत अंत वाली पंक्तियों के संबंध में उन्हें भ्रम हो गया और उन्हें उन्होंने रोला मान लिया। 'राम की शक्तिपूजा' में इस छंद के कुछ ही उदाहरण प्राप्त है, और अधिकांश चरण तो रोला के अंतर्गत आ जाते हैं।'[1] गत्यात्मक अंत वाली (ऽ ।) पंक्तियों से भिन्न अंत वाली पंक्तियों में रोला की लय एकदम नहीं है। छंदोदोष से युक्त पंक्तियाँ भी रोला की गण-व्यवस्था के अभाव में रोला की नहीं कही जा सकतीं। 'राम की शक्तिपूजा' आद्योपांत शक्तिपूजा छंद में असंदिग्ध रूप से निबद्ध है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं (अनामिका की 'वन-वेला' और 'अष्टम एडवर्ड के प्रति') की कुछ पंक्तियों में मिलता है।

इस छंद के आदि-प्रयोगकर्त्ता अपभ्रंश कवि पुष्पदंत है। निराला ने १९३६ में लिखित 'राम की शक्तिपूजा' में इसका प्रयोग किया। इसी छंद में रचित पंत की 'वाणी' कविता १९४० में लिखी गई है। १९४८ में प्रकाशित 'युगांतर' की इसी छंद में विरचित 'वह मानव क्या' के नीचे उसके रचना-काल का कोई निर्देश नहीं है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में निराला ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया है।[2] पंत के बाद बच्चन ने इस छंद को अत्यधिक सम्मान दिया। 'खादी के फूल' में बच्चन-द्वारा लिखित कविताओं में दो-चार को छोड़ कर प्रायः सभी कविताएँ इसी छंद में निवद्ध हैं।

(८८) चंचला मात्रिक (२४ मा०)

प्रतिपल तुम ढाल रहे सुधा-मधुर ज्योति-धार
मेरे जीवन पर, प्रिय यौवन-वन के बहार।
देख रहा हूँ अजान दूर ज्योति-यान-द्वार,

---

१. आ० हि० का० में छंद-योजना, पृ० २९०

२. [क] निराला जी इस छंद के निर्माता [?] हैं।
—आ० हि० का० में छंद योजना : डॉ० शुक्ल

[ख] हमें यह ज्ञात नहीं कि इसका प्रयोग दोनों में से [निराला, पंत] किसने पहले किया।— मिट्टी की ओर : दिनकर, पृ० ११५

अर्पित है चरणों पर मेरा यह हृदय-हार ।

—परिमल : पारस, पृ० ४४

त्रिकल के आधार पर चलने वाले २४ मात्रापादी इस छंद में १२-१२ पर विश्राम होता है और अंत में ऽ। रहता है । यह प्रा० पैं० में उल्लिखित वर्ण-वृत चंचला (र ज र ज र ल)[1] का मात्रिक रूप माना जा सकता है । यथा—

चंचला—कुंज बीच मोहि तीय ग्वाल बाँसुरी बजाय ।
चंचला सखी गई लिवाय आजु नंदलाल ।

——छंद:प्रभाकर, पृ० १७७

डॉ० शुक्ल ने उपर्युद्धृत 'परिमल' की पंक्तियों में शक्तिपूजा छंद मान कर गलती की है ।[2] शक्तिपूजा छंद अष्टक (ऽ ऽ । ऽ ।) के आधार पर चलता है, और यह त्रिकल-षट्कल पर आधारित है ।

उक्त कविता के अतिरिक्त निराला-काव्य में इसका प्रयोग 'बेला' के गीत ७६ की तीन पंक्तियों में प्राप्त होता है—

दूर हुए दुर्दिन के दु:ख, खुले बंद द्वार ।

(८६) सारस (२४ मा०)

(क) उठे स्वरोर्मियों-मुखर दिक् कुमारिका-पिक-रव ।

\+ \+ \+

दृग-दृग की बँधी सुछवि बाँधे सचराचर भव ।

—गीतिका, गीत ७८

(ख) खुले हुए भावों के झंडे फहराते हैं;
गली-गली गीत उन्हीं के लहरें खाते हैं ।

\+ \+ \+

(ग) पीठ न दी अरि को, नि:शरण किया मृत्यु-वरण,
इसी भाव से आया जीवन का सिंधु-तरण ।

——बेला : गीत ७६

त्रिकल के आधार पर चलने वाला २४ मात्रापादी जिस सारस छंद का उल्लेख भानु ने किया है,[3] उसके लक्षण में उन्होंने इतना ही बतलाया है कि

१. प्रा० पैं० २।१७२
२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० ३५६
३. छंद:प्रभाकर, पृ० ६५

इसमें १२-१२ पर यति होती है, और आदि में ऽ रहता है। पर उर्दू के जिस बहर (मुफ़्त अलन् मुफ़्त अलन् मुफ़्त अलन् मुफ्त अलन् = भ ग की चार आवृत्तियाँ) से इस छंद का साम्य दिखलाया है और जिसके अनुसार उन्होंने अपना उदाहरण गढ़ा है, वह गण-क्रम उपर्युद्धृत पंक्तियों में उपलब्ध नहीं होता। अतः उस लक्षण के अनुसार उक्त पंक्तियाँ सारस की नहीं कही जा सकतीं। पर यदि हम कुंडल, प्रणय आदि की तरह सारस को त्रिकल-षट्कल के आधार पर रचित मान कर भ ग के अनुसार इसके अंत में गुरु रखने की व्यवस्था कर देते हैं, तो उक्त सारी पंक्तियाँ ('क' और 'ग' के अंतिम दो लघु को एक गुरु मान लेने पर) सारस की हो जाती हैं। अंतिम गुरु के कारण चंचला से इसका भेद भी स्पष्ट हो जाता है।

निराला-काव्य में सारस का प्रयोग उक्त दो कविताओं के अतिरिक्त 'अनामिका' की 'कविता के प्रति' की अंतिम दो पंक्तियों में भी हुआ है—

कुछ न बना, कहो, कहो, उससे क्या भाव मिला ?

इसी अधार पर भगवतीचरण वर्मा की तीन कविताओं (काँपती हवा-सा; देखो-सोचो-समझो; चलना है बहुत कठिन)[1] में भी सारस छंद माना जा सकता है।

(९०) विष्णुपद (२६ मा०)

जीवन प्रात-समीरण-सा लघु विचरण-निरत करो।
मेरे गगन-मगन में में अयि किरणमयी, विचरो।
तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता छवि-मधु-सुरभि भरो।

—परिमल : प्रार्थना, पृ० ८

विष्णुपद का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नही हुआ। उक्त कविता में ये ही तीन पंक्तियाँ हाकलि, अखंड के साथ प्रयुक्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त निम्न गीतों के अनुच्छेद-निर्माण में इसकी पंक्ति पाई जाती है—

परिमल—गीत (पृ० १७—एक पंक्ति—फूट हरित पत्रों के उर से स्वर सरक छाए)
गीतिका—गीत १ (प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव भारत में भर दे)
गीत ४, १४
वेला— गीत ८८
गीतगुंज—पृ० ७५, ८४

---

१. द्रष्टव्य : मेरी कविताएँ, पृ० ५५-५६

सांध्यकाकली—गीत ४०, ४५

स्वच्छंद छंद में लिखी कविता में भी इसकी पंक्ति प्राप्त हो जाती है—

दाह-तपन-उत्तप्त दुःख-सागर-जल खौल उठा।

—परिमल, वन कुसुमों की शय्या, पृ० २२६

(६१) गीतिका (२६ मा०)

मन हमारा मग्न दुख की दुर्धरा में हो गया।
कुछ न था तव लग्न वह विश्वंभरा में हो गया।
इंद्र के अनुचर घनों ने प्रलय की, तो डूब कर
जन्म पाया जलधि में, फिर अप्सरा में हो गया।

—वेला : गीत ८७

गीतिका का स्वतंत्र प्रयोग 'वेला' के गीत ५८, ५६, ६०, ६६ तथा ८७ में हुआ है। गीतिका की लय से मिलती हुई एक उर्दू बहर है—फ़ायलातुन्, फ़ायलातुन, फ़ायलातुन्, फ़ायलुन्। सभी गीत इसी बहर को आधार मान कर लिखे गए प्रतीत होते हैं। क्योंकि ५८, ५६, ६० पर उर्दू का गाढ़ा रंग (गुरु का ह्रस्वोच्चारण) लक्षित होता है। ६६ और ८७ में गुरु को लघु पढ़ने की प्रवृत्ति तो दिखलाई नहीं पड़ती, पर शैली उर्दू की गजल-शैली ही है। मिश्र रूप में इसका प्रयोग निम्न स्थलों पर हुआ है—

गीतिका—गीत ६२ (मालिका के साथ)

आराधना—गीत ८६ (हरिगीतिका की एक पंक्ति)

अनामिका—वीणावादिनी (हरिगीतिका, पीयूषवर्षी) आवेदन (मालिका, ज्योति, रूपमाला)

स्वच्छंद छंद में भी इसकी पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं—

दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।

—परिमल : विधवा।

(६२) दिगंबरी (२६ मा०)

तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।

—परिमल : भिक्षुक, पृ० १०६

दिगंबरी का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार यह छंद सप्तक (। ऽ ऽ ऽ) की तीन आवृत्तियों और यगण (। ऽ ऽ) के योग से बनता है। उर्दू में यह बहर) मफ़ाईलुन्।मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन फ़ऊलुन्) अधिक प्रयुक्त होती है, पर हिंदी में यह नवीन प्रयोग है।[1] वस्तुतः विधाता छंद के अंतिम

1. आ० हि० का० में छंदयोजना : पृ० २८४

दीर्घ को हटा देने से इसका निर्माण हो जाता है। निराला-काव्य में इस छंद की यही एक पंक्ति मिलती है। पर यही यह सिद्ध कर देती है कि इस छंद का हिंदी में सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले निराला ही हैं, न कि दिनकर। अवश्य दिनकर ने 'दिगंवरी' कविता में इसका प्रयोग कर इसे एक छंद के रूप में प्रतिष्ठापित किया और उसी कविता के नाम पर इस छंद ने यह नाम पाया। आगे चलकर रामानंद तिवारी ने अपने महाकाव्य 'पार्वती'[1] में और प्रस्तुत लेखक ने 'सावित्री'[2] खंडकाव्य में दिगंवरी छंद का उपयोग किया।

(६३) सरसी (२७ मा०)

क्या है, कुछ भी नहीं, ढो रहा व्यर्थ साधना-भार,
एक विफल रोदन का है यह हार-एक उपहार;
भरे आँसुओं में है असफल कितने विफल प्रयास,
झलक रहा है मनोवेदना, करुणा, पर-उपहास।

—परिमल : क्या दूँ, पृ० १७०

सरसी का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त कविता में मिलता है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

परिमल—पतनोन्मुख (शृंगार, हाकलि, ताटंक के साथ) युक्ति (निश्चल, चौपाई, शशिवदना के साथ)
तरंगों के प्रति (रोला, तमाल, हाकलि)

गीतिका—गीत २६ (वीर, हंसगति, अहीर) ३४ (चौपाई, अहीर)

वेला—गीत ६६ (चौपाई के साथ)

अनामिका—प्रिया से (सार, चौपाई, ताटंक, महानुभाव) ज्येष्ठ (शृंगार, छवि, हंसगति) उद्बोधन (शृंगार) हताश (चौपाई, ताटंक, हाकलि, वीर)

(६४) सार (२८ मा०)

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका;
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल-कामिनी,
मेरे कुंज-कुटीर-द्वार की कोमल-चरण-गामिनी।

—अनामिका प्रिया से, पृ० ४२

---

१. पार्वती : कुमारदीक्षा सर्ग।

२. सावित्री : सर्ग ७, पृ० ११२-११५

पद-रचयिताओं तथा अनेक कवियों के प्रिय छंद सार का प्रयोग निराला ने बहुत कम किया है। इसका स्वतंत्र प्रयोग केवल गीतिका के गीत ४१ में प्राप्त होता है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

गीतिका—गीत २४ (तमाल, ताटंक, समानसवैया)

अणिमा—पद्य २ (अखंड, ताटंक, समानसवैया)

अर्चना—गीत ६६ (चौपाई के साथ)

गीतगुंज—पृ० ७ (चौपाई) ८४ (चौपाई, विष्णुपद)

अनामिका—प्रिया से।

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में लिखित कविताओं में सार की अनेक पंक्तियाँ पाई जाती हैं। सार के प्रयोग में निराला की एक विशेषता यह है कि उन्होंने इसके अंत में अपभ्रंश कवियो के समान रगण (ऽ। ऽ) भी रक्खा है। (देखिए—उक्त कविता की ३री और ४थी पंक्तियाँ) अपभ्रंश काव्य में द्विपदी (दुवई) के अंत में रगण का प्रयोग प्रायः देखा जाता है और इस द्विपदी का संबंध विद्वानों ने सार के साथ जोड़ा है।[1]

(६५) विधाता (२८ मा०)

तुम्हारी दृष्टि ही है,—ज्ञान से जकड़ा हुआ सागर,
मथा फिर देव-असुरों ने समझ कर रत्न का आकर,
पिया विष विष्णु के ही अर्थ शंकर ने अमरता-भर,
जहाँ से आय है निश्चित जहाँ से वृद्धि है व्यय की।

—अणिमा : पद्य ३३

विधाता का स्वतंत्र प्रयोग अणिमा (२६, ३३) तथा वेला (५३, ५४, ५५, ५६, ५७) में हुआ है। वेला के इन सभी गीतों पर भाषा और छंद दोनों दृष्टियों से उर्दू का गाढ़ा रंग है। अतः वे गीत उर्दू बहर—मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन् मफ़ाईलुन मफाईलुन् के आधार पर लिखे गए हैं। बच्चन सिंह ने 'वेला' के ५४वें गीत को जो 'फाइलातुन की ४ आवृत्तियों से बना बताया है, वह एकदम गलत है।[2] इसका मिश्रित प्रयोग निम्न स्थल पर मिलता है—

सांध्यकाकली—गीत ३७, ५५ (विजात के साथ) ५४ (विजात, सुलक्षण के साथ)

१. द्रष्टव्य : मात्रिक छंदों का विकास : डॉ० शिवनंदन प्रसाद, पृ० २८५
२. क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४८

(६६) हरिगीतिका (२८ मा०)

फिर भरा भादौ, धरा भीगी, नदी उफनाई हुई,
री, पड़ी जी की, प्राण-पी की सुधि न जो आई हुई।
कर फूलमाला-थाल, सखियाँ तीज पूजन को चली,
वर बजे बाजे, द्वार साजे, भक्ति से पति की गली।

—आराधना : गीत ६६

गीतिका की एक पंक्ति (२री) के अतिरिक्त उक्त गीत आद्योपांत हरिगीतिका में निबद्ध है। मिश्र प्रयोग के स्थल—

अनामिका—वीणावादिनी (गीतिका, पीयूषवर्षी के साथ) स्वच्छंद छंद में लिखी 'गीतगुंज' की 'पथ' नामक कविता में भी इसकी एक पंक्ति मिलती है। यथा—

दहशत तुम्हें क्या थी प्रकृति की इस उखाड़-पछाड़ की ?

(६७) माधवमालती (२८ मा०)

गीत गाने दो मुझे तो, वेदना को रोकने को।
चोट खा कर राह चलते होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-ठाकुरों ने रात लूटे,
कंठ रुकता जा रहा है, आ रहा है काल, देखो।

—अर्चना : गीत ५६

माधवमालती का स्वतंत्र प्रयोग 'गीतिका' (गीत ८६) 'बेला' (गीत ६, ४६) नए पत्ते (कालीमाता) अणिमा (२७, ३१, ४२) तथा अर्चना (गीत ५६) में हुआ है। मनोरम के साथ इसके मिश्रित प्रयोग की चर्चा पीछे मनोरम के प्रसंग में हो चुकी है। 'गीत-गुंज' में भी इसकी पंक्ति मिलती है। यथा—

दूध पीते छिन गया बच्चा अभी जिस शेरनी का।

माधवमालती छंद के उद्भावक तो सूरदास हैं, पर आधुनिक युग में इसका प्रथम प्रयोग कामायनी, गीतिका और नीरजा में हुआ है। कामायनी का आमुख सं० १६६२ में (१६३५ ईस्वी), गीतिका की समीक्षा (नंददुलारे वाजपेयी द्वारा) सन् १६३६ में और नीरजा का वक्तव्य (कृष्णदास द्वारा) सं १६६१ (सन् १६३४ ईस्वी) में लिखे गए है। इस आधार पर यह कहा जा सकता था कि आधुनिक युग में इसका सर्वप्रथम प्रयोग महादेवी ने किया है। पर 'नीरजा' के गीत ७ के नीचे उसका रचना-काल नहीं दिया गया है। संभव है, यह गीत १६३४ के पूर्व लिखा गया हो। पर 'नवीन'

की इसी छंद में लिखित 'मिट गए हैं चित्र मेरे' सन् १६३१ में लिखी गई है, यह निश्चित है।[1]

(६८) विशुद्धगा (३० मा०)

एक दिन थम जायगा रोदन तुम्हारे प्रेम-अंचल में,
लिपट स्मृति वन जायँगे कुछ कन-कनक सींचे नयन-जल में।
फिर मिटेगा स्वप्न भी निर्धन गगन-तम-सा प्रभा-पल में,
या अपरिचित खोल प्रिय चितवन मगन वह जावगे पल में।

—परिमल : निवेदन, पृ० ६

विधाता के आदि में दो मात्राओं के योग से इस छंद का निर्माण हुआ है।[2] दिनकर का यह कथन विलकुल ठीक है। टेक-रूप में प्रयुक्त विजात की दो पंक्तियाँ (तुम्हारे प्रेम अंचल में, परमप्रिय-सँग अतल जल मे) की संगति के लिए ऐसा कहना उचित ही है। पर गीतिका के अंत में चार अथवा माधवमालती के अंत में दो मात्राओं को जोड़ देने से भी यह वन जाता है। निराला-काव्य में इस छंद की केवल चार पंक्तियाँ उक्त पद्य मे रजनी, मालिका तथा पीयूषवर्षी के साथ प्रयुक्त हुई है। भिखारीदास के यहाँ भानु का विधाता शुद्धगा नाम से उल्लिखित है।[3] अतः इसका नाम विशुद्धगा रक्खा गया है।

(६६) हरिगीतामृत (३० मा०)

ठहरो अहा ! मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा।

—परिमल : भिक्षुक, पृ० १०८

निराला के संपूर्ण काव्य में इस छंद की यही एक पंक्ति मिलती है। इसका निर्माण हरिगीतिका के अंत में एक गुरु रखने से हुआ है। इस एक पंक्ति के द्वारा निराला ने एक नूतन छंद की संभावना प्रकट की है, यद्यपि दिगंवरी की तरह इसे किसी कवि ने विशेष रूप से नहीं अपनाया। पर नरेन्द्र शर्मा ने कम-से-कम एक कविता को इसमें निवद्ध किया। यथा—सुनसान मेरा देश यह मरुदेश है, है दूर सागर।

— मिट्टी और फूल : निर्वासित।

---

१. द्रष्टव्य : हम विषपायी जनम के : वाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' पृ० ६३३
२. मिट्टी की ओर : दिनकर, पृ० ११३
३. छंदार्णव ६/४२-४३ (यगन गुरु करि चौगुनो छंद शुद्धगा होइ) पृ० २२१

(१००) चतुष्पद (३० मा०)

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।

—परिमल : भिक्षुक, पृ० १०७

सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में ।

—परिमल : संध्या सुंदरी, पृ० ११०

यह वाणी थी उसके सुहाग की प्रेममयी रानी की ।

—परिमल : वनकुसुम की शय्या, पृ० १२८

जब किसी पथिक को इधर कभी आते जाते पाते हो ।

—परिमल : रास्ते के फूल से, पृ० १२६

भिखारी दास-द्वारा उल्लिखित चतुष्पद में १६-१४ पर यति देकर ३० मात्राएँ होती है ।[1] यह पद्धरि-पदपादाकुलक और सखी के एक-एक चरण के योग से बना है । मत्तसवैये के अंतिम गुरु को निकाल देने से भी इसका निर्माण हो जाता है । मैथिलीशरण ने 'जयभारत' की 'हत्या' में इसका प्रयोग किया है । निराला-काव्य में इसकी पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में प्राप्त होती है ।

(१०१) ताटंक (३० मा०)

कहाँ छलकते अब वैसे ही ब्रजनागरियों के गागर ?
कहाँ भींगते अब वैसे ही बाहु, उरोज, अधर, अंबर ?

—परिमल : यमुना के प्रति, पृ० ३३

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए ।

- परिमल : भिक्षुक, पृ० १०८

पंत के 'पल्लव' की अनेक कविताओं में प्रयुक्त ताटंक का प्रयोग निराला ने स्वतंत्र रूप से कहीं नही किया । वीरछंद-निबद्ध 'यमुना के प्रति' में ताटंक की उक्त एक अर्द्धाली मिलती है । मिश्र प्रयोग के अन्य स्थल—

परिमल—पतनोन्मुख (शृंगार, हाकलि, सरसी के साथ)

गीतिका—गीत ११ (चौपाई, हाकलि) २० (हाकलि) २४ (तमाल, सार, हंसगति)

अणिमा—१ (हाकलि, चौपाई) २ (अखंड, सार, समानसवैया)

अर्चना—गीत ११२ (चौपाई)

---

१. छंदार्णव, ५।२२५

आराधना—गीत २५ (चौपाई, पद्धरि)

अनामिका—प्रेम के प्रति; सखा के प्रति (वीर से साथ) प्रिया से (सार, चौपाई, महानुभाव, सरसी) हताश (चौपई, सरसी, हाकलि, वीर)

(१०२) वीरछंद (३१ मा०)

कठिन शृंखला बजा-बजा कर गाता हूँ अतीत के गान,
मुझ भूले पर उस अतीत का क्या ऐसा ही होगा ध्यान ?
शिशु पाते हैं माताओं के वक्षस्थल पर भूला गान,
माताएँ भी पातीं शिशु के अधरों पर अपनी मुसकान ।

—परिमल : आदान-प्रदान

वीर छंद का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग—

परिमल—आदान-प्रदान, यमुना के प्रति (ताटंक की एक अर्द्धाली)

अनामिका—नाचे उस पर श्यामा ।

मिश्र प्रयोग—

परिमल—प्रिया के प्रति (समानसवैया, चौपाई, महानुभाव, सखी, हंसगति, तमाल)

गीतिका—गीत २६ (हंसगति, सरसी, अहीर)

अनामिका—प्रेम के प्रति; सखा के प्रति (ताटंक के साथ) हताश (चौपई, सरसी, हाकलि, ताटंक)

(१०३) समान सवैया (३२ मा०)

जहाँ हृदय में बालकेलि की
कला कौमुदी नाच रही थी,
किरण बालिका जहाँ विजन-
उपवन-कुसुमों को जाँच रही थी ।
जहाँ वसंती-कोमल-किसलय-
वलय-सुशोभित कर बढ़ते थे,
जहाँ मंजरी-जय-किरीट वन
देवी की स्तुति कवि पढ़ते थे ।

—अनामिका : अनुताप, पृ० ४०

समानसवैये का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त कविता में पाया जाता है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

परिमल—प्रिया के प्रति
गीतिका—गीत १३, ३८, ४०, ५०, ७४, ८३ (चौपाई के साथ)
अणिमा—पद्य २, ४
अर्चना—गीत ४, १७, ४८ (चौपाई के साथ)
आराधना—गीत २४, ५०, ५७, ७२, ७३, ७४ (चौपाई)
गीतगुंज—पृ० ६२, ६७, ८०, ८६ (चौपाई)

(१०४) मत्तसवैया (३२ मा०)

आकर्षण के अभियानों के
गति-क्रम को जब वे तोड़ चुके।
× ×
वे उस सुख से हट कर, एक कर
निश्छल अपने मुख मोड़ चुके।
× ×
उनकी मानवता से दानव
अपना जीवन-क्रम जोड़ चुके,
× ×
संसृति की रक्षा के न रहे,
वे अपनी रेखा गोड़ चुके।

—वेला : गीत ७८

छायावाद-युग में विशेष प्रचलित मत्तसवैये का प्रयोग निराला ने बहुत कम किया है। उक्त पद्य में पद्धरि-पदपादाकुलक के साथ बस इतनी ही पंक्तियाँ इसकी मिलती हैं। इसके अतिरिक्त 'अर्चना' (गीत ४७) में एक अर्द्धाली (प्रथम चार पंक्तियाँ) और 'अनामिका' (वनवेला) में मधुभार, पद्धरि, पदपादाकुलक, शक्तिपूजा के साथ दो पंक्तियाँ इसकी देखी जाती हैं।

मिश्र छंद

(१०५) छप्पय (रोला + उल्लाला)

लहर रही शशिकिरण चूम निर्मल यमुना-जल,
चूम सरित की सलिलराशि खिल रहे कुमुद दल,
कुमुदों के स्मिति-मंद खुले वे अधर चूमकर
वही वायु स्वच्छन्द, सकल पथ घूम घूमकर,
है चूम रही इस रात को वही तुम्हारे मधु अधर

जिनमें हैं भाव भरे हुए सकल शोक संतापहर।

—अनामिका : चुंबन

निराला के संपूर्ण साहित्य में छप्पय का केवल उक्त पद्य उपलब्ध होता है।

वर्णिक मुक्तक

(१०६) अर्चना (१६ अक्षर)

बीत चुका शीत, दिन वैभव का दीर्घतर
डूब चुका पश्चिम में, तारक-प्रदीप-कर
स्निग्ध-शांत-दृष्टि संध्या चली गई मंद मंद
प्रिय की समाधि-ओर, हो गया है रव बंद।

× ×

स्वर्ग त्यों धरा से श्रेष्ठ, बड़ी देह से कल्पना.

× ×

चाहते हो जिसे तुम—पक्षी वह या कि पाँखे।

—अनामिका : नर्गिस, पृ० १८७

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने अपने द्वारा रूपघनाक्षरी के उत्तरांश को लेकर किए गए ऐसे प्रयोग (उक्त पद्यांश की तीसरी-चौथी पंक्तियाँ) की चर्चा कर उसका नाम अर्चना रक्खा है।[1] मैथिलीशरण-द्वारा प्रयुक्त मिताक्षरी छंद (मनहरण के चरण का उत्तरांश) के बीच गलात्मक (ऽ ।) अंतवाली पंक्तियों के अतिरिक्त द्विलघ्वंत (। ।) पंक्तियाँ भी मिलती हैं। (जैसे उपरिलिखित पंक्तियों में पहली और दूसरी) जो जलहरण का उत्तरार्द्ध है। निराला ने लगात्मक (। ऽ) अंत वाली (पाँचवी पंक्ति) तथा द्विगुर्वंत (छठी पंक्ति) पंक्तियों का भी प्रयोग किया है। ये दोनों पंक्तियाँ कवित्त (मनहरण, रूपघनाक्षरी अथवा जलहरण) का पूर्वांश मानी जा सकती हैं। छंदों की संख्या में व्यर्थ वृद्धि नहीं कर १६ वर्णवाले ऐसे सभी चरणों को अर्चना-निबद्ध मान लेना ही ठीक है। अर्चना छंद में केवल उक्त कविता ही लिखी गई है।

(१०७) मदनहर घनाक्षरी (३२ अक्षर)

सूर्य भी नहीं है, ज्योति सुंदर शशांक नहीं,
छाया सा व्योम में वह विश्व नजर आता है।

---

१. आ० हि० का० में छन्द योजना, पृ० १६६।

कहते है। पर शास्त्रीय नियमों से बद्ध तथा अनुशासित स्वच्छन्द छन्द में वह मुक्ति दिखलाई नहीं पड़ती, जो मुक्त छन्द के लिए अपेक्षित है। अतः इसे मुक्त छन्द नही कहकर स्वच्छन्द छन्द कहना ही समुचित प्रतीत होता है। इस स्वच्छन्द की भी, अध्ययन की सुविधा के लिए, दो कोटियाँ मानी जा सकती है—

(१) जिसमें किसी एक छन्द के लयाधार पर चलने वाले शास्त्रीय तथा नवनिर्मित छन्दों का विनियोग होता है। यथा—

(क) वैभव विशाल·········मधुभार
साम्राज्य सप्त-सागर-तरंग-दल-दत्त माल——शक्तिपूजा
है सूर्य क्षत ·········मधुभार।
मस्तक पर सदा विराजित
लेकर आतपत्र } शक्तिपूजा
विच्छुरित छटा·········तिलका मात्रिक
जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी-विपुल घटा, } शक्तिपूजा
——अनामिका : सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति।

इस छन्द का आधार पद्धरि-पदपादाकुलक है। मधुभार और तिलका उन्ही का अर्द्ध और शक्तिपूजा उन्हीं का ड्योढ़ा चरण है।

(ख) कितने वन-उपवन-उद्यान कुसुम-कलि सजे
निरुपमिते, सहज भार-चरण-चार से लजे; } हीर
गई चंद्र-सूर्य-लोक
ग्रह-ग्रह प्रति गति अरोक } —लीला
नयनों के नवालोक से खिले——अणिमा
चित्रित वह धवल धाम
अलका के-से विराम } लीला
सिहरे ज्यों चरण वाम जब मिले।——अणिमा
——अनामिका : कविता के प्रति।

इस छन्द का आधार लीला है। लीला के अंत में दो त्रिकल और एक पंचक के योग से हीर बना है। और उसी के अंत में एक पंचक जोड़ देने से अणिमा का निर्माण हुआ है। इन दोनो छन्दों को क्रमशः पद्धरि-पदपादाकुलक

और लीला का स्वच्छन्द प्रयोग भी कह सकते हैं। ऐसे स्वच्छन्द छन्द के प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

परिमल (खंड २)—भर देते हो, स्वागत, ध्वनि, कण।

अनामिका—एडवर्ड अष्टम के प्रति (आधार-पद्धरि) वनवेला (पद्धरि का आधार) कविता के प्रति (लीला का आधार) तोड़ती पत्थर (मूल छन्द—मनोरम, रूपमाला; दो एक पंक्तियाँ मधुमालती आदि की, जो ऽ ऽ । ऽ पर आधृत है) सेवा-प्रारंभ, नारायण मिले, मेरी छवि ला दी।

कुकुरमुत्ता–कुकुरमुत्ता (१) प्रारम्भ से–मुझी से चुराया तक (प्र०१-११)
सर सभी का·······मै ही वड़ा (पृ० १३)
कुकुरमुत्ता (२) वाग के वाहर······ वसीलीई पड़ रहीं (पृ० १४-१५)
(मूल छंद-मनोरम) उर्दू का गाढ़ा रंग–अनेक गुरु वर्णों का ह्रस्वोच्चारण।

अणिमा—पद्य १८ (पद्धरि-पदपादाकुलक का आधार) तोरण-तोरण ······पृथ्वी-मर्दन (पृ० २६–चौपाई का आधार) २८ (लीला का आधार)

अर्चना—गीत ६२ (आधार–चौपाई)

(२) जिसमें कवि एक छन्द या एक वर्ग के छन्द तक ही अपने को आवद्ध नहीं कर भिन्न वर्गों के छन्दो के विनियोग में भी स्वच्छन्दता ग्रहण करता है। इसमें प्रथम की अपेक्षा अधिक स्वच्छन्दता रहती है। यथा—

मेरे घर से निकल चले वढ़ते हुए······(चांद्रायण)
उस अजान की ओर/तुम्हारा छोर असीम अनंत (अहीर + शृंगार)
कहीं-कहीं जव देखा कोई द्वार······(तमाल)
दीन हीन मुझ ऐसे का घर वार······(,,)
तो ठहर गए, तुम गए अतः/अड़ते हुए······(पदपादा० + सुगति)
और नहीं सीधे पहुँचे तुम उस अनंत के घर में–(सार)
धोखा खाया तुमने भी क्षण भर में······(हंसगति)

× ×

दहशत तुम्हें क्या थी प्रकृति की इस उखाड़-पछाड़ की ? (हरिगीतिका)
दूध पीता छिन गया बच्चा अभी जिस शेरनी का (माधवमालती)

माँद से उसकी कठोर दहाड़ की ?……(पीयूषवर्षी)

—गीतगुंज; पथ, पृ० ६८

प्रयोग स्थल—

परिमल (खंड १) बदला

,, (खंड २) उक्त चार के अतिरिक्त सभी कविताएँ।

गीतिका—गीत २१, २३, ३५

बेला—गीत ३०, ३१, ६७

नए पत्ते—खून की होली, गर्म पकौड़ी, प्रेम-संगीत

अणिमा—पद्य ५, ६, १२

अर्चना—गीत १८, ३३, ४६

आराधना—गीत ६६

गीतगुंज—पृ० ६०, ६८

अनामिका—प्रलाप, प्रगल्भ प्रेम, क्या गाऊँ, संतप्त, तट पर, कहाँ देश है, क्षमा-प्रार्थना, किसान की बहू, प्रकाश, प्राप्ति।

इन स्वच्छन्द छन्द में लिखी कविताओं में निम्नांकित पंक्तियाँ ऐसी हैं, जिनमें कोई शास्त्रीय छन्द नहीं बतलाया जा सकता—

(क) अपार कामनाओं के प्राण-परिमल : बादल राग (२)

(ख) अधीर विक्षुब्ध ताल पर ,, ,, (४)

(ग) मेरी जीभ जल गई (१२ मा०)
(घ) कंजूस ने यों कौड़ी (१३ मा०)
(ङ) अरी, तेरे लिए छोड़ी (१४ मा०)
(च) मैंने घी की कचौड़ी (१३ मा०)
} नए पत्ते : गर्म पकौड़ी

(छ) जात की कहारिन वह (१२ मा०)
(ज) रोज आकर जगाती है सब को (१८ मा०)
(झ) मैं ही समझता हूँ इस ढब को (१७ मा०)
} नए पत्ते : प्रेमसंगीत

(ञ) जिसने किया है किनारा (१४ मा०) —अर्चना : गीत ४६

यदि इन में 'क' और 'ख' के प्रथम शब्दों को जल्दी से पढ़ कर तीन मात्राओं के मानें, या इन दोनों के प्रथम वर्ण 'अ' को अनुच्चरित (Silent) समझें, तो ये दोनों पंक्तियाँ क्रमशः चौपाई (१५ मा०) और शृंगार-कल्प (१३ मा०) की हो जाती हैं। इसी प्रकार 'ङ' में शृंगार-कल्प माना जा सकता है, यदि हम 'लिए' के 'ए' का लघूच्चारण करें।

'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेम-संगीत' की, उपर्युद्धृत पंक्तियों के अतिरिक्त, शेष पंक्तियाँ किसी-न-किसी छन्द में आबद्ध हैं। इसी आधार पर इनमें स्वच्छन्द छन्द मान लिया गया है। पर ये दोनों गद्यात्मक कोटि में भी रक्खी जा सकती हैं।

ऐसे स्वच्छन्द छन्द का पूर्ण विश्लेषण (प्रत्येक चरण का छन्दोनिर्धारण) एक स्वतंत्र पुस्तक की अपेक्षा रखता है। इस लघु-कलेवर प्रबंध में वैसा करना संभव नहीं। ऊपर के दो-एक उदाहरण दिग्दर्शन मात्र हैं; पर उन्हें निराला के समस्त ऐसे छन्दों के विश्लेषण का बल प्राप्त है, इसमें कोई संदेह नहीं।

मुक्त छन्द

मुक्त छन्द सारे शास्त्रीय बंधनों को अस्वीकार करता है। 'उनमें नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप-ही-आप आ जाते है। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-साहित्य उसकी मुक्ति।'[१] निराला के इस कथन में दो बातें विशेष रूप से ध्यातव्य हैं। ऐसी नियम-रहित रचना में भी छन्द इसलिए मानना है कि इसमें प्रवाह है—लय है। अतः लय-रहित रचना छन्दोबद्ध नहीं मानी जा सकती। और यह लय-प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है। तात्पर्य इसका प्रवाह कवित्त की लय पर पूर्ण रूप से अवलंबित नहीं। पूर्ण रूप से अवलंबित होने पर यह शास्त्रीयता के बंधन में आ जाता। यह कवित्त की लय का हलका आभास देता हुआ—एक क्षीण गूंज ध्वनित करता हुआ अग्रसर होता है। इसीलिए निराला के मुक्त छन्द में कवित्त के चरण का विषम-विषम-सम शब्दों का संयोग कतिपय स्थलों पर घटित नहीं होता। और प्रायः ऐसे ही स्थलों को देख कर डॉ० शुक्ल को वर्णिक मुक्त छन्द में एक और प्रकार-अक्षर मात्रिक मुक्त छन्द की कल्पना करनी पड़ी।[२] और पंत को लिखना पड़ा-'उनके (निराला के) कुछ (छन्द) इस प्रकार मिश्रित हैं कि उनमें कोई भी नियम नहीं मिलता।'[३] दो उदाहरणों से दोनों की बातें सहज ही समझ में आ जायँगी तथा मुक्त छन्द के दोनों भेद—शुद्ध और मिश्रित-भी स्पष्ट हो जायँगे।

---

१. परिमल : भूमिका, पृ० १३

२. आ० हि० का० में छन्दयोजना, पृ० ४२३

३. पल्लव : प्रवेश, पृ० ४९

१५

(क) शुद्ध मुक्त छन्द—

विजन वन् वल्लरी पर..........................(८ वर्ण)
सोती थी सुहाग भरी / स्नेह स्वप्न मग्न..........(८ + ६)
अमल कोमल तन / तरुणी जुही की कली..............(१६)
दृग बन्द किए / शिथिल पत्रांक में,...................(६ + ७)
वासंती निशा थी.......................................(६)
विरह-विधुर प्रिया / संग छोड़...........................(१२)
किसी दूर देश में था / पवन............................(८ + ३)
जिसे कहते हैं मल / यानिल..............................(८ + ३)
आई याद विछुड़न् से / मिलन् की वह् मधुर् बात.....(१६)
आई याद चाँदनी की / धुली हुई आधी रात,..........(१६)
आई याद कांता की कंपित् कमनीय गात.....(१६; कानता)
फिर क्या पवन..(६)
उपवन सर सरित् / गहन् गिरि कानन्..............(८ + ६)
कुंज लतापुंजों को / पार कर..........................(७ + ४)
पहुँचा / जहाँ उसने की केलि..........................(३ + ८)
कली खिली साथ।......................................(६)

—परिमल : जुही की कली

ऐसे छन्दों में पंत जी को कवित्त का विषम-विषम-सम वाला नियम दिखलाई नहीं पड़ा। पर कवि ने इसमें पाठ-कला (Art of reading) के आधार पर अनेक वर्णो का हलंत के समान और संयुक्ताक्षर का पूर्ण व्रर्ण के समान उच्चारण कर कवित्त के अष्टकादि का रूप स्थिर किया है। इस प्रकार इसमें आद्यन्त नियम का पालन दिखलाई पड़ता है।

(ख) मिश्रित मुक्त छंद—

बंद कंचुकी के सब/खोल दिए प्यार से...........(८ + ७ वर्ण)
यौवन-उभार ने......................................(७ वर्ण)
पल्लव-पर्यङ्क पर/सोती शेफालि के।...............(८ + ६)
मूक आह्वान-भरे/लालसी कपोलों के......(८ + ७ आहवान)
व्याकुल विकास पर.................................(८)
झरते हैं शिशिर से चुंबन गगन के।...............(८ + ७)
जागती प्रिया के न/क्षत्र-दीप कक्ष में..........(८ + ७ नकक्षत्र)

वक्ष पर सतरण-/आशी आकाश है,………………(८ + ६)
पार करना चाहता…………………(१२ मात्रा, मालिका)
सुरभिमय समीर लोक,…………………(१२ मा० तांडव)
शोक-दु:ख-जर्जर् इस/नश्वर संसार की………(८ + ७ : वर्ण)
पहुँच कर प्रणय-छाए…………………………(८ वर्ण : प्रर्ण)
अमर विराम के…………………………………(७ वर्ण)
सप्तम सोपान पर।……………………………… (८ ")
पाती अमर प्रेम-धाम,……………………………(८ ")
आशा की प्यास एक/रात में भर् जाती है,….(८ + ७ व०पियास)
सुवह/को आली, शोफाली भर जाती है।…………(३ + ११ वर्ण)

—परिमल (शेफालिका)

'जुही की कली' वाली स्वतंत्रता तो इसमें ली ही गई है, साथ ही इसमें मात्रिक छंदों के चरण भी विनियोजित हैं। इस प्रकार इसमें वर्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के लय-खण्डों का योग है। अत: यह मिश्रित मुक्त छंद का उदाहरण है। ऐसे ही छंदों को डॉ० शुक्ल अक्षर मात्रिक मुक्त छंद कहते हैं।
प्रयोग स्थल—

परिमल (खंड ३)—संपूर्ण
वेला—पद्य ४४
नए पत्ते—रानी और कानी, खजोहरा, मास्को डायेलाग्स, आँख आँख का काँटा हो गई, थोड़ों के पेट में वहुतों को आना पड़ा, राजे ने अपनी रखवाली की, दगा की, चर्खा चला, तारे गिनते रहे, स्फटिक शिला, कुत्ता भौंकने लगा, झींगुर डट कर वोला, छलाँग मारता चला गया, डिप्टी साहव आए, कैलास में शरत्, महगू महगा रहा।
कुकुर मुत्ता (१) रस से मैं डूवा……………छत्ते को हैं घेरे तक (पृ० ११–१३)
(२) रहते थे नव्वाव…………अन्त तक (पृ० १५–२८)
अणिमा—उद्बोधन, स्वामी विवेकानंद जी, ३२,३८,३६,४०, ४३,४४
आराधना—पद्य ८६ (हारता है मेरा मन)
गीतगुंज—पृ० १०० (नील आकाश पर)

सांध्यकाललो--पृ० ८५ रहो तुम

अनामिका---प्रेयसी, खँड़हर के प्रति, यहीं, दिल्ली, रेखा, गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को, नासमझी, ठूँठ ।

मुक्त छंद में रची उपरिलिखित कविताओं के अतिरिक्त निम्नांकित एक रचना ऐसी भी मिलती है, जिसमें किसी अभीष्ट लय की प्राप्ति नहीं होती ।

सारी संपत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो,
वाद से विवाद यह ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ ।

---वेला : ६२

इसके अतिरिक्त 'नए पत्ते' की मुक्त छंद में लिखी कतिपय कविताओं में भी कहीं-कहीं ऐसी ही गद्य-भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसमें पंक्तियाँ लय-विहीन-सी प्रतीत होती हैं । वस्तुतः हिन्दी के छंद गद्य के स्तर पर उस सफलता के साथ नहीं उतर सकते, जिस सफलता के साथ अंग्रेजी के छंद । इलियट के अनुकरण पर लिखी गई प्रयोगवादी रचनाओं की लय-विहीनता का यही मूल कारण है । निराला की ऐसी रचनाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद के अंतर्गत जिस लय-विहीन कविताओं का प्रचलन हुआ, उसके सूत्रधार भी निराला ही थे ।

उर्दू के छंद

अनेक हिंदी छंदों के प्रयोग और अनेक नूतन छंदों के निर्माण के बाद भी जब निराला का मन नहीं भरा, तो वे उर्दू बहरों पर उतर आए । 'बढ़ कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें फारसी के छंदः-शास्त्र का निर्वाह किया गया है ।'[1] उर्दू बहरों में कुछ तो ऐसी हैं, जिन्होंने अब हिन्दी में अपनी जगह बना ली हैं, सुमेरु, दिगपाल, विधाता आदि छंद ऐसे ही हैं, जिनकी चर्चा पीछे हो चुकी है । इनके अतिरिक्त निराला ने और भी अनेक उर्दू बहरों में कविताएँ लिखी हैं; जिनकी चर्चा नीचे की जाती है ।

गई निशा वह, हँसी दिशाएँ,
खुले सरोरुह, जगे अचेतन,

१. वेला : आवेदन

वही समीरण जुड़ा नयन-मन
उड़ा तुम्हारा प्रकाश-केतन।

—गीतिका : गीत ५६

डॉ० शुक्ल ने उक्त पद्य में 'फऊल फेलुन फऊल फेलुन' बहर बतलाई है और इसे विहंग नाम दिया है।[1] निराला के पूर्व इस बहर में हिंदी-रचना श्रीधर पाठक,[2] हरिऔध,[3] माधव शुक्ल,[4] मन्नन द्विवेदी[5] तथा प्रसाद[6] कर चुके थे। इस प्रकार उर्दू की इस बहर ने अब दिगपाल, सुमेरु, विधाता आदि की तरह एक प्रकार से हिन्दी में अपना स्थान बना लिया है। अतः ऐसी बहर को हिंदी नाम देना उचित ही माना जायगा। पर डॉ० शुक्ल ने संभवतः सिर्फ 'बेला' के दो गीतों में ही प्रयुक्त उर्दू बहरों को भी हिंदी नाम दिए हैं, जिनका विवेचन आगे किया जाता है।

हाथ मा/रते फिरे/कहाँ के हैं,
ये गफ़ल/त से घिरे/जहाँ के हैं।
अपनी तरणी तिरे यहाँ के हैं
इनसे जैसा चाहे कह ले।

—बेला : गीत ३६

डॉ० शुक्ल ने उक्त प्रयोग को पुराण नाम दिया है और इसकी उर्दू बहर फायलुन, मुफ़ायलुन, मुफायलतुन बतलाई है।[7] भानु ने हिंदी के गण और उर्दू के अरकान का जो तुलनात्मक कोष्ठक प्रस्तुत किया है,[8] उसके अनुसार इस बहर को र ज ग ज ल ग के आधार पर चलना चाहिए। पर यह गण-व्यवस्था उपरिलिखित पंक्तियों पर घटित नहीं होती। प्रथम दो पंक्तियाँ तो फायलुन, मुफ़ायलुन, मुफ़ायलुन अर्थात् र ज ग ज ग के आधार पर चलती दिखलाई पड़ती हैं। शेष दो पंक्तियाँ तो इस बहर पर भी गठित नहीं हुई हैं।

१. आ० हि० का० में छंदयोजना; पृ० २६७
२. कविता-कौमुदी, खंड २, सुसंदेश, पृ० ११९
३. वैदेही वनवास, सर्ग ७
४. कविता-कौमुदी : पद्य (३), पृ० ३६८
५. वही, उद्बोधन, पृ० ४२४
६. स्कंदगुप्त, पृ० १८
७. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७२
८. छन्दःप्रभाकर, पृ० २४३

बेला—गीत १०, १५, १६, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २८, ३६, ४८, ५०, ७३, ७५, ७६, ७७, ८३, ८४, ८५, ८६

नए पत्ते—खुशखबरी, पंचक

अणिमा—गीत ३२

सांध्यकाकली—२७, ३०, ५६, ६४

छायावाद द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ था। यह प्रतिक्रिया, कुछ दूर तक, छंद के क्षेत्र में भी परिलक्षित होती है। निराला की प्रथम पुस्तक 'परिमल' में इसका स्पष्ट आभास दिखलाई पड़ता है। इसके द्वितीय और तृतीय खंड में प्रयुक्त क्रमशः स्वच्छंद और मुक्त छंदों के द्वारा तो निराला ने शास्त्रीय छंदों को एक झटका दिया ही, उसके प्रथम खंड में भी छंदों की कारा में बँधी कविता को मुक्त साँस लेने का अवसर प्रदान किया। इस खंड की केवल सात कविताएँ (परलोक, भ्रमरगीत, वासंती, नयन, माया, अध्यात्मफल, जागो, क्या दूँ, आदान-प्रदान) आद्योपांत किसी एक छंद में लिखी गई हैं। और तीन (यमुना के प्रति, जलद के प्रति, वसंत-समीर) वीर-ताटंक मे निवद्ध है। शेष सारी कविताओं में कवि ने भावानुसार अनेक छंदों का विनियोग किया है, जिनमें प्राचीन और नवीन दोनों हैं। इस तरह यहाँ भी लक्षण ग्रन्थों के द्वारपालों को 'प्रवेश निषेध' कहने की जरूरत कहीं-कहीं आ जाती है।[1] प्राचीन छन्दों में कुछ तो प्रचलित हैं, और कुछ ऐसे हैं, जिनका प्रयोग द्विवेदी-युग में बहुत कम हुआ है। इस पुस्तक में न तो कोई कविता उर्दू बहर में लिखी गई है और न किसी वर्णवृत्त का प्रयोग हुआ है। द्विवेदी-युग की बहु-प्रचलित गीतिका और हरिगीतिका भी यहाँ नहीं मिलती। कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि का भी कही पता नहीं। इसीलिए इस पुस्तक मे निराला प्रसाद के विपरीत लोगों को विलकुल अभिनव-से प्रतीत हुए। जब प्रतिक्रिया की आँधी का वेग कुछ कम हो गया, तब रूपमाला, गीतिका (गीतिका, अनामिका), छप्पय तथा हरिगीतिका (अनामिका) के दर्शन हुए और उर्दू बहर (गीतिका) का भी साक्षात्कार हुआ। पद-शैली में लिखी कुछ रचनाएँ भी (गीतिका—गीत २२,४३, ५६) सामने आईं। फिर

१. प्रथम खंड में सममात्रिक सांत्यानुप्रास कविताएँ हैं जिनके लिए हिंदी के लक्षण-ग्रन्थों के द्वारपालों को 'प्रवेश निषेध' या भीतर जाने की सख्त मुमानियत है, कहने की जरूरत शायद न होगी।—निराला (परिमल की भूमिका, पृ० २)

'बेला' में तो उर्दू की अनेक वहरें गजल-शैली में आ धमकीं; जिनमें सुमेरु, दिगपाल और विधाता ने भी प्रश्रय पाया। इस प्रकार निराला ने, पंत के विपरीत, सभी प्रकार के प्रचलित-अप्रचलित छंदों, पदों, उर्दू बहरों तथा गजल-शैली में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। पर प्रसाद की तरह किसी वर्णवृत्त को (अपने शुद्ध गणात्मक रूप में) तथा कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा को नहीं अपनाया। महादेवी की तरह जीवन के अंत तक अपने को गीतों में (अर्चना, आराधना, गीतगुंज, सांध्यकाकली) अभिव्यक्त करते रहे, जिनमें प्राचीन छंदों के साथ कुछ नवीन सृष्टि तो है ही, स्वच्छंद छन्द में भी कई गीत लिखे गए। इस प्रकार निराला ने यद्यपि प्राचीनता की भूमि पर भी पैर रक्खे, पर प्रारंभ में वे छन्द के क्षेत्र में भी छायावाद के अग्रदूत बन कर आये थे।

निराला के छंद:प्रयोग में एक विचित्र विरोधाभास दिखलाई पड़ता है। एक ओर यदि उसमें स्वच्छन्दता और मुक्ति है; तो दूसरी ओर नियम-बद्धता भी। यदि कहीं तुक की बेड़ियों से मुक्त कर मुक्त छन्द को पूरी मुक्ति दे दी गई है (परिमल, खंड ३) कहीं उसके चरणों में अंत्यानुप्रास की दृढ़ शृंखला डाल कर (नए पत्ते—स्फटिक शिला) उसके मुक्त संचरण पर नियंत्रण का अंकुश रख दिया गया है, तो कहीं तुकांत चरणों की वर्ण-संख्या में अल्पाति-अल्प असमानता रख कर (नए पत्ते—खजोहरा; अणिमा— पद्य ३२,३८,३९ ४०,४४) उसमें एक प्रकार से नियमितता भी ला दी गई है। शास्त्रीय छन्दों में कहीं तो नियमों का कठोर अनुशासन है, तो कहीं नियमों का नि:संकोच उल्लंघन। जहाँ छोटे-छोटे गीतों में भी छन्दों का परिवर्त्तन वांछनीय हो गया है, वहाँ 'सरोज-स्मृति' 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'तुलसीदास' जैसी लंबी कविताएँ आद्योपांत एक ही छन्द (पद्धरि, पदपादाकुलक एक ही छन्द के दो उपभेद हैं) में लिखी गई है। आश्चर्यजनक बात तो यह है[1] कि कविता को सब प्रकार के बंधनों से मुक्ति देने-दिलाने के आकांक्षी कवि को तुक का इतना जबर्दस्त मोह है कि वह प्रसाद और पंत की तरह अपनी एक भी भिन्नतुकांत कविता किसी शास्त्रीय छन्द में नहीं लिख सका। उलटे कहीं उसने तुक के क्रमायोजन के अपने द्वारा बनाए नियम का (परिमल—नयन, माया, अध्यात्म-

१. विवेकानंद की दो छोटी-छोटी अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद में (नए पत्ते—चौथी जुलाई के प्रति, कालीमाता) उन्होंने भिन्नतुकांतता को अवश्य अपनाया है। —लेखक

यहाँ 'रे आज अस्तमित---तमस्तूर्य दिङ्मंडल' तथा 'तोड़ने वज्र का विषम-द्वार' कर कवि सहज ही इन दोनों पंक्तियों को पद्धरि की लय प्रदान कर सकता था। उन्होंने स्वच्छंद छंद लिखा, मुक्त छंद की रचना की तथा अनेक नूतन छंदों का निर्माण किया। छंदःशास्त्री इन सब का अभिनंदन करेगा। पर प्राचीन शास्त्रीय छंदों के शब्द-संस्थापन में व्यतिक्रम कर उन्होंने जो उनकी लय बिगाड़ दी, उसके लिए छंदःशास्त्री उन्हें कभी क्षमा नहीं कर सकता। क्योंकि ऐसी बिगड़ी हुई लय प्रशिक्षित कानों को एक झटका मार देती है, जिससे कविता-पाठ का आनंद भंग हो जाता है।

(३) **यति-भंग-दोष**

(क) गाती आप, आप देती सुकु / मार करों से ताल।

—परिमल : तरंगों के प्रति

(ख) दाह-तपन-उत्तप्त दुःख-सा / गर-जल खौल उठा।

---परिमल : वन कुसुमों की शय्या

यदि इन-जैसी पंक्तियों में यति-दोष नहीं देख कर मनोहारी विविधता मानी जाय, तो निम्न पंक्तियों में कौन यति-दोष स्वीकार नहीं करेगा ?

(क) सब जग निज जीवन की जटिल
स / मस्या ही में था तल्लीन।

—परिमल : वसंत-समीर

(ख) अगर कहीं चंचलता का प्रभाव कुछ उस पर देखा।

---परिमल : वह

(ग) नयनों के डोरे लाल गुला / ल-भरे, खेली होली।

---गीतिका : गीत ४१

(४) **पाद का अश्रव्य होना**

(क) जलद नहीं जी / वनद, जिलाया। ----परिमल : जलद के प्रति

(ख) मेरे ही अवि / कसित राग से। --- ,, ध्वनि

(ग) विश्व को वे / पयिकता से। --वेला : गीत ८७

इन सभी पंक्तियों में वांछित लय के लिए शब्दों को खंडित कर पाठ करना पड़ता है।

(घ) वह सहसा सजीव कंपन-द्रुत सुरभि समीर, अधीर वितान,
वह सहसा स्तंभित वक्षस्थल, टलमल पद, प्रदीप निर्वाण।

—परिमल : यमुना के प्रति।

यहाँ रेखांकित जगण समात्मक प्रवाह में केवल बाधा ही उपस्थित नहीं करता, प्रत्युत् पाद को अश्राव्य बना देता है। छंदों के ये दोष न्यूनाधिक परिमाण में प्रायः सभी कवियों में पाये जाते हैं। निराला-काव्य में सब से अधिक खटकने वाला शब्द-संस्थापन के व्यतिक्रम से उत्पन्न दोष है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

कवि भाव के अनुरूप छन्द का चयन करता है, और भाव को वहन करने वाली—उसे रूप देने वाली भाषा है। काव्य में इस भाषा को छन्द के साँचे में ढल जाना पड़ता है। इसीलिए भाषा-प्रयोग में कवि को बहुत सजग रहना पड़ता है। उसे एक ओर तो भाव के बोधक शब्द पर ध्यान रखना पड़ता है, दूसरी ओर छन्द के साँचे में उसे बैठाने का प्रयत्न भी करना पड़ता है। कहा जाता है कि अपना नाम ठीक-ठीक नहीं बैठा सकने के कारण ही सेनापति कवि ने सवैया छन्द नहीं लिखा। तात्पर्य यह है कि छन्द में बैठाने के लिए कवि को कभी-कभी शब्द को विकृत भी करना पड़ता है। यदि इससे उसका काम नहीं चलता, तो उसे अपने अभिप्राय-द्योतक शब्द गढ़ना भी पड़ता है। कवि-कुल-गुरु कालिदास का हिमालय के लिए 'गौरी-गुरु' शब्द छन्द के आग्रहवश ही गढ़ा गया प्रतीत होता है—

गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश। —रघुवंश : सर्ग २/२६

शब्द भाषा का अंग है। उसके बिना भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार छन्द का भाषा से संबंध अवश्य जुट जाता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक छन्द के लिए अमुक प्रकार की भाषा अपेक्षित है। सिद्ध कवि एक ही छन्द में अपने विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कोमल-कठोर, स्निग्ध-कर्कश पदावली के सहारे भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा लिख सकता है। शकुंतला के रूप-वर्णन में प्रयुक्त मालिनी और रानी सुदक्षिणा के गर्भधारण-वर्णन में प्रयुक्त

इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।
—अभिज्ञानशकुन्तलम्, अंक १/१७

मालिनी की भाषा में कितना अंतर है, यह सहृदय-संवेद्य है। स्वयं निराला

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः
सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठ्यूतमैशम्।
—रघुवंश : सर्ग २/७५

की 'राम की शक्तिपूजा' के प्रारंभिक कुछ अंश में जिस गर्जमान ओजोमयी भाषा का प्रयोग हुआ है, उसके बाद के अंश में उस भाषा का (दो-चार कुछ पंक्तियों को छोड़कर) नहीं। अतः रामरतन भटनागर के इस कथन का कि 'कुछ छन्द की आवश्यकता के लिए, कुछ विषय में गंभीरता और प्रभाव लाने के लिए इस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग कवि ने किया'[1] का उत्तरांश ही सही माना जायगा, पूर्वांश नहीं। क्योंकि हमें एक ही छन्द में दो प्रकार के भावों को व्यक्त करने वाली दो तरह की भाषाएँ आसानी से मिल जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि छन्द की भावानुकूलता में कवि का कौशल ही प्रमाण है। वही कौशल छन्द-द्वारा शासित भाषा से भी मनमाना काम निकाल लेता है। अतः छन्द का भाव और भाषा के साथ उतना सापेक्षिक संबंध नहीं है, जितना भाव और भाषा का।

पद्धरि-पदपादाकुलक में वस्तु-वर्णन की परंपरा प्राचीन है। निराला ने इन दो छन्दों में वस्तु-वर्णन के साथ-साथ मानसिक संक्षोभ का चित्रण अपनी तीन लम्बी कविताओं में किया है। 'सरोज-स्मृति' में अपनी पुत्री के मरण से उत्पन्न क्षोभ को उन्होंने हास्य-व्यंग्य के साथ पद्धरि-पदपादाकुलक में अभिव्यक्त किया है। तुलसीदास का मानसिक उद्वेलन प्रकृति और नारी (प्रकृति से भारतीय संस्कृति की रक्षा की प्रेरणा और स्त्री के रूपाकर्षण से उत्पन्न मोह) से टकराता हुआ शनैः-शनैः चलता है। इसीलिए कवि ने 'तुलसीदास' में पद्धरि-पदपादाकुलक की एक-एक अर्द्धाली को, इन दोनों छन्दों के अंत में छह मात्राओं के योग से बने राधिका छन्द की एक-एक पंक्ति-द्वारा घेर कर सोलहवी मात्रा की तुक तक जैसे भावों के द्वन्द्व को समेटने का प्रयास किया है, पर उसके षण्मात्रिक अंश में वह फिर सरक कर आगे निकल जाता है। राम के मानसिक विक्षोभ में तुलसीदास के भाव-द्वंद्व की तरलता नहीं, विचार-संघर्ष की गंभीरता है। उधर रावण-जैसे अत्याचारी को शक्ति की सहायता, और इधर राम की एकांत निरंवलंवता। उधर रावण-द्वारा हार-पर-हार और इधर जानकी का उद्धार। उधर परिस्थिति की विषमता और इधर मन की विपन्नता। राम के तन-मन के इस घोर विप्लव को समेट कर चलना पद्धरि-पदपादाकुलक के बूते की बात नहीं। अतः 'राम की शक्ति-पूजा' कविता में कवि ने उसके लिए इन दोनों छन्दों के ड्योढ़े चरण से बने शक्तिपूजा छन्द का प्रयोग किया है। रोला का प्रयोग प्रायः इतिवृत्तात्मक कविताओं में हुआ

१. कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० १७४।

है। गीत एकभावनिष्ठ होता है। उसमें एक ही भाव की अभिव्यक्ति होती है। दो-तीन छन्दों के मेल से बने गीत के अनुच्छेद का प्रयोग भारतेन्दु-काल से ही प्रारम्भ हो गया था। मैथिलीशरण, प्रसाद, पंत तथा महादेवी के गीतों का निर्माण भी प्रायः उसी तरह हुआ है। एक अनुच्छेद जिन छन्दों के मेल से बना है, दूसरे-तीसरे अनुच्छेदों में भी वही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। निराला ने अनेक गीतों की रचना स्वच्छंद छंद में तो की ही है; अनेक गीत ऐसे भी लिखे हैं, जिनके अनुच्छेदों में भाव के अनुसार छन्द भी बदल दिए गए हैं। उदाहरण के लिए गीतिका के गीत २ और ६ लिए जा सकते हैं। गीत २ का प्रथम अनुच्छेद पीयूषवर्षी और रजनी से निर्मित हुआ है, तो दूसरे अनुच्छेद की रचना उर्मिला और रजनी के योग से हुई है। इसी प्रकार गीत ६ का प्रथम अनुच्छेद हीर और प्रणय तथा द्वितीय बंद कुंडल एवं प्रणय के योग से बने हैं। चूंकि दोनों गीतों में प्रयुक्त दो भिन्न छन्द एक ही वर्ग के हैं, अतः यहाँ रचना-सौविध्य भी देखा जा सकता है।

छन्द भाषा का नियंत्रण करता है। छन्दोरक्षा के लिए कवि को कभी-कभी अनावश्यक और अनुपयुक्त शब्द भी रखने पड़ते हैं। कभी-कभी उसका भाव छन्द के बन्धन में पड़कर कुंठित हो जाता है। संभवतः इसी कठिनाई को हल करने के लिए स्वच्छन्द छन्द और मुक्त छन्द का उद्भव हुआ। पर यहाँ भी भावानुकूलता देखी जा सकती है। वस्तु-वर्णन की प्रधानता के कारण एकछंदी स्वच्छन्द छन्द में लिखे 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' (प्रेम के अप्रतिहत स्वरूप का वर्णन) और 'वन-वेला' (साहित्य और राजनीति की साधनाओं की तुलना) में पद्धरि-पदपादाकुलक का तथा आत्मपरक गीत्यात्मक 'कविता के प्रति' में लीला का आधार ग्रहण किया गया है। मुक्त छन्द केवल कवित्त के आधार पर चलता है। अतः वहाँ भावानुकूलता की कोई बात ही नहीं उठती। यही कहा जा सकता है कि भाव के अनुरूप कहीं छोटी और कहीं बड़ी पंक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं।

नवीन छन्दों का निर्माण प्राचीन काल से होता आया है। छायावाद के अंदर अनेक नूतन छन्द निर्मित हुए। छायावाद के स्तम्भों में प्रसाद और महादेवी की प्रवृत्ति नूतन छन्द गढ़ने की ओर बहुत कम है। अभिनव छन्दों का आविष्कार अधिकतर निराला और पंत ने किया है। निराला-काव्य में पाए जाने वाले नूतन छन्द निम्नलिखित हैं—

मुक्ति, शृंगाराभास, ज्योति, पदपादांक, शृंगारकल्प,
चंग, कोकिला, लीलाधर, वसंतमालती, लघिमा,
लीलावृत्त, पीयूषराशि, पीयूषनिर्झर, मधुवल्लरी,
साधिका, मंजुतिलकावली, दिगंबरी, विशुद्धगा,
हरिगीतामृत = १६

इन छंदों में शृंगाराभास और शृंगारकल्प प्रसाद के 'झरना' में प्रयुक्त हैं, जो प्रथम बार प्रकाशित तो हुआ १६२८ में, पर जिसकी कविताएँ १६१४-१६१७ के बीच लिखी गई हैं।[1] निराला की पहली कविता 'जुही की कली' १६२० की 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी।[2] इस बल पर यह कहा जा सकता है कि संभवतः इन दोनों का आविष्कार प्रसाद ने किया हो। पीयूष-राशि का प्रयोग हरिऔध (बोल चाल) मैथिलीशरण (तिलोत्तमा) तथा पंत (ग्रंथि) में उपलब्ध होता है। मुक्ति मैथिलीशरण के 'साकेत' एवं 'झंकार' में, मधुवल्लरी 'वकसंहार' एवं 'कुणाल-गीत' में तथा पीयूपनिर्झर 'जय भारत', 'कुणाल-गीत', 'झंकार' एवं 'भूमिभाग' में प्राप्त होते हैं। अतः इन कवियों के द्वारा इन छंदों में लिखित कविताओं के रचना-काल का जब तक पता नहीं चल जाता तब तक इन छंदों के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में किसी कवि का नाम लेना कठिन है। प्रसाद-द्वारा प्रयुक्त दो (शृंगाराभास, शृंगारकल्प) तथा अज्ञातकाल वाले चार (मुक्ति, पीयूषराशि, पीयूपनिर्झर, मधुवल्लरी)—इन छह छंदों के अतिरिक्त शेष सभी उक्त नूतन छंदों के उद्भावक निराला ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। डॉ० राम विलास शर्मा का यह कथन कि 'तुलसीदास के बाद निराला की-सी काव्य-प्रतिभा का कोई कवि हिन्दी में नहीं हुआ'[3] विवाद का विषय हो सकता है, पर इसमें दो मत की कोई गुंजाइश नहीं कि सूरदास के अतिरिक्त इतने नए छंदों का निर्माण निराला को छोड़ कर और किसी कवि ने नहीं किया। सर्वाधिक छंदों के प्रयोक्ता के रूप में निराला का नंबर केशवदास (छं० ११३), सूरदास (छं०१११) तथा मैथिलीशरण (छं० ११०) के बाद आता है। मात्रिक छंदों के प्रयोगकर्त्ता के रूप में ये एक तरह से सूरदास से समकक्ष हैं। (छं० १०५) पर जहाँ इनके कई मात्रिक छंद

१. कवि प्रसाद : एक अध्ययन : रामरतन भटनागर, पृ० ४१।
२. कादंबिनी : सं० कपिल एवं शर्मा, पृ० ८६।
३. निराला की साहित्य-साधना, पृ० ५४८ [गीतगुंज की भूमिका से उद्धृत] पृ० ५१।

वर्णवृत्त के रूपांतर हैं, वहाँ सूरदास ने किसी गणात्मक वर्णवृत्त को छुआ तक नहीं है। नए छंदों की उद्भावना के अतिरिक्त अपभ्रंश कवि पुष्पदंत और विद्यापति के द्वारा आविष्कृत क्रमशः शक्तिपूजा और रजनी छंदों के, आधुनिक युग में, सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय भी निराला को ही मिलना चाहिए। रजनी का प्रयोग महादेवी ने नीरजा (१९३४) में अवश्य किया है, पर वह परिमल (१९३०) के बाद की रचना है।

छन्दों को सब प्रकार के बंधनों से मुक्त करने के आकांक्षी निराला के द्वारा गणों के जटिल बंधन में जकड़े हुए वर्णिक छन्दों के प्रयोग की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो कतिपय वर्णिक छन्द उनके साहित्य में प्राप्त होते हैं, वे अपने शुद्ध गणात्मक रूप में नहीं, मात्रिक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं तो उनके गणों में गुरु के लिए दो लघु अथवा दो लघु की जगह एक गुरु रखने की स्वतंत्रता के बाद भी गण-विपर्यय पाया जाता है। इस प्रकार उनके यहाँ गणात्मक वर्णवृत्त का एकांत अभाव है। हाँ, दो वर्णिक मुक्तकों का प्रयोग उन्होंने अवश्य किया है। वे हैं—अर्चना और मदनहर घनाक्षरी। इन दोनों छन्दों के अतिरिक्त वर्णिक मुक्तक के नाम पर हम मुक्त छन्द को भी ले सकते हैं, जिसका आधार कवित्त है।

छायावाद की प्रवृत्ति मात्रिक छन्दों के प्रयोग की ओर ही अधिक रही और निराला में भी उसी की प्रधानता है। निराला-साहित्य में सर्वाधिक बड़े छन्द समानसवैया और मत्तसवैया हैं और सब से छोटा, चार मात्रापादी युग छन्द। यों तो उनके साहित्य में अनेक प्रकार के छन्द मिलते हैं; पर उन्होंने लीला, हाकलि, मनोरम, शृंगार, पद्धरि, पदपादाकुलक, चौपाई, पीयूषवर्षी, रोला, शक्तिपूजा, सरसी, माधवमालती तथा वीर छन्द का अपेक्षाकृत विशेष प्रयोग किया है।

मात्रिक छन्द त्रिकल, चौकल, पंचकल, षट्कल, सप्तकल और अष्टकल के आधार पर चलते हैं। निराला-साहित्य में इन सभी आधारों पर चलने वाले छन्द मिल जाते हैं। चौकल-अष्टकल तथा सप्तकल के आधार पर चलने वाले छन्दों का प्रचलन सब युगों में विशेष रहा। पर पद-साहित्य में त्रिकल-षट्कल (लीला, प्रणय, कुंडल, विनय, हरिप्रिया आदि) और पंचकल (झूलना, विजया आदि) पर आधृत छंद भी काफी संख्या में लिखे गए। द्विवेदी-युग में इन दो आधारों पर चलने वाले छंद बहुत कुछ उपेक्षित रहे। अनेक छंदों के

सफल प्रयोक्ता मैथिलीशरण तक ने हीर (त्रिकल-षट्कल) और चंद्र (पंचकल) छन्द नहीं लिखे। हरिऔध ने चंद्र को तो विपुल सम्मान दिया, पर अन्य पंचकलाधृत छन्द उनके द्वारा भी प्रायः उपेक्षित ही रहे। निराला ने चंद्र तो नहीं, उसके अंत में दो मात्राओं के योग से बना रतिवल्लभ लिखा तथा अन्य कई पंचकाधृत छन्दों का (दीप, विमोहा, अरुण, मंजुतिलका आदि) प्रयोग किया। मंजुतिलका के अंत में चार मात्राओं के योग से एक नूतन छन्द का भी निर्माण किया, पर पंचकाधृत छन्दों के आधार पर किसी स्वच्छन्द छन्द की रचना नहीं की। त्रिकल-षट्कल के आधार पर चलने वाले प्रायः समस्त छन्दों (निधि, शिव, लीला, योग, कुंडल, हीर, सारस) का प्रयोग उन्होंने किया। इनके अतिरिक्त त्रिकल-षट्कल पर आधृत अनेक नूतन छन्द (चंग, कोकिला, लीलाधर, लघिमा, लीलावृत्त) भी गढ़े। स्वच्छंद छंद की रचना भी इस आधार पर की। सप्तक के मुख्यतः चार भेद हैं। निराला-साहित्य में (१) ।ऽऽऽ (विजात, विधाता) (२) ऽऽऽ। (सुलक्षण) (३) ऽऽ।ऽ (मधुमालती, हरिगीतिका) (४) ऽ।ऽऽ (मनोरम, पीयूपवर्षी, गीतिका, माधवमालती)—इन सभी सप्तकों पर आधृत छन्द मिल जाते हैं। सप्तक पर आधृत स्वच्छन्द छन्द की भी रचना उन्होंने की है।

प्रत्येक कवि का किसी खास छन्द की ओर कुछ विशेष रुझान रहता है। संभवतः संगीत के अधिक अनुकूल होने कारण निराला का रुझान लीला की ओर विशेष रहा। लीला छन्द में उन्होंने विपुल परिमाण में रचना की तथा उसके आधार पर अनेक छन्दों का निर्माण किया। अतः लीला उनकी सर्वाधिक प्रिय छन्द मानी जा सकती है। चौपाई भी संगीत के अनुकूल है। फलतः उनकी चौपाई में लिखित रचनाएँ लीला में निवद्ध रचनाओं से भी अधिक हैं। अतः चौपाई भी उनके प्रिय छन्दों में है।

सफलता की दृष्टि से देखें, तो निराला को सब से अधिक सफलता लीला छन्द में प्राप्त हुई है। लीला के प्रयोग में शायद ही कहीं कुछ विपर्यय मिल जाय। चौपाई में कहीं-कहीं शब्द-संस्थापन-क्रम में विपर्यय मिल जाता है। पीयूपवर्षी छन्द प्रायः शुद्ध रूप में लिखा गया है। मनोरम, रूपमाला तथा माधवमालती यों तो ठीक है, पर कहीं-कहीं लघु की जगह गुरु रख कर वांछित लय में कुछ व्याघात उपस्थित कर दिया गया है। पद्धरि-पदपादाकुलक का प्रयोग तो उन्होंने विशद रूप से किया है। पर सबसे अधिक विफलता भी उन्हें

इन्हीं दोनों में हाथ लगी है। प्रसाद की तरह रोला का अखंडित प्रवाह भी निराला में अनेक जगहों पर प्राप्त नहीं होता। अतः रोला की रचना में भी वे उतने सफल नहीं समझे जा सकते। अंततोगत्वा यही कहा जा सकता है कि निराला भी प्रसाद की तरह छन्दों के—शास्त्रीय छन्दों के प्रयोग में उतने सजग नहीं दिखलाई पड़ते, जितने पंत और महादेवी।

४ अगस्त, '७४]

पंत की छंदोयोजना

सुमित्रानन्दन पंत छायावाद के उन्नायकों में एक हैं। कतिपय विद्वानों के मत से पंत ही छायावाद के सच्चे प्रतिनिधि कवि है, क्योंकि प्रसाद और निराला में छायावाद के साथ-साथ रहस्यवादी काव्य-धारा के भी दर्शन होते है और महादेवी तो रहस्यवाद की ही कवयित्री हैं। अपने अन्य सहकर्मियों के समान पंत कविता के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं की ओर विशेष उन्मुख नहीं हुए। यों इनकी कहानियों का एक संग्रह 'पाँच कहानियाँ' के नाम से उपलब्ध है और यह कहा जाता है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में इन्होंने एक 'हार' नामक उपन्यास भी लिखा था, जो प्रकाशित होने के पहले ही खो गया। इस प्रकार पंत अपने जीवन के प्रारम्भ से लेकर अब तक एक प्रकार से काव्य-रचना में ही प्रवृत्त रहे। कुछ निबंधों में[1] तथा कतिपय ग्रंथों की लम्बी भूमिकाओं के रूप में[2] इनकी गद्य-रचनाएँ अवश्य उपलब्ध होती हैं; पर मैथिलीशरण की तरह ये आदि से अंत तक प्रायः कवि ही बने रहे। उन्हीं के समान इन्होंने एक 'ज्योत्स्ना' नामक नाटक की भी रचना की है, जो नाटक से अधिक काव्य है। काव्य-रचना में अपने जीवन का एक-एक पल व्यतीत करने वाले इस कवि ने मैथिलीशरण के समान ही विपुल परिमाण में काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। वे काव्य-कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) पल्लव (१९२६) (२) वीणा (१९२७) (३) ग्रंथि (१९२९) (४) गुंजन (१९३२) (५) ज्योत्स्ना (१९३४) (६) युगांत—युगांतर के अंतर्गत (१९३६) (७) युगवाणी (१९३९) (८) ग्राम्या (१९४०) (९) स्वर्णकिरण (१९४७) (१०) स्वर्णधूलि (१९४७) (११) युगपथ—युगांतर के अंतर्गत (१९४८) (१२) खादी के फूल—पंत और बच्चन की सम्मिलित रचना (१९४८) (१३) मधुज्वाल (१९४८) (१४) उत्तरा (१९४९) (१५) रजत-शिखर (१९५१) (१६) शिल्पी (१९५२) (१७) अतिमा (१९५५)

१. गद्य पथ, साठ वर्ष, शिल्प और दर्शन, छायावाद पुनर्मूल्यांकन

२. पल्लव, आधुनिक कवि, उत्तरा, चिदंबरा, रश्मिबंध

(१८) सौवर्ण (१९५७) (१९) वाणी (१९५७) (२०) कला और बूढ़ा चाँद (१९५९) (२१) लोकायतन (१९६४) (२२) पौ फटने के पहले (१९६७) (२३) किरण-वीणा (१९६७) (२४) पतझर (१९६९) (२५) गीतहंस (१९६९) (२६) समाधिता (१९७३)

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इनके और भी काव्य-ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। वे हैं—पल्लविनी (१९३९), रश्मिबंध (१९५९) आधुनिक कवि, मुक्तियज्ञ, चित्रांगदा (१९६९) स्वर्णिम रथचक्र (१९६८) चिदंबरा (१९५९) संयोजिता (१९६९) हरी बाँस सुनहरी टेर (१९६३) पुरुषोत्तम राम (१९६७) तारापथ (१९६९) अभिषेकिता (१९६०) गंधवीथी (१९७३) तथा ऋता (१९७१) पर ये सभी संग्रह ग्रंथ हैं; जिनमें उक्त ग्रंथों की या तो चुनी हुई कविताएँ संगृहीत की गई हैं या किसी ग्रंथ का कोई विशेष अंश अलग पुस्तक-रूप में छाप दिया गया है। इस प्रकार इन संग्रह-ग्रंथों के छंदोनिर्धारण की कोई बात ही नहीं उठती। पंत के संपूर्ण साहित्य का छंदोनिर्धारण वस्तुतः उपर्युक्त २६ ग्रंथों में प्रयुक्त छंदों का निरूपण है। उन ग्रंथों में पाये जाने वाले छंद ९५ हैं, जो निम्नलिखित हैं—

सममात्रिक छन्द

युग, बाण, अलिपद, धारी, सुगति, अखंड, मधुभार, तिलका मात्रिक, छवि, मुक्ति, निधि, गंग, शृंगाराभास, ज्योति, विमोहा मात्रिक, मधुभरित, शशिवदना, अहीर, शिखंडी, शिव, तांडव, महानुभाव, प्रमाणिकामात्रिक, लीला, विजातक, पदपादांक, मालिका, शृंगारकल्प, लीलाधिका, पदपादांकुर, प्रदोष, उल्लाला, हाकलि, सखी, कज्जल, सुलक्षण, मनोरम, मधुमालती, विजात, उज्ज्वलामात्रिक, चौबोला, चौपई, गोपी, मधुमंजरी, शृंगार, चौपाई, पद्धरि, पदपादाकुलक, श्येनिका मात्रिक, राम, उर्मिला, तारकमात्रिक, माली, तरल-नयन, वसंतचामरमात्रिक, सुमेरु, तमाल, पीयूषवर्षी, पीयूषराशि, शास्त्र, मधुवन, हंसगति, योग, प्लवंगम, प्रणय, पियूषनिर्झर, साधिका, राधिका, कुंडल, रास, रासामृत, सुखदा, निश्चल, हीर, रजनी, माधुरी, रोला, पंचचामर-मात्रिक, चंचलामात्रिक, सारस, शक्तिपूजा, रूपमाला, चिदंबर, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, माधवमालती, सार, ताटंक, उत्कंठा, चतुष्पद, संसार, वीरछंद, समानसवैया, मत्तसवैया = ९५

आगे प्रत्येक छंद का विवेचन उदाहरण-सहित प्रस्तुत किया जाता है—

(१) युग (४ मा०)

कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल,—

—युगवाणी : पुण्यप्रसू

युग छंद का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं हुआ है। स्वच्छंद छंद में लिखे पद्यों में इसकी पंक्तियाँ मिलती हैं। उक्त कविता की ८ तथा 'ओस के प्रति' (युगवाणी) की ३ पंक्तियों के अतिरिक्त इसका प्रयोग 'स्वर्णकिरण' की छाया-**पट** (छँट कर) 'उत्तरा' की परिणति (तन में, मन में, क्षण में) तथा 'गीतहंस' की ११वीं कविता में (उड़ कर) में भी हुआ है।

(२) बाण (५ मा०)

(क) स्वर्ण प्रभ— स्वर्णधूलि : प्रतीति

(ख) नींद का — पतझर : नील कुसुम

बाण छंद के ये ही दो चरण स्वच्छंद छंद में लिखी उक्त दो कविताओं में प्राप्त होते हैं।

(३) अलिपद (६ मा०)

चिर पावन
सृजन चरण,
अर्पित तन
मन जीवन।

—स्वर्णधूलि : मातृशक्ति

अलिपद का प्रयोग केवल स्वच्छंद छंद में लिखित कविताओं में हुआ है। प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

युगवाणी—सुमन के प्रति (मौन सुमन) चींटी (हा मानव, प्राणि-प्रवर) पुण्यप्रसू (हरित भरित, कुसुम खचित) युगनृत्य (लज्जा भय, रोष विनय)

ग्राम्या—ग्रामयुवती (वह गजगति, पनघट पर, सिर पर घट, ओस धवल)

स्वर्णकिरण—अगुंठिता (विदा, विदा)

स्वर्णधूलि—स्वप्न निर्बल (प्रिय यादव) मर्म कथा (प्राणों से) साधना

(विपदाएँ) रसस्रवण (क्षण क्षण छन, गरज न घन) मातृशक्ति (दिव्य मने, आदि)

पौ फटने के पहले—पद्य ३७ (अब लगता, दृग संमुख)

गीतहंस—पद्य ५० (विम्ब विहग, तूलि भरी)

किरण-वीणा—पद्य ४४ स्वर्णकिरण (क्या है दुख ?)

वाणी—अग्नि संदेश (गति, गति, गति; जड़ सक्रिय अति)

मधुज्वाल—पद्य १६ (तरल गरल, रूप अनल)

(४) धारी (६ मा०)

रूढ़ि रीति, न्याय नीति,
वैर प्रीति, ईति भीति
× ×
देश राष्ट्र, लौह काष्ट
श्रेणि वर्ग, नरक स्वर्ग ।

—युगवाणी : युग नृत्य ।

धारी का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं हुआ । प्रगाथ और स्वच्छंद छंद में ही इसके चरण मिलते है। लीला, सुगति, धारी तथा अलिपद में निबद्ध उक्त कविता में इसके अनेक चरण मिलते हैं । 'स्वर्णकिरण' की संक्रमण कविता में इसका मिश्रण शिखंडी छंद के साथ हुआ है । यथा—

खो गया जीवन रस·········(शिखंडी)
रहस स्पर्श·········(धारी)
सृजन का मुक्त रभस······(शिखंडी)
निखिल हर्ष ।······(धारी)

डॉ० शुक्ल ने इसे नवीन अर्द्धसम मात्रिक छंद माना है ।[1] पर यह वस्तुतः शिखंडी और धारी के मेल से बना प्रगाथ छंद है । प्रयोग-स्थल—

युगवाणी—द्वंद्व (शीत ताप, दिन रात । लय-संगति के लिए 'दिन' को त्रिकलात्मक मानना अपेक्षित)

स्वर्णकिरण—मातृशक्ति (तुम्हीं भक्ति आदि) युगागम (हृदय भार) प्रणाम (ज्योति धाम, श्री ललाम)

पौ फटने के पहले—पद्य ३३ (एक बार, और प्यार)

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३१०

निराला में धारी का केवल एक चरण मिलता है। पंत ने इसका अनल्प प्रयोग कर इसे काव्य-जगत् में विपुल प्रतिष्ठा प्रदान की।

(५) सुगति (७ मा०)

ओ अधभरी
तृष्णा हरी
शोणित सनी
तामस घनी

—वाणी : आत्मदान

सुगति का प्रयोग स्वच्छन्द छन्द में लिखित कविताओं में ही हुआ है। उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त यह निम्न स्थलों पर प्रयुक्त हुई है—

वीणा—पद्य ५९ (गहन कानन)

युगवाणी—द्वन्द्व (ह्रास विकास) बदली का प्रभात (बीती रात) ओस के प्रति (उर-परितोष)

स्वर्णधूलि—मातृशक्ति (दिव्यानने, भयभंजने, हृदयासने) साधना (दुराशाएँ)

पौ फटने के पहले—पद्य २ (विश्व क्षर यह; विश्वमयि, पर)

गीतहंस—पद्य ३८ (मन की तरी)

किरण-वीणा—लक्ष्य (तुम भी वही)

मधु-ज्वाल—पद्य १६ (यही विधान)

प्रसाद के काव्य में सुगति के केवल चार चरण अहीर के साथ मिश्रित हैं। महादेवी में अन्य छन्दों के साथ इसकी अधिक पंक्तियाँ मिलती हैं। निराला और पन्त ने स्वच्छन्द छन्द में दोनों की अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग किया है।

(६) अखंड (८ मा०)

लघु लघु धर पग,
छा छा अग जग,
× ×
जीवन के चल,
हम लघु लघु पल।

—ज्योत्स्ना, पृ० १२६ (द्वि० सं० संवत् २००४)

अखंड का स्वतंत्र प्रयोग 'मधु-ज्वाल' के चार पद्यों (२०, ३५, ४१, ६०)

में मिलता है। 'ज्योत्स्ना' के उक्त गीत, 'गीतहंस' के पद्य ५३ तथा 'मधुज्वाल' के पद्य ६, २४, २६, ६१ में यह चौपाई के साथ प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इसके चरण स्वच्छन्द छन्द में, टेक में तथा अन्य छन्दों के साथ प्राप्त होते हैं। प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

वीणा—पद्य ६०
युगांत—पद्य २० (टेक)
युगवाणी—युगवाणी, मानव, पुण्यप्रसू, चींटी, सुमन के प्रति, आम्रविहग, प्रकृति के प्रति, दो मित्र, झंझा में नीम, ओस के प्रति
ग्राम्या—ग्रामयुवती, स्वीट पी के प्रति
स्वर्णकिरण—अवगुंठिता, छायापट, स्वर्णोदय
स्वर्णधूलि—लोकसत्य, स्वप्ननिर्वल, ज्ञातिमन, रसस्रवण, निर्झर, अंतर्वाणी।
उत्तरा—प्रगति, प्रतिक्रिया, विनय, आह्वान।
ज्योत्स्ना—गीत, पृ० ८१
अतिमा—विद्रोह के फूल, दीपक (टेक) नेहरू युग
मधुज्वाल—पद्य ६८ (मुक्ति के साथ) ८३ (छवि के साथ)

प्रसाद के काव्य में अखंड नहीं पाया जाता। निराला में यह स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में उपलब्ध है। महादेवी ने चार गीतों में इसका मिश्रण अन्य छन्दों के साथ किया है। पंत में स्वच्छंद और मिश्र दोनों रूपों में इसके चरण पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैं।

(७) मधुभार + (८) तिलका मात्रिक (८ मा०)

(क) ये राष्ट्र वर्ग
बल शक्ति भर्ग
बहु जाति-पाँति
कुल वंश ख्याति } —मधुभार

—युगवाणी : आम्रविहग

(ख) अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण, } —तिलका मात्रिक

—ग्राम्या : ग्रामयुवती

मधुभार और तिलका का स्वतंत्र प्रयोग तो किसी कविता में नहीं हुआ है, पर 'युगवाणी' के आम्रविहग में अनेक चरण कई पद्यों के रूप में प्राप्त होते हैं।

'गीतहंस' के पद्य ३७ में यह पद्धरि-पदपादाकुलक के साथ तथा 'मधुज्वाल' के पद्य ८६ में पदपादांक के साथ प्रयुक्त हुआ है। स्वच्छन्द छन्द में भी इनके चरण यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा—

स्वर्णधूलि—छायाभा, स्वर्ग अप्सरी, प्रणाम
उत्तरा—प्रगति, विनय, आह्वान
पतझर—मध्या के प्रति (उन्मत्त स्फार)
वाणी—पुनर्नवा (तुम भाव-सृष्टि, नव काव्य-सृष्टि) वज्र के नूपुर (छह पंक्तियाँ)

प्रसाद में मधुभार नहीं मिलता। महादेवी ने कई गीतों के छंदकों में और निराला ने स्वच्छंद छंद में इसका प्रयोग किया है। पंत की किसी कविता में यह स्वतंत्र रूप में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है, पर इसके अनेक पद्य स्वतंत्र रूप में अवश्य दिखलाई पड़ते हैं।

(६) छवि (८ मा०)

(क) द्वेष मद त्याग,
श्रेय श्रम भाग।

—वाणी : मानसी

(ख) क्लांति से विकल,
पाप से फिसल,
ध्येय में विफल,

—पतझर : इन्द्रिया

पंत के काव्य में छवि का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं पाया जाता। 'मधुज्वाल' के पद्य ७१ में शृंगार के साथ, ८३ में अखंड के साथ तथा १६ में गोपी-अलिपद-सुगति के साथ इसका मिश्रण हुआ है। 'स्वर्णधूलि' की मानसी (६) के प्रारंभ में तीन चरण इसके मिलते हैं। यथा—

वुद्ध की शरण,
धर्म की शरण,
संघ की शरण।

स्वच्छंद छंद में भी इसके चरण उपलब्ध होते हैं। यथा—

पौ फटने के पहले—पद्य ४ (सहज कमनीय) १२ (चेतने शिवे)
गीतहंस—पद्य २६ (छोड़ गृह मोह) ५१ (सहज अभ्यस्त)

पतझर—मध्या के प्रति (मनुज का भोग्य)

प्रसाद और महादेवी में यह प्राप्त नहीं होता। निराला और पंत दोनों ने इसका प्रयोग स्वच्छंद छंद में किया है।

(१०) मुक्ति (८ मा०)

(क) श्वसन-स्पर्श से
रोम हर्ष से।

—युगवाणी: झंझा में नीम

(ख) दूर भ्रांति हो
विश्व शांति हो।

—अतिमा : नेहरू युग

मुक्ति का प्रयोग केवल स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में हुआ है। उक्त स्थलों के अतिरिक्त इसके प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

पौ फटने के पहले—पद्य ३३ (तुम्हें ज्ञात हो)

गीतहंस—पद्य ५१ (मोर टेरते, मनुज प्रेम के, लोक क्षेम के)

शिल्पी—पृ० ८७ (ज्योतिदायिनी आदि)

मधुज्वाल—पद्य ३६ (सुरा-पान से, प्रीति-गान से)

प्रसाद में यह प्राप्त नहीं। महादेवी में इसका एक चरण मिलता है। निराला ने इसका प्रयोग एक गीत में स्वतंत्र रूप से किया है, पर पन्त-काव्य में यह स्वच्छंद छंद में ही उपलब्ध होता है।

(११) निधि (९ मा०)

यह वह नव लोक
× ×
सूक्ष्म चिदालोक
× ×
मिटता उर शोक
स्वर्ग शांति ओक।

—स्वर्णधूलि : अंतर्लोक

उक्त पद्य में निधि का लीला के साथ मिश्रित प्रयोग हुआ है, जहाँ एक पंक्ति तांडव की भी है। (हृदय में उदय अशोक) इसके अतिरिक्त 'युगवाणी' के सुमन के प्रति (किसके प्रतिरूप) तथा ओस के प्रति (निर्मल निर्दोष) में भी इसका एक-एक चरण मिलता है।

निधि का मिश्रित प्रयोग निराला और पन्त में ही प्राप्त होता है, प्रसाद और महादेवी में नहीं।

(१२) गंग (९ मा०)

उर-कक्ष निर्जन।—पौ फटने के पहले : पद्य १३

मैं भी वही हूँ।—किरण-वीणा : लक्ष्य।

प्रसाद और महादेवी में गंग के दर्शन नहीं होते। इसके पाँच चरण निराला में और दो चरण पन्त में उपलब्ध होते हैं।

(१३) शृंगाराभास (९ मा०)

नाम जीवन का।—स्वर्णधूलि : आशंका
उदधि मंथन का।— ,, ,,
रक्त के प्यासे।— ,, क्षणजीवी
सीखता तुम से।—गीतहंस : पद्य ३४

शृंगाराभास का स्वतंत्र प्रयोग कहीं उपलब्ध नहीं होता। इसकी पंक्तियाँ अन्य छन्दों के साथ अथवा स्वच्छन्द छंद में ही मिलती हैं।

शृंगाराभास के चार चरण प्रसाद के काव्य में पाए जाते हैं। निराला और पन्त के स्वच्छंद छंद में पाए जाने वाले इसके चरण भी संख्या में बहुत अधिक नहीं हैं।

(१४) ज्योति (१० मा०)

तरुण तापस वीर
× ×
ध्यान में रत धीर
× ×
शेष तट अब नीर
× ×
चुभ गया हो तीर

—रजत शिखर : पृ० १४८ (प्र० सं० २००८)

ज्योति का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। स्वच्छंद में, टेक में तथा अन्य छंदों के साथ मिश्रित प्रयोग में इसकी पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त 'युगवाणी' की 'राग' (राग केवल राग) 'स्वर्णधूलि' की युगप्रभात (चेतना जलजात) तथा प्रतीति (छुटें तन मन प्राण) नामक कविताओं में भी इसके चरण पाए जाते हैं।

महादेवी में ज्योति का केवल एक चरण मिलता है। पंत में कुछ अधिक पंक्तियाँ हैं। निराला ने इसका प्रयोग सब से अधिक किया है।

(१५) विमोहा मात्रिक (१० मा०)

(क) खो गई एकता।—स्वर्णकिरण : संक्रमण

(ख) क्यों चपल जल लहर।—स्वर्णधूलि : प्रतीति

(ग) दीप ही सत्य है।—गीतहंस : पद्य ३४

दो रगणों का विमोहा वर्णवृत्त होता है। 'क' और 'ग' में तो दो रगण का लक्षण पूर्णतया घटित होता है, पर 'ख' में एक गुरु के लिए दो लघु का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह विमोहा का मात्रिक रूप है।

पंत-काव्य में इसके यही तीन चरण मिलते हैं। निराला ने कई कविताओं में विमोहा के मात्रिक रूप का प्रयोग किया है। महादेवी में तो यह प्राप्त नहीं, पर प्रसाद में इसके छह चरण प्राप्त होते हैं।

(१६) मधुभरित (१० मा०)

तुम लोक नयन में।—युगांतर : उद्‌बोधन

वह कुंद, काँस से।—ग्राम्या : ग्रामयुवती

ज्यों स्वतः गया ठल।—स्वर्णधूलि : स्वर्ग अप्सरी

चिर जन्म मरण में।—उत्तरा : मनोमय

मधुभार के अंत में दो मात्राओं के योग से पन्त ने इस छन्द का निर्माण किया है। इस छन्द का नाम मधुभरित रक्खा गया है। इसका स्वतन्त्र रूप से कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। इसके चरण प्रगाथ और स्वच्छन्द छंद में यत्र-तत्र मिलते हैं। यथा—

युगांतर—स्वाधीन दिवस (स्वाधीन दिवस जय)

युगवाणी—चींटी (हो गए निछावर)

उत्तरा—परिणति (तुम बसे हृदय में)

स्वर्णधूलि—युगागम (नव कर्म वचन, मन)

किरण-वीणा—आश्रय (चैतन्य वृष्टि हो)

पंत के अतिरिक्त किसी छायावादी स्तंभ में यह छंद प्राप्त नहीं।

(१७) शशिवदना (१० मा०)

रज-रंजित कर तन

× ×

निर्मल कर अंतर

—गुंजन, ३८

स्नेह सुधा-सागर
× ×
किरणें वरसा कर

—स्वर्णधूलि : मातृशक्ति

शशिवदना का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं हुआ है। इसके चरण स्वच्छंद छंद में, टेक में तथा अन्य छंदों के मेल से बने प्रगाथ छंद में मिलते हैं। उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त इसके निम्न प्रयोग-स्थल हैं--

वीणा—पद्य ५२ (अँगड़ाते तम में)
पल्लव—आँसू (अपलक आँखों में)
युगांतर – स्वाधीन दिवस (भारत माँ की जय, जय बापू की जय)
युगवाणी—चींटी (चींटी को देखा)
ग्राम्या--ग्रामयुवती (मोहित नारी-नर) राष्ट्रगान (जाग्रत भारत है)
स्वर्णकिरण—नारी पथ (करते मृदु मर्मर; शोभा सरसिज पग) युग प्रभात (जगती के रजकण)
स्वर्णधूलि – गणपति उत्सव (दृश्य एक अभिनव) आशंका (जीवन की स्थितियाँ) गोपन (वन मधुसिक्त व्यथा) मृत्युंजय (अथवा जनगण से) अंतर्वाणी (जीवन कथा व्यथा, जीवन कल्याणी) ज्योति झर (वरसो ज्योति अमर)
रजतशिखर – पृ० ११३ (टेक प्रीतिशिखा वाही आदि ४ पंक्तियाँ)
अतिमा – विज्ञापन (तुक ? शुक मुक्त हुआ)
शिल्पी – तम के मूल हिला
उत्तरा – मनोमय (जग मंगल हित हे)

शशिवदना महादेवी में प्राप्त नहीं। प्रसाद में इसके कतिपय चरण उपलब्ध होते हैं। निराला और पन्त ने इसका प्रयोग काफी मात्रा में किया है।

(१८) अहीर (११ मा०)

चंचल जीवन स्रोत
वहता व्याकुल वेग,
पुलिन-फेन-परिप्रोत
सुख दुख, हर्षोद्वेग।

। मधुज्वाल : पद्य ६५

अहीर का स्वतंत्र प्रयोग केवल 'मधुज्वाल' के उक्त पद्य में उपलब्ध होता है। मिश्र रूप में यह 'ज्योत्स्ना' के एक गीत (पृ० ८६) में महानुभाव के साथ, 'मधुज्वाल' के पद्य ५,२३,३६,४४ में शृंगार के साथ, पद्य ६ में शृंगार, चौपाई, तांडव के साथ तथा 'युगवाणी' के 'जलद' में लीला-हाकलि के साथ प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग गीत की टेक या स्वच्छंद छंद में ही मिलते हैं। प्रयोग-स्थल—

वीणा—पद्य ५६ (करता है गति-रोध)
पल्लव—उच्छ्वास (है यह वैदिक-वाद, हो जाता संसार) आंसू (चरण-चरण है आह)
गुंजन—गीत ४४ (टेक–तेरा कैसा ज्ञान)
युगवाणी—मानव (बुन स्वप्नों के जाल आदि ५ पंक्तियाँ) चींटी (वह कण, अणु, परिमाणु) उन्मेष (मौन रहेगा ज्ञान) प्रकृति के प्रति (धातु, वर्ण, रस-सार आदि ५ पंक्तियाँ)
ग्राम्या—स्वीट पी के प्रति (जग से चिर अज्ञात)
स्वर्णकिरण—ज्योतिभारत (टेक-हँसता जहाँ अशेष आदि ३ पंक्तियाँ) संक्रमण (दर्शन, सहस्र शास्त्र)
स्वर्णधुलि—गणपति उत्सव (स्वाभिमान, अपनाव) आशंका (यदि जीवन-संग्राम) मर्मकथा (विवश, फूटते ज्ञान, बाँध दिए क्यों प्राण, तुमने चिर अनजान)
अतिमा—अंतर्मानस (चीर बुद्धि के फेन)

अहीर का स्वतंत्र प्रयोग पंत के अतिरिक्त किसी छायावादी ने नहीं किया। परिमाण की दृष्टि से यदि देखें, तो पंत-काव्य में ही यह सब से अधिक प्रयुक्त हुआ है।

(१६) शिखंडी (११ मा०)

जगे तरु नीड़ सकल
खगों में भीड़ विकल
पवन में गीत नवल
गगन में पंख चपल।

—स्वर्णकिरण : अभिवादन।

इसका प्रयोग प्रसाद और महादेवी ने नहीं किया। निराला-काव्य में इसकी छटपुट पंक्तियाँ मिलती हैं। पंत ने उक्त कविता में तथा 'स्वर्णधूलि'

की 'चेतन' कविता में (तीन पंक्तियों को छोड़कर) इसका स्वतंत्र प्रयोग कर इसे एक छंद के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। संभवतः इसीलिए डॉ० शुक्ल ने इसे नवीन छंद मानकर 'अभिवादन' की उक्त पंक्तियाँ उदाहरण-रूप में रक्खी हैं।[1] दोनों कविताओं के अतिरिक्त इसके चरण अन्यत्र भी मिलते हैं। यथा—

पल्लव—आंसू (हाय किसके उर में, नवोढ़ा बाल लहर, सरकती है सत्वर, इंद्रधनुषी हलका, करुण है हाय प्रणय, करुण-तर है वह भय, करुणतम भग्न हृदय, हाय मेरा जीवन)
परिवर्त्तन (सिहर उठते उडुगण, निखिल उत्थान-पतन, मूंद प्राचीन मरन, खोल नूतन जीवन)

स्वर्णकिरण—संक्रमण (खो गया जीवन रस आदि ६ पंक्तियां)
नारी-पथ (प्रथम मधु पल्लव के, लोटता पीठों पर, युवक युवती समान) युग-प्रभात (विचरतीं धरती पर आदि)

स्वर्णधूलि—गणपति, आशंका, युगागम, स्वर्ग अप्सरी, प्रतीति, सायंकता, चित्रकरी

अतिमा—अंतर्मानस (विचारों के बुद्बुद)

गीतहंस—पद्य ५० (सृजन के लिए भार)

(२०) शिव (११ मा०)

हलकी जल की फुही।—युगवाणी : बदली का प्रभात
किसकी यह कल्पना।— ,, ओस के प्रति
तुम्हें जो दिया बना।— ,, ,,
हुए साथ ही बड़े।— ,, दो मित्र

त्रिकल पर चलने वाले शिव छंद का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। इसके चरण स्वच्छन्द छन्द में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। यथा—

युगवाणी—सुमन के प्रति (सुन्दर है वह अमर) प्रकृति के प्रति (हार गई तू प्रकृति) बदली का प्रभात (कोमलाभ दृग सुभग)

स्वर्णकिरण—संक्रमण (व्याप्त है अनेकता) युगप्रभात (स्वप्नों की तूलि धर, जीवन सौंदर्य के)

स्वर्णधूलि—गणपति उत्सव (श्रद्धा विश्वास का, आशा उल्लास का)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २४७

साधना (जीवन की साधना) प्रतीति (विहगों का मधुर स्वर, तन में भरती सिहर)

अतिमा—विज्ञापन (छंद बंद खुल गए, गीत गल गया सही)

पौ फटने के पहले—पद्य ४ (सखि अंतश्चेतने) ७ (निज शिशु सद्घर चुना)

गीतहंस—पद्य ४४ (श्री सुषमा में पले)

महादेवी में शिव प्राप्त नहीं होता। प्रसाद के तीन छंदकों में यह प्रयुक्त हुआ है। निराला और पंत में परिमाणतः इसका प्रयोग समान है। पर जहाँ निराला ने स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में इसका प्रयोग किया है, वहाँ पंत ने केवल स्वच्छंद छंद में।

(२१) तांडव (१२ मा०)

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?......(शृंगार)
अये, अभिनव अभिराम।...... (तांडव)
मृदुलता ही है बस आकार। ....(शृंगार)
मधुरिमा छवि-शृंगार।........ (तांडव)
—पल्लव : शिशु के प्रति

शृंगार और इस छंद के मिश्रण से निर्मित अनुच्छेद को डॉ० शुक्ल ने नंदन नाम दिया है और पंत को इसका आविष्कारक बतलाया है। उनके अनुसार यह छंद शृंगार छंद की लय पर १६ और १२ मात्राओं के योग से बना है।[१] फिर आगे इसी १६ और १२ के योग से बने छंद को वे नंदन छंद का अर्द्धसम रूप बताते हैं।[२] यह वस्तुतः शृंगार और तांडव के मेल से बना प्रगाथ छंद है। पंत ने इन दोनों छंदों का अनियमित रूप से मिश्रण किया है। कहीं प्रथम-द्वितीय-चतुर्थ चरण तांडव के और तृतीय शृंगार का है, (आँसू—अंतिम दो पीयूषवर्षी-निबद्ध पद्यों के पूर्व) कहीं प्रथम और पंचम तांडव के हैं, पर बीच में तीन चरण शृंगार के रख दिए गए हैं, (परिवर्त्तन ११) तो कहीं तीन शृंगार के चरणों के बाद एक तांडव का है। (परिवर्त्तन ११) ऐसी दशा में ऐसे पद्य के छन्द को अर्द्धसम कहना ठीक नहीं। यह न तो नंदन कहा जा सकता है,

१. आ० हि० का० में छंद योजना : पृ० ३०१
२. वही, पृ० ३१२

और न पंत इसके आविष्कारक माने जा सकते हैं। इन दोनों के मिश्रण से बने प्रगाथ छन्द के प्रयोग का श्रेय उन्हें अवश्य दिया जायगा।

तांडव का स्वतंत्र प्रयोग पंत-काव्य में नहीं मिलता। प्रायः श्रृंगार के साथ इसका मिश्रण हुआ है। स्वच्छन्द छन्द में भी इसके चरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं–

वीणा—पद्य ४२ (सरसी-श्रृंगार के प्रगाथ की टेक में प्रयुक्त) ४६,५० (छंद श्रृंगार–टेक तांडव) ५६ (छोड़ अंतिम निःश्वास)

पल्लव—निर्झर गान, शिशु, नारी-रूप, स्मृति, (सब में श्रृंगार के साथ) उच्छ्वास (सरल अस्फुट उच्छ्वास, दीप के बचे विकास, बँधे हैं जीवन-तार, हृदय के सुरभित साँस, जरा है आदरणीय, मधुरिमा के मधु हास, मर्मपीड़ा के हास, रोग का है उपचार, पाप का भी परिहार, सिड़ी के गूढ़ हुलास) आँसू (बहा दे हृदयोद्गार, खिलाए हैं नादान, किसे अब दूं उपहार, धुएँ का विश्व विशाल; सिहर उठता कृश गात, चाहते क्या आदान, गया भी बिना प्रयास, दिखाऊँ मैं साकार, मूंद दुहरे दृग द्वार, पिघल पड़ते है प्राण, सुप्ति हो स्वल्प वियोग, नव मिलन को अनिमेप, मृत्यु ही है शेप) विश्वछवि (श्रृंगार + गोपी के साथ) परिवर्त्तन (सरसी, श्रृंगार, गोपी, शिखंडी, श्रृंगारकल्प तथा रोला के साथ)

गुंजन–मधुवन (श्रृंगार + मधुवन के साथ) पद्य २७,३३ ३६ (श्रृंगार के साथ)

युगांत–संध्या (श्रृंगार के साथ)

युगवाणी—सुमन के प्रति (भाव, वाणी या रूप)

स्वर्णकिरण—संक्रमण (सभ्यता के ब्रह्मास्त्र) स्वर्णोदय (रहस्यों के आख्यान, पहन नव जीवन ज्वाल)

स्वर्णधूलि—सार्थकता (घुमड़ता छायाकाश)

ज्योत्स्ना–पृ० १०५ (श्रृंगार के साथ ५ पंक्तियाँ)

गीतहंस—पद्य १७ (तुहिन स्मित खिलें प्रवाल)

मधुज्वाल–पद्य ७, ४८, ५८, ६०, ६७, ६६, ७०, ७२, ८२, ८३ (सब श्रृंगार के साथ) पद्य ६ (अहीर, श्रृंगार, चौपाई) ७८ (अहीर के साथ)

इसके अतिरिक्त 'पतझर' की 'सत्य दृष्टि' (पृ० १०२) में तांडव और छवि के एक-एक चरण के योग से एक पंक्ति बनाई गई है। यथा—

उसी में धीरे सांस/खींच मैं ढला।

भानु-द्वारा उल्लिखित इस तांडव का चरण प्रसाद में नहीं मिलता। निराला और महादेवी के काव्यों में छिटपुट रूप में अवश्य प्राप्त होता है, पर पंत ने इसका विशद प्रयोग कर इसे काव्य-जगत् में पूर्णतया प्रतिष्ठित कर दिया।

(२२) महानुभाव (१२ मा०)

करुणा धारा में झर
स्नेह अश्रु बरसा कर
व्यथा भार उर का हर
शांत करो आकुल मन।

—उत्तरा : अंतर्व्यथा

महानुभाव का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में मिलता है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

युगवाणी—हरीतिमा (टेक-अखंड)
ग्राम्या—पतझर
उत्तरा—अंतर्व्यथा
लोकायतन—जीवनद्वार : युगभू (प्रारंभ-अंत), आत्मदान (प्रारंभ-अंत), मधुस्पर्श (अंत), संस्थान (प्रारंभ)
शिल्पी—पृ० ६३, अप्सरा का गीत ('मर्मर भर अस्फुट स्वर' जैसी पंक्तियों में यदि अंतर्तुक नहीं मान कर तुक मानें, तो ऐसी पंक्तियाँ अलिपद की कही जायँगी)

मिश्र प्रयोग के स्थल—

गुंजन—पद्य ३८ (शशिवदना, चौपाई के साथ)
युगांतर—भारतगीत १ (सार, हंसगति, चौपाई, पंचचामर)
,, ३ (सार, चौपाई, प्रमाणिका)
स्वतंत्रता-दिवस (रोला के साथ)
स्वर्णधूलि—दिवा स्वप्न, परिणति (चौपाई के साथ) प्रणयकुंज (पदपादाकुलक, माली के साथ) आवाहन (हाकलि, सार) प्रीति-निर्झर (प्रदीप, चौपाई, रोला) मानसी ३ (चौपाई, सार)
उत्तरा—नमन (चौपाई के साथ)
वाणी—स्नेह स्पर्श (रोला के साथ)

पतझर—संबोधन (हाकलि के साथ) चित्रगीत, प्रेमाश्रु (चौपाई, सार)
गीतहंस—पद्य ७१ (चौपाई के साथ)
मधुज्वाल—पद्य ५१ (चौपाई के साथ)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में लिखी अनेक कविताओं में भी इसके चरण प्राप्त होते हैं।

प्रसाद और महादेवी में तो इसका प्रयोग दो-चार पंक्तियों तक ही सीमित है, पर निराला और पंत ने इसका प्रयोग विपुल परिमाण में तथा स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में किया है।

(२३) प्रमाणिका मात्रिक (१२ मा०)

(क) महान क्रांति आज हो,
अखंड राम-राज हो,
अभीष्ट लोक काज हो,
सुसभ्य जन समाज हो।

—स्वर्णधूलि : मानसी १६

(ख) प्रयाण तूर्य बज उठे
पटह तुमुल गरज उठे

—युगांतर : भारत-गीत (३)

ज र ल ग का प्रमाणिका वर्णवृत्त होता है। यह नियम 'क' की प्रथम तीन पंक्तियों में पूर्णरूप से घटित होता है। शेष पंक्तियों में एक गुरु की जगह दो लघु रखने से गण-विपर्यय हो गया है, पर लय प्रमाणिका की ही है। अतः यह प्रमाणिका का मात्रिक रूप कहा जायगा। पंत-काव्य में प्रमाणिका के ये ही दो स्थल हैं। प्रसाद, निराला तथा महादेवी में यह प्राप्त नहीं।

(२४) लीला (१२ मा०)

सौ सौ ये लोल लहर
परियों के रत्न-विवर
सौधों की स्वर्ण शिखर !
तट पर मैं रहा विचर।

—स्वर्णकिरण : मत्स्यगंधाएँ।

पंत ने लीला का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में किया है। अतिरिक्त स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

स्वर्णधूलि—अंतर्विकास, मानसी ८

रजतशिखर—पृ० ७,२७,५४,६५,७३,९८,१०१,११५,१४४,१४६,१५४
सौवर्ण—पृ० १४,२४,४१,४७,११२
ज्योत्स्ना—पृ० ३०,३३,५९,६८,८६,९८,११३,१२३
अतिमा—लोकगीत
वाणी—भावरूप
किरण-वीणा—विहंगनी, भारतगीत
शिल्पी—पृ० ६८, ७०,७१,७३,७५,७८,८०,८७

मिश्र प्रयोग के स्थल—
युगवाणी—युगनृत्य (सुगति, धारी, अलिपद के साथ)
स्वर्णधूलि—शरद चाँदनी (हीर के साथ) साधना (शिव, अलिपद के साथ) अंतर्लोक (निधि के साथ) मातृशक्ति (सुगति, अलिपद, शशिवदना)
रजतशिखर—पृ० ४२ (योग की एक पंक्ति)
ज्योत्स्ना—पृ० ३, ३७ (कुंडल की दो-दो पंक्तियाँ) १७ (योग की एक पंक्ति)
पौ फटने के पहले—पद्य ३८ (कुंडल की ८ पंक्तियाँ)
शिल्पी—पृ० ४४, ५७ (योग की क्रमशः दो और एक पंक्ति)

इस प्रकार निराला के समान पंत ने भी लीला का विशद प्रयोग किया है। प्रसाद में तो इसका कहीं पता नहीं, पर महादेवी के तीन गीतों में लीला प्रयुक्त हुई है।

(२५) विजातक (१२ मा०)

अचित का चिर जहाँ तम,
× ×
जगत जीवन अमा में
× ×
मरण के आवरण से।

—स्वर्णधूलि : चेतन

विजात छंद सप्तक (। ऽ ऽ ऽ) की दो आवृत्तियों से बनता है। उसकी अंतिम दो मात्राओं को निकाल देने से विजातक का निर्माण होता है। शृंगार की अंतिम चार मात्राओं को हटा देने से इसका निर्माण इसलिए संभव नहीं कि इसके अंत में एक जगण (। ऽ ।) रखने पर शृंगार की लय बाधित हो जाती

क्षुधार्त्त रे असंख्य प्राण
नग्न देह, बुद्धि म्लान (लीला)
विनम्र शिष्ट निरभिमान
पुरुष नारि हो समान (लीला)

—स्वर्णधूलि : मानसी १६

लीलाधिका छन्द की केवल तीन पंक्तियाँ उक्त पद्य में लीला के साथ पाई जाती हैं। लीला मल्लिका (र ज ग ल) का मात्रिक रूप है और इसी मल्लिका या लीला (क्योंकि 'निरभिमान' में दो लघु (निर) एक गुरु के लिए आया है) के आदि में एक लघु के योग से यह छन्द बना है। पंचचामर (ज र ज र ज ग) के प्रारंभिक तीन गणों को लेकर भी इसका निर्माण हो जाता है। निराला ने लीला के अंत में एक लघु जोड़ कर एक नया छन्द बनाया है। (देखिए—निराला की छन्दोयोजना : चंग छन्द) और पंत ने उसके आदि में। पर जहाँ निराला का निर्माण मात्रिक संस्कार से अभिषिक्त है; वहाँ पन्त की सृष्टि वर्णवृत्त के प्रभाव को वहन करती है।

इसके अतिरिक्त एक ऐसी भी पंक्ति मिलती है, जो लीला के आदि में दो मात्राओं के योग से बनी है। यथा—

रे आज पड़ी ज्वलित वरण।

—स्वर्णधूलि : स्वर्ग अप्सरी

(३०) पदपादांकुर (१३ मा०)

जग-जीवन का उल्लास।—गुंजन, पद्य ३५
वह है पिपीलिका पाँति।—युगवाणी : चींटी
ये पशु-लिप्साएँ चार।— ,, ,,
तुम सीख राग, फल-त्याग।— ,, द्वंद्व

पन्त-काव्य में इसका प्रयोग केवल स्वच्छन्द छन्द में हुआ है। निराला ने स्वच्छन्द छन्द के अतिरिक्त इसका प्रयोग प्रगाथ छन्द में भी किया है। महादेवी में यह केवल दो गीतों के छन्दकों में प्रयुक्त है। प्रसाद में यह प्राप्त नहीं। इस प्रकार इसका प्रयोग बहुत विरल परिमाण में हुआ है। पन्त-काव्य में इसके प्रयोग के कुछ और स्थल—

(क) तुम बने वाष्प आकाश।—युगवाणी : ओस के प्रति
(ख) हर उर का मोहित भार।—पौ फटने के पहले : पद्य ४६
(ग) लगता असार संसार।— ,, ,, ३७

(घ) टूटी चूड़ी-सा चाँद ।—किरण-वीणा : चाँद
(ङ) बिखरा अनंत उल्लास ।— ,, स्वर्णकिरण
(३१) प्रदोष (१३ मा०)

गान में भरा निवेदन,
प्राण में भरा समर्पण,
ध्यान में प्रिय के दर्शन

—स्वर्णधूलि : प्रीतिनिर्झर

प्रदोष छन्द का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार इस नवीन छन्द की सृष्टि पंत ने की है। यह पंचक और दो चौकलों के योग से बनता है।[1] चौपाई की प्रारंभिक तीन मात्राओं को हटा देने से भी यह छन्द बन जाता है। यह न तो नवीन छन्द है और न पंत ने इसकी सृष्टि की है। इसका प्रथम प्रयोग 'सूरसागर' के परिशिष्ट (पद १२६) में सार की अर्द्धाली के साथ हुआ है। भारतेंदु ने भी इसी ढंग से इसका प्रयोग 'मधुमुकुल' (पद ४७, ७०) तथा 'बंदर-सभा' (भारतेंदु ग्रन्थावली, पृ० ७६२) में किया है। पन्त की उक्त कविता में इसकी १२ पंक्तियाँ महानुभाव के साथ मिश्रित हुई हैं। चौपाई और रोला की भी क्रमशः एक और दो पंक्तियाँ हैं। इस कविता के अतिरिक्त इसकी एक पंक्ति 'युगवाणी' की 'प्रकृति के प्रति' में भी मिलती है। (आज वन मानव की कृति) पंत के अतिरिक्त छायावादी-त्रय में इसका प्रयोग किसी ने नहीं किया।

(३२) उल्लाला (१३ मा०)

(क) मिलों से हैं खड़े।—युगवाणी : दो मित्र
उन्मद यौवन से उभर।—ग्राम्या : ग्रामयुवती
नभ से परियों से उतर।—स्वर्णकिरण : युगप्रभात
आओ स्थितियों से लड़ें।—स्वर्णधूलि : गणपति उत्सव
(ख) फूल देखता रह गया।—किरण-वीणा : फूल, पृ० ४३
भले कृच्छ्र संभाव्य हो। —गीतहंस : पद्य ६७

उल्लाला का प्रयोग स्वच्छंद छंद में ही प्राप्त होता है। समकलात्मक शब्दों से प्रारंभ होने वाली 'क' की पंक्तियाँ पदपादांकुर की भी कही जा सकती हैं। नगणांत अथवा लगात्मक (। ऽ) अंत वाली ऐसी पंक्तियाँ ही दोनों की (उल्लाला और पदपादांकुर) हो सकती हैं। गलात्मकांत (ऽ ।) होने पर

१. आ० हि० का० में छन्द योजना : पृ० २५१

उल्लाला की नहीं हो सकतीं। इसीलिए गलात्मक अंत वाले ऐसे प्रयोग को पदपादांकुर नाम से अभिहित करना पड़ा है। त्रिकलात्मक शब्दों से प्रारम्भ होने वाली 'ख' की पंक्तियाँ तो उल्लाला की ही हो सकती हैं, पदपादांकुर की नहीं। क्योंकि पद्धरि-पदपादाकुलक का प्रारंभ दो त्रिकलों से नहीं हो सकता।

अतिरिक्त प्रयोग-स्थल—

(क) स्वप्नों के वन-सा सघन
(ख) रत्न-प्रसवनी मातरम् } स्वर्णकिरण : स्वर्णोदय

महादेवी में उल्लाला नहीं मिलता। निराला में इसकी एक पंक्ति उपलब्ध होती है। पंत के स्वच्छंद छंद में इसके कतिपय चरण प्रयुक्त हुए हैं। पर प्रसाद ने इसका स्वतंत्र प्रयोग भी किया है।

(३३) हाकलि (१४ मा०)

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
+ +
तज कर तरल तरंगों को,
इंद्रधनुष के रंगों को।

—पल्लव : मोह

यद्यपि हाकलि का स्वतंत्र प्रयोग पंत ने कहीं नहीं किया है; पर मिश्र रूप में और स्वच्छंद छंद में इसके चरण विपुल परिमाण में मिलते हैं। मिश्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य १, २, ५, १६, २७, ४१ (सब ताटंक के साथ) ६, ८, ४५ (चौपाई के साथ) १३, २२, २४, ४३ (वीर, ताटंक, चौपाई) १७, २१, ३४ (वीर, ताटंक) २६, ३२, ४८, ६३ (चौपई, वीर)

पल्लव—मोह (चौपई, ताटंक) वसंतश्री (चौपाई, ताटंक, वीर) निर्झरी (चौपई) आकांक्षा (चौपई, वीर) याचना (ताटंक) उच्छ्वास (मुरली के से चमकीले)

युगवाणी—जलद (लीला, अहीर के साथ)

ग्राम्या—नव इंद्रिय (रास, समानसवैया)

स्वर्णधूलि—आह्वान (चौपाई के साथ) रसस्रवण (१ पंक्ति-निष्ठुर जग, निर्मल जीवन—अखंड, चौपाई, अलिपद) मानसी ४ (चौपाई) मानसी ७ (चौपई)

उत्तरा—आह्वान (चौपाई)

रजतशिखर—पृ० ६५ (ताटंक, चौपाई)

पतझर—१०२ (महानुभाव)

मधुज्वाल—पद्य ६५ (कज्जल, पदपादाकुलक के साथ)

इन प्रगाथ छंदों के अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में लिखित अनेक कविताओं में हाकलि के चरण पाये जाते हैं।

महादेवी ने हाकलि नहीं लिखी। प्रसाद में वह मिश्र रूप में बहुत कम परिमाण में पाई जाती है। निराला ने स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में इसका प्रयोग संभवतः पंत से अधिक किया है।

(३४) सखी (१४ मा०)

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक!
जीवन के अंतस्तल में
नित बूड़ बूड़ रे भाविक!

—गुंजन : पद्य ६, ज्योत्स्ना, पृ० ६४

सखी छंद का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में विपुल परिमाण में पाया जाता है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

पल्लव—विसर्जन

गुंजन—पद्य २, ३, ४, ६, ७, ८, ६, ११, १२, १३, १४ चाँदनी, मानव, २०, २६, ३१, ३२, ३७, चाँदनी (पृ० ७६)

युगांत—दीपशी

युगवाणी—नर की छाया

लोकायतन—संस्कृति-द्वार (आत्मदान, संक्रमण, मधुर स्पर्श) पृ० ४६२

ज्योत्स्ना—पृ० ४८, ६४, ८०

गीतहंस—पद्य ६४

किरण-वीणा—अमृततरी

मधुज्वाल—पद्य ७५, ७६, ७६, ८०, ८१

मिश्र प्रयोग तथा स्वच्छंद छंद में—

पल्लव—उच्छ्वास (उसके उस सरलपन···समीप खिंच आया)

युगांतर—त्रिवेणी (मैं तुमको समझ न पाती)

युगवाणी—युगवाणी (हे विश्वमूर्ति कल्याणी) द्वंद्व (जड़ प्रकृति तुम्हारा अवयव)

स्वर्णधूलि—स्वप्ननिर्वल (यह भेद बताओ गोपन)
उत्तरा—प्रतिक्रिया (फिर हरो धरा का प्राक्तन)
अतिमा—अंतर्मानस (भव नाम रूप दिशि पल में)
शिल्पी—पृ० १०२ (पद्धरि-पदपादाकुलक के साथ-फिर उतर रही वसुधा पर—जैसी पंक्तियाँ)

सखी का प्रयोग प्रसाद, पंत तथा महादेवी ने प्रचुर मात्रा में किया है। निराला-काव्य में इन तीनों की अपेक्षा यह बहुत कम प्रयुक्त हुई है।

(३५) कज्जल (१४ मा०)

निद्रा, भय, मैथुनाहार···(कज्जल)
—ये पशु-लिप्साएँ चार···(पदपादांकुर)
हुईं तुम्हें सर्वस्व सार ?···(कज्जल)
धिक मैथुन-आहार-यंत्र ।···(कज्जल]

—युगवाणी : चींटी

कज्जल का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। उपर्युद्धृत पंक्तियों में दूसरी पदपादांकुर की है, शेष कज्जल की। इसके चरण अधिकतर स्वच्छंद छंद में उपलब्ध होते हैं। 'मधुज्वाल' के पद्य ३३ में चौपई-पद्धरि के साथ तथा ८५ में पदपादाकुलक और हाकलि के साथ मिश्र रूप में यह प्रयुक्त हुआ है।
प्रयोग-स्थल—

गुंजन—एक तारा (नीरव संध्या में प्रशांत)
युगवाणी—मानव (देशकाल के मिला छोर) चींटी (चिर सक्रिय वह नहीं स्थाणु; वाह्य नहीं आंतरिक साम्य) प्रकृति के प्रति (बने अस्थि; त्वच, रक्तधार) द्वंद्व (जीवन के ही अंश भाग) ओस के प्रति (स्वर्गिक मोती अतुल कोष, चटुल अनिल ने तुम्हें तोल)
ग्राम्या—ग्रामयुवती (निर्जन में सज ऋतु सिंगार)
अतिमा—प्राणों की द्वाभा (घिरा रुपहला अंधकार)
गीतहंस—पद्य १६ (दो पंक्तियाँ, पृ० ३८) ३० (पृ०६७) (६८ पृ० १७०)
वाणी—फूल की मृत्यु (पृ० ४६) कौवे (पृ० ४१) घोंघे शंख (पृ० ६८) नम्र अवज्ञा (पृ० ७१)
पौ फटने के पहले—पद्य २३ (पृ० ६४) ३३ (पृ० ८१) ३६ (पृ० ८८) ४६ (आज खुल गए हृदय-द्वार)

पतझर—नीलकुसुम (वह क्या नयनों का प्रतीक) मध्या के प्रति (रस-विह्वल आवेश ज्वार) अनुभूति (मैं चैतन्य-प्रकाश मग्न)

किरण-वीणा—रूप स्वप्न (खुले हृदय के रुद्ध द्वार) पक्षी (पृ० ४४) स्वर्णकिरण (पृ० ८३) वेणीवार्त्ता (कवि का किससे क्या दुराव) सूरज और जुगनू (पृ० १३८) प्रेममार्ग (पृ० ५२)

प्रसाद और महादेवी में कज्जल प्राप्त नहीं। निराला में इसके बहुत थोड़े चरण मिलते हैं। पंत ने इसका प्रचुर प्रयोग किया है।

(३६) सुलक्षण (१४ मा०)

लोगी मोल, लोगी मोल।—गुंजन : पद्य ३४

रक्त पलाश ! रक्त पलाश
प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार ! } युगवाणी : मधु के स्वप्न
आम्र रसाल ! आम्र रसाल

तेरी ओर मेरा प्यार—स्वर्णधूलि : सार्थकता

सप्तक (ऽ ऽ ऽ ।) की दो आवृत्तियों से निर्मित सुलक्षण की ये पंक्तियाँ 'गुंजन' और 'युगवाणी' की कविताओं में क्रमशः चौपई और वीरछंद से बने अनुच्छेदों में छंदक के रूप में तथा 'स्वर्णधूलि' की स्वच्छंद छंद में लिखी 'सार्थकता' एवं मानसी ७ (सीताराम सीताराम) और मानसी ८ (राधेश्याम राधेश्याम) की टेकों में प्राप्त होती हैं।

प्रसाद के काव्य में यह केवल तीन छंदकों में प्राप्त होता है। निराला तथा पंत के स्वच्छंद छंद में इसकी कुछ ही पंक्तियाँ मिलती हैं। महादेवी ने छंदकों के अतिरिक्त तीन गीतों में इसका स्वतंत्र प्रयोग किया है।

(३७) मनोरम (१४ मा०)

चाहता मन आत्म गौरव,
चाहता मन कीर्त्ति सौरभ,
ज्ञान मंथन, नीति दर्शन,
मान पद अधिकार पूजन।

—स्वर्णधूलि : चौथी भूख।

मनोरम छंद में कोई भी कविता स्वतंत्र रूप से निबद्ध नहीं। प्रगाथ और स्वच्छंद छंद में ही इसका प्रयोग दिखलाई पड़ता है। प्रयोग-स्थल—

स्वर्णधूलि—चौथी भूख (वीर, माधवमालती, उर्मिला, पीयूषनिर्झर, पीयूषवर्षी के साथ)

रजतशिखर—ग्रीष्म का गीत (पृ० १४८) (ज्योति की टेक, रूपमाला की एक पंक्ति, फिर मनोरम के तीन-तीन चरणों को अनुच्छेद)

पौ फटने के पहले—पद्य ३६ (माधवमालती के साथ)

किरण-वीणा—तुम कौन (पीयूषनिर्झर, माधवमालती के साथ) हिम अंचल (माधवमालती के साथ)

'स्वर्णधूलि' की स्वच्छंद छंद में लिखित 'चौथी भूख' के अतिरिक्त इसकी पंक्तियाँ और भी यत्र-तत्र मिलती हैं। यथा—

पौ फटने के पहले—पद्य २ (प्रिये, रहती हो अगोचर आदि) पद्य ३ (जब तुम्हें मैं प्राण छूता)

वस्तुतः सप्तकाधृत किसी भी स्वच्छंद छंद में इसकी पंक्तियाँ आसानी से मिल जाती हैं। एक ऐसी भी पंक्ति है, जो मनोरम के अंतिम गुरु को लघु बना कर निर्मित हुई है। यथा—

देह की है भूख एक।

—स्वर्णधूलि : चौथी भूख

इसी प्रकार निम्न पंक्तियाँ मनोरम के अंत में एक गुरु रख कर बना ली गई हैं—

(क) हृदय कवि का भाव-अनुरागी।

—पौ फटने के पहले : पद्य १३

(ख) प्यार,
तुमको प्यार करता हूँ।

—किरण-वीणा : लक्ष्य

मनोरम का प्रयोग इस प्रकार पंत ने निराला और महादेवी की अपेक्षा बहुत कम किया है। प्रसाद में तो इसकी केवल दस पंक्तियाँ मिलती हैं।

(३८) मधुमालती (१४ मा०)

तुम मनुज को दोगी अभय।

—पौ फटने के पहले : पद्य ४७, पृ० १४१

पंत के काव्य में मधुमालती की यही एक पंक्ति मिलती है। प्रसाद में यह उपलब्ध नहीं। निराला का प्रयोग पाँच पंक्तियों तक सीमित है। महादेवी के काव्य में इन तीनों की अपेक्षा कुछ अधिक चरण मिलते हैं।

(३९) विजात (१४ मा०)

(क) विलासिनि
प्राण उन्मादिनि,

निभृत उर कक्ष में आओ,
न मुग्धे, और बिलमाओ।
—पौ फटने के पहले : १३ (पृ० ३४)
(ख) तुम्हारे प्रेम से वंचित।— ,, ६१ (पृ० १७५)

विजात के केवल उक्त चार चरण पंत के समस्त काव्य में प्राप्त होते हैं। प्रसाद ने इसका प्रयोग नहीं किया। निराला ने स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में तथा महादेवी ने एक गीत में मिश्र रूप में इसका प्रयोग किया है।

(४०) उज्ज्वला मात्रिक (१५ मा०)

अंतर्मुख साक्षात्कार का / सत्य—
समाधित देता निःस्वर दर्शन।
—गीतहंस : पद्य ६८ (पृ० १७१).

पंत-काव्य में स्वच्छंद छंद में लिखित उक्त कविता में उज्ज्वला मात्रिक की केवल एक पंक्ति मिलती है। यहाँ 'अंतर्मुख साक्षात्कार का' उज्ज्वला मात्रिक का चरण है और 'सत्य समाधित देता निःस्वर दर्शन' हंसगति का। स्वच्छंद छंद में एक छंद के चरण के बीच या अंत में दूसरे छंद के चरण को रख देने की प्रवृत्ति इधर पंत में बहुत अधिक दिखलाई पड़ती है।

प्रसाद और निराला के साहित्य में टेक के रूप में इसकी चार-चार पंक्तियाँ मिलती हैं। महादेवी में यह प्राप्त नहीं होता।

(४१) चौबोला (१५ मा०)

कर्दम आँगन ही में पला।—पतझर : सत्यदृष्टि (पृ० १०२)
रहा हृदय।—
वह मेरा कहाँ।—गीतहंस : पद्य ८६ (पृ० २३१)
घाव भग्न-हृदयों के सियो।—किरण-वीणा : सीख (पृ० ८१)

स्वच्छंद छन्द में लिखी उक्त कविताओं में ही चौबोले की उक्त तीन पंक्तियाँ मिलती हैं।

प्रसाद-काव्य में चौबोले का केवल एक चरण मिलता है। महादेवी में यह प्राप्त नहीं होता। निराला ने गीतों और स्वच्छन्द छन्द में इसके चार चरणों का और पंत ने स्वच्छन्द छन्द में तीन चरणों का प्रयोग किया है।

(४२) चौपई (१५ मा०)

हाँ,-/हम मारुत की मृदुल झकोर;
नील व्योम की अंचल छोर;

बाल कल्पना - सी अनजान
फिरती रहती हैं निशि भोर;
उर-उर की प्रिय, जग की प्राण।

—पल्लव : विश्व-वेणु

चौपई का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग केवल चार कविताओं (पल्लव—वीचिविलास, विश्ववेणु; गुंजन—२२, ३४) तथा 'लोकायतन' के अंतर्विकास (पृ० ४२७) एवं उत्तर स्वप्न (पृ० ६१३) के प्रारंभ में हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं--

वीणा—पद्य ४, ६, ४५ (हाकलि के साथ) १३, २२, २४, ४३ (वीर, ताटंक, हाकलि) १८, ४७ (ताटंक) २६, ३२; ४८, ६३ (हाकलि, वीर) ३१, ३८ (हाकलि, ताटंक) ४० (ताटंक, वीर)

पल्लव—विनय (वीर के साथ) मोह (हाकलि, ताटंक) निर्झरी (हाकलि) आकांक्षा (हाकलि, वीर)

ग्राम्या—पृ० ४४ (चौपाई, वीर, समानसवैया)

स्वर्णकिरण—ज्योति भारत (टेक—ज्योति भूमि, जय भारत देश)

स्वर्णधूलि—मानसी ७ (हाकलि के साथ

उत्तरा—अभिलाषा (वीर, चौपाई)

लोकायतन—विज्ञान—अंत (तमाल के साथ, पृ० ४२४)

मधुज्वाल-पद्य ३८ (चौपाई के साथ) १२५, १२८ (अखंड, मुक्ति के साथ)

इसके अतिरिक्त स्वच्छन्द छन्द (पल्लव-उच्छ्वास, आँसू; युगवाणी-प्रकृति के प्रति; स्वर्णधूलि-आशंका, प्रणाम) में भी इसके चरण उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार चौपई का प्रयोग सभी छायावादियों की अपेक्षा पंत ने बहुत अधिक परिमाण में किया है। प्रसाद में चार, महादेवी में दो और निराला में इसकी कतिपय छिटपुट पंक्तियाँ ही प्राप्त होती हैं।

(४३) गोपी (१५ मा०)

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूपन,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।

—पल्लव : उच्छ्वास

'मधुज्वाल' के पद्य ५७ में गोपी का स्वतंत्र प्रयोग अवश्य हुआ है; पर सभी छायावादियों के समान पंत ने भी इसका प्रयोग प्रायः श्रृंगार के साथ मिश्रित रूप में ही किया है। इसके साथ उनके विपरीत इनके काव्य में गोपी-निबद्ध पूरा-का-पूरा पद्य भी अनेक स्थलों पर मिल जाता है। यथा—

(क) रँगीले गीले..............अवसित।—पल्लव : उच्छ्वास; पृ० ६
(ख) गिरा हो जाती...........श्रवण।— ,, पृ० ११
(ग) द्विरद दंतो............. गजवर।—पल्लव : आँसू, पृ० २२
(घ) अर्द्धनिद्रित..............विमर्षित-सा।—,, स्याही का बूंद

'स्वर्ण किरण' की 'स्वर्णोदय' कविता में (जिसमें चौपाई, अखंड, रोला, समानसवैया, श्रृंगार, तांडव, हाकलि, हंसगति, सार, महानुभाव आदि अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है) गोपी के अनेक स्वतंत्र पद्य (पृ० ९९, १०६, १०७, ११९) मिलते हैं। अतरिक्त प्रयोग-स्थल—

वीणा—पद्य ५३ (सरसी, श्रृंगार, चौपाई के साथ) २६ (श्रृंगार के साथ)
पल्लव—मधुकरी, विश्व व्याप्ति, स्याही का बूंद (श्रृंगार के साथ)
परिवर्त्तन (श्रृंगार, श्रृंगारकल्प)
स्वर्णकिरण—स्वर्णोदय (श्रृंगार के साथ, पृ० ११९, १२३, १२९, १३१)
किरण-वीणा—प्रश्नोत्तर (श्रृंगार के साथ)
मधुज्वाल—पद्य १६ (अलिपद, सुगति, छवि के साथ) ८५ (श्रृंगार के साथ)

इसके अतिरिक्त गोपी और अलिपद (६ मा०) के चरणों को एक इकाई मान कर भी दो पंक्तियों का निर्माण किया गया है। यथा—

(क) हृदय में उपजाता गोपन / संवेदन।—स्वर्णकिरण : स्वर्णोदय पृ० ९७
(ख) जिसे शिशु ने जीवन सागर / में छोड़ा।— ,, ,, (पृ० १०१)

(४४) मधुमंजरी (१६ मा०)

निर्निमिष करते कि अभिनंदन।— पौ फटने : ५ (पृ० १२)
तन्मय हृदय भवसिंधु पथ तर।— ,, ५ (पृ० १३)
पर, देह-रज के यह न आश्रित।— ,, ८ (पृ० २०)
दे ज्योति प्रीति प्रतीति का वर।— ,, ४७ (पृ० १४१)

मधुमंजरी छंद का निर्माण मधुमालती के अंत में दो लघु के योग से हुआ है। षोडशमात्रापादी यह छंद हरिगीतिका का पूर्वांश है। निराला आदि के

काव्य में इसका प्रयोग नहीं मिलता। पंत की स्वच्छंद छंद में लिखी उक्त कविताओं में इसकी चार पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। ये चार पंक्तियाँ एक नए छंद की संतोषप्रद संभावना व्यक्त करती हैं।

(४५) शृंगार (१६ मा०)

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !

—पल्लव : मौन निमंत्रण

शृंगार छंद का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में विपुल परिमाण में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य १६

पल्लव—मौन निमंत्रण, मुसकान, सोने का गान

गुंजन—भावी पत्नी के प्रति (टेक--तांडव) पद्य २१, २३, २४, २५, मधुवन (२, ३) विहग के प्रति, पद्य ४५

ग्राम्या--स्वप्न और सत्य

स्वर्णकिरण—स्वर्णोदय, पद्य ३ (पृ० १०६, १०७) ४ (पृ० १२२, १२३) ५ (पृ० १३०-१३१)

लोकायतन—संक्रमण–अंत (पृ० १८५) कलाद्वार संस्थान (आदि-अंत के दो-दो पद्यों को छोड़ कर) द्वंद्व (अंतिम २ पद्यों को छोड़ कर) विज्ञान (अंतिमांश को छोड़ कर)

मधुज्वाल—पद्य २, ४, ८, १०, ११, १३, १५, १८, १९, २२, २५, २७, २८, ३०, ३२, ३४, ३७, ४०, ४२, ५२, ५३, ५५, ५९, ६२, ७४, ७७, ८४, ८६, ८७, ९२, ९७-१००

समाधिता—पद्य ४७, ५३

मिश्र प्रयोग—

वीणा—पद्य २६ (गोपी के साथ) ३५, ५४, ५६, ५७ (सरसी के साथ) ४२ (तांडव, सरसी) ४६, ५० (तांडव) ५३ (सरसी, चौपाई,

गोपी) ६० (महानुभाव, अखंड, तमाल, चौपाई, सरसी) ५६ (अनेक छंदों के साथ)

पल्लव—पल्लव (तांडव) मधुकरी, विश्वव्याप्ति, स्याही का बूंद (गोपी के साथ) जीवन-यान (चौपाई, सरसी) विश्वछवि (तांडव, गोपी) स्वच्छंद छंद में लिखे उच्छ्वास, आँसू और परिवर्तन में अनेक छंदों के साथ अनेक पद्य।

गुंजन—मधुवन (१) (तांडव, मधुवन) पद्य २७, ३३, ३६ (तांडव)
युगांत—संध्या (तांडव के साथ)
ज्योत्स्ना—पृ० १०५ (तांडव)
मधुज्वाल—पद्य ५, २३, ३६, ४४ (अहीर के साथ) ७
(आदि-तांडव) १७ (चौपाई) ५० (सरसी) ७१
(छवि) ८५ (गोपी)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में भी इसके चरण यत्र-तत्र मिल जाते हैं। इस प्रकार अन्य छायावादियों की तरह पंत ने भी शृंगार का विशद प्रयोग किया है। वस्तुतः शृंगार का इतना प्रचलन कभी नहीं रहा, जितना छायावाद-युग में।

(४६) चौपाई (१६ मा०)

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन,
पावक-पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन।

—युगपथ (युगांतर, पद्य २)

चौपाई का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग-स्थल—

गुंजन-पद्य १ (टेक-महानुभाव) २८
युगपथ { युगांत – पद्य २,
युगांतर—स्वप्नगीत }
युगवाणी—घननाद
ग्राम्या—ग्रामवधू, भारतमाता, चरखागीत
स्वर्णकिरण – चिन्मयी

स्वर्णधूलि---जन्मभूमि, भावोन्मेष, तालकुल, लक्ष्मण, मानसी २, ६
उत्तरा---मुक्तिक्षण, वनश्री, वसंत
सौवर्ण--पृ० ११७
ज्योत्स्ना—पृ० ६, १३२

अतिमा—बाहर-भीतर, ऊषाएँ, अतिमा, प्राणों की सरसी, अभिवादन, अंतः क्षितिज ।
वाणी--आविर्भाव, अर्थसृष्टि, रूपंदेहि, जयंदेहि, भारतमाता
पौ फटने के पहले–पद्य २८, २६

पतझर---पतझर गाता (टेक-अखंड, महानुभाव--एक पंक्ति-सार)
गीतहंस---पद्य ४४, ६४, २० मई '५०, अब '७०
मधुज्वाल---पद्य १४, २१, ४३, ४७, ४६, ५४, ६६, ८८, ६४ ।

मिश्र प्रयोग—

वीणा—पद्य ५२ (तारक, सरसी, राधिका के साथ) ५३ (सरसी, शृंगार, गोपी) ६० (महानुभाव, अखंड, तमाल, शृंगार, सरसी)

पल्लव---वसंत श्री (हाकलि, ताटंक, वीर) जीवन-यान (शृंगार, सरसी)
गुंजन—पद्य ३८ (शशिवदना, महानुभाव)
युगांत---पद्य ११ (समान सवैया) २० (विष्णुपद) २१ (सार)

युगांतर---पद्य १६ (हंसगति) भारतगीत १ (सार, हंसगति, महानुभाव, पंचचामर) भारतगीत २ (सार, वसंत चामर) भारतगीत ३ (सार, महानुभाव, प्रमाणिका, स्वाधीन दिवस) उद्बोधन (हंसगति, टेक-शशिवदना) जय गान (सार, महानुभाव) अवतरण (हंसगति, रोला, समान सवैया) स्वप्नपूजन (रोला) रँग दो, शोभा जागरण, मानसी, अंतरधन (समानसवैया) नव आदेश (सार) त्रिवेणी (अनेक छंदों के साथ)

युगवाणी---युगवाणी (अखंड, सखी, सार) कर्म का मन, मुझे स्वप्न दो, कृष्णधन, निश्चय, खोज, आवाहन, लेन देन, वस्तुसत्य, भवमानव, प्रकृतिशिशु, (सब समानसवैये के साथ) उन्मेष (तमाल, सरसी)

ग्राम्या---चमारों का नाच (चौपाई, वीर, समानसवैया) राष्ट्रगान (अखंड, विष्णुपद, सार)

स्वर्णकिरण---ज्योतिभारत (चौपई, सरसी, अहीर) उषा (अनेक छंदों के साथ) निवेदन, सविता, अशोक-वन उपक्रम १-१०, १२-१९ (समान सवैया) स्वर्णोदय (अनेक छंद)

स्वर्णधूलि—काले बादल (रोला, समान सवैया) क्षण जीवी (शृंगारा-भास, ताटंक, वीर, रोला) मनुष्यत्व (रोला) दिवास्वप्न, परिणति (महानुभाव) आह्वान (हाकलि) मर्मकथा (अहीर, अलिपद, सुखदा, तमाल) मर्मव्यथा (समान-सवैया, हाकलि, पदपादाकुलक, माली) रसस्रवण (अखंड, हाकलि, अलिपद) प्राणाकांक्षा (हाकलि) प्रीतिनिर्झर (प्रदोष, महानुभाव, रोला) आर्त्त (तमाल, सरसी, निश्चल) मानसी १ (सार) मानसी ३ (महानुभाव, सार) मानसी ४ (हाकलि)

उत्तरा—उत्तरा, आगमन, मौनसृजन, भूप्रांगण, जीवन-उत्सव, चंद्रमुखी, रंगमहल (सब समानसवैये के साथ) युग विषाद, युग छाया, स्वप्न क्रांत, जगतघन, उन्मेष, भू वीणा, रूपांतर, भू यौवन, मौन गुंजन, शोभाक्षण, शरदागम, मानव ईश्वर, प्रीति समर्पण, प्रतीक्षा (सब सार के साथ) उद्दीपन (रोला, हंसगति, राधिका) नमन (महानुभाव) अभिलाषा (चौपई, वीर) विनय (अखंड, रोला, पद्धरि, मधुभार, शक्तिपूजा, पदपादाकुलक) आह्वान (अखंड, मधुभार, पदपादाकुलक, हाकलि) आभा-स्पर्श (हंस-गति, सार)

रजतशिखर—पृ० ११, १२९ (सार के साथ) पृ० ५० (सरसी) पृ० ७९, ११८, १३२ (समानसवैया) पृ० ८३, ११०, १२४ (सार, महानुभाव) ९५ (ताटंक, हाकलि) १०८ (समानसवैया, सार)

सौवर्ण—पृ० ६६, ८६, १०१, १०४ (समानसवैया) ७३ (सार)

ज्योत्स्ना—पृ० १३ (समानसवैया) ३३ (माली) ९१ (अखंड, रोला, समानसवैया) १२६ (अखंड)

अतिमा—नव अरुणोदय, नव जागरण, आवाहन, गीत, चंद्र के प्रति, जीवन-प्रवाह, दीप-रचना, वेणु कुंज (सब समानसवैये के साथ) जन्मदिवस (रोला, सार, महानुभाव) गीत पृ० ३०, ५१, ८३, १२० (सब सार के साथ) स्वर्णिम पावक (सार) सोनजुही

(सार, रोला, समानसवैया) कौवे वत्तखें मेढक (रोला, समानसवैया) गीत–पृ० ६० (विष्णुपद) प्राणों की द्वाभा, मुरली के प्रति (सरसी)

वाणी—जीवन-चेतना, अंतर्ध्वनि, स्मृतिगीत, जीवन गीत, नव दृष्टि, सिंधु-पथ (सब समानसवैये के साथ) अभिव्यक्ति (रोला) फूलों का दर्शन (रोला, हंसगति) वाणी, आवाहन, मनोभव (सार) कौवे (उत्कंठा, रासामृत) आत्मदान (सुगति, रोला, हाकलि) आत्मिका (रोला, हंसगति, समानसवैया)

पौ फटने के पहले—पद्य १, २४, २६, २७, ५३, ५८, ५६, ६० (सब समानसवैये के साथ) २०, ३४, ५४ (सार के साथ) ३२, ४२ (रोला)

पतझर—गीत दूत, गंभीर प्रश्न, गीतों का स्रोत, वाह्यक्षितिज (समान सवैये के साथ) गुह्याकर्षण, समर्पण (रोला) जीवनयात्री (रोला, समानसवैया) युग वोध (सार) चित्रगीत, प्रेमाश्रु (सार, महानुभाव)

गीतहंस—पद्य ३ (रोला) १४ (रोला, समानसवैया) २५, ४५, ८७ (समानसवैया) ३८ (विष्णुपद) ४७, ८८, ६० (सार) ५३ (अखंड)

किरण-वीणा—सूर्योदय (सार, समानसवैया) देव श्रेणी, नया बोध (रोला, समानसवैया) प्रेरणा (सरसी) रूप स्वप्न (उत्कंठा, वीर, सरसी) अमर पांथ, चित्प्रदेश (समानसवैया) वीज, का ते कांता, सौंदर्य (रोला) अमर यात्रा (सार) विरहिणी (ताटंक) जयगीत (विष्णुपद)

शिल्पी—पृ० १३, ३८, ११० (विष्णुपद के साथ) २७, ३०, ३५, १०४, १०५, १०६ (सार)

मधुज्वाल—पद्य ६, २४, २६, ६१ (अखंड के साथ) ६ (अहीर, शृंगार, तांडव) १७ (शृंगार) ३३ (पद्धरि-कज्जल) ३६ (मुक्ति, अखंड) ३८ (चौपई) ४६, ६४ (समान-सवैया) ५१ (महानुभाव)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में लिखित कविताओं में भी इसके चरण मिलते हैं। चौपाई का हिंदी-काव्य पर अखंड राज्य है। सरहपा से लेकर आज तक इसका प्रयोग होता रहा। रीति काल के आचार्य-कवि भी अपने लक्षण-उदाहरण में इसे यदा-कदा याद करते रहे। छायावादियों ने भी इसका प्रचुर प्रयोग किया है।

(४७+४८) पद्धरि-पदपादाकुलक (१६ मा०)

पद्धरि— मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार।

—पल्लव : उच्छ्वास

पदपादाकुलक—झर गई कली, झर गई कली!
चल सरित पुलिन पर वह विकसी,
उर के सौरभ से सहज वसी,
सरला प्रातः ही तो विहँसी
रे कूद सलिल में गई चली।

—गुंजन : पद्य १८

पद्धरि-पदपादाकुलक का स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में प्रयोग हुआ है। पद्धरि के स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

गुंजन—पद्य ५ (टेक-पदपादाकुलक) १५, ३५ (टेक-अहीर)
युगांत—पद्य १४
ज्योत्स्ना—पृ० ७४

पदपादाकुलक के स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

गुंजन—पद्य १०, १८
युगांत—छाया (पृ० ४०)
युगांतर—आवाहन, प्रकाश क्षण, अमरस्पर्श
ग्राम्या—धोबियों का नृत्य, स्त्री
स्वर्णधूलि—मानसी १२
उत्तरा—नवमानव, अनुभूति
ज्योत्स्ना—पृ० २५, ४४, ५७, ८१, ११५, ११८, १३०, १३१
किरण-वीणा—स्वप्न सत्य, स्वानुभूति

समाधिता—पद्य ७६, ७८, ८१

दोनों का मिश्रित प्रयोग (जिसमें अधिकतर पदपादाकुलक की पंक्तियाँ हैं)–

गुंजन—गुंजन, एक तारा, नौका विहार, पद ३०

युगांत—पद्य १, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, १५, १६, १७, १८, १९, २२, २३, छाया (पृ० ४१), शुक्र, सृष्टि, मानव, तितली, बापू के प्रति

युगवाणी – शिल्पी, कवि, कैलिफोर्निया पॉपी, ओस बिन्दु, कुसुम के प्रति, तुम ईश्वर, भवसंस्कृति (राधिका भी)

ग्राम्या– कठपुतले, गाँव के लड़के, ग्राम श्री, नहान, गंगा, कवि किसान, नक्षत्र

स्वर्णकिरण– अरुण ज्वाल, हिमाद्रि और समुद्र, स्वर्णिम पराग, हरीतिमा, नीलधार, अशोक वन ११

स्वर्णधूलि – गोपन, मानसी (मत्तसवैया, पंचचामर भी)

उत्तरा—युग विराम, मेघों के पर्वत, भू जीवन, काव्य चेतना, सम्मोहन, हृदय-चेतना, निर्माण-काल, उत्तरा (पृ० ६२) आवाहन, स्वर्ग विभा, नव पावक-गीत-विभव, भू स्वर्ग, युगदान, जीवन कोंपल, जीवन-दान, स्वप्न-वैभव, सत्य, युग मन, संवेदन, वैदेही, प्रीति, शरद-चेतना, ममता, फूल ज्वाल, स्मृति, विजय, अमर्त्य

लोकायतन—उत्तर स्वप्न (प्रीति)

रजतशिखर—पृ० १२९, १५१, १५६

ज्योत्स्ना—पृ० ४२, ५५, ६१

अतिमा – स्मृति, मनसिज, दिव्य करुणा, युग मन के प्रति,

वाणी – नया प्रेम

पतझर – पवित्रता, उद्बोधन, पारमिता, काँसों के फूल, सार्थकता, चाँद की टोह

गीतहंस – पद्य ३७ (मधुभार भी) ६६, ८३

मधुज्वाल – पद्य १, ५६

समाधिता – पद्य ३१, ४०, ४२, ४५, ४६, ५६-६४, ७७, ७९, ८०, ८४, ८५

किरण-वीणा—संवेदन, सृजन आस्था, संयुक्त, आकांक्षा, मौन फूल, व्यवस्था, तमप्रदेश, परमबोध, प्रश्नोत्तर (२),

सम्यक् बोध, रूपगर्विता, मोहमुग्धा, उद्बोधन, वसंत,
पावस, शरद, पतझर, जीव-बोध, धरती

शिल्पी – पृ० ९९,१०२ (सखी भी)

इसके अतिरिक्त इन दोनों के चरण स्वच्छन्द छन्द में भी प्राप्त होते हैं। पद्धरि अपभ्रंश के कड़वक का प्रमुख छंद है, जिसमें पदपादाकुलक के चरण भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। छायावाद-काल में इन दोनों छन्दों का प्रचलन द्विवेदी-युग से अधिक रहा। पर छायावादी कवियों ने पद्धरि की अपेक्षा पदपादाकुलक का विशेष प्रयोग किया है। प्रसाद, निराला और महादेवी के समान पन्त में भी पद्धरि का स्वतन्त्र प्रयोग इनी-गिनी कविताओं में ही मिलता है। दोनों के मिश्रित प्रयोग में भी पद्धरि की बहुत कम पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(४९) श्येनिका मात्रिक (१७ मा०)

जीवन में फिर नया विहान हो,
एक प्राण, एक कंठ गान हो।
बीत अब रही विषाद की निशा,
दीखने लगी प्रयाण की दिशा,
गगन चूमता अभय निशान हो।

– सौवर्ण : जनगीत, पृ० १०९

यह श्येनिका वर्णवृत्त (र ज र ल ग) का मात्रिक रूप है। प्राकृत पैंगलकार ने इसे सेनिका (२/११०) कहा है। १७ मात्रापादी अणिमा इसी का मात्रिक रूप मानी जा सकती है। पर यह त्रिकलों के रूप को अक्षुण्ण रखता हुआ, केवल गुरु की जगह दो लघुओं को स्वीकार कर, गणबद्धता को बहुत दूर तक स्थिर रखता है। अतः अणिमा नहीं कह कर इसे श्येनिका का मात्रिक रूप कहा। पन्त के संपूर्ण काव्य में श्येनिका का प्रयोग केवल उक्त गीत में हुआ है। प्रसाद और महादेवी में यह प्राप्त नहीं। निराला में श्येनिका तो नहीं, अणिमा अवश्य पर्याप्त रूप में मिलती है। नीरज ने इसका प्रयोग 'विभावरी' के एक गीत में किया है – बढ़ रहा शरीर, आयु घट रही।

(५०) राम (१७ मा०)

(क) दृगों में मूँद चरम छवि पावन। – वीणा, पद्य ५९

(ख) गद्य क्या बनीं स्वरों की पातें। – अतिमा : विज्ञापन

(ग) तुम्हीं हो माँ,
प्रियतमा सखी भी। – पौ फटने, पद्य ७

(घ) मुक्त साँसों में

(ङ) स्वर्गिक सौरभ। – गीतहंस – पद्य ११

प्रसाद ने राम का प्रयोग 'झरना' की 'झरना' कविता में शृंगाराभास के साथ मिश्र रूप में किया है। महादेवी की 'दीपशिखा' के दो गीतों के छंदकों (टेकों) में यह प्रयुक्त हुआ है। निराला ने इसका प्रयोग स्वच्छन्द छन्द तथा गीतों के छन्दकों में किया है। पंत-काव्य में इसके चरण स्वच्छन्द छन्द में ही उपलब्ध होते हैं।

(५१) उर्मिला (१७ मा०)

औ लुभाते विषय भोग अनेक;

× ×

चाहते चिर प्रणय का अभिषेक!

। स्वर्णधूलि : चौथी भूख

प्रसाद-काव्य में यह छंद प्राप्त नहीं होता। महादेवी में इसकी एक पंक्ति एक छंदक में मिलती है। निराला ने इसका प्रयोग दो स्थलों पर स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में किया है। पंत-काव्य में इसकी केवल दो पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में उपलब्ध होती है।

(५२) तारक मात्रिक (१८ मा०)

अलसित पलकों में स्वर्ण स्वप्न नित।—वीणा, पद्य ५२

माँ, तुम्हीं ज्ञात अज्ञात रूप से।—पौ.फटने, पद्य ३७

भौंहों की चिंता
चूम चूम कर } —गीत हंस, पद्य ८६

निशि-तम प्रवाह में अडिग,
धीर हम } —किरण-वीणा : सूरज और जुगनू

इस छंद से मिलती-जुलती लय वाले तीन वर्णवृत्त हैं—तारक (स स स स ग) कलहंस (स ज स स ग) और मंजुभाषिणी (स ज स ज ग) तारक का उल्लेख तो प्रा० पै० (२/१४३) में हुआ है। पर कलहंस और मंजुभाषिणी अनेक आचार्यों के द्वारा अनेक नामों से उल्लिखित हैं। मंजुभाषिणी का उल्लेख सर्वप्राचीन आचार्य पिंगल ने कनकप्रभा नाम से किया है। (पिंगलसूत्र ८/७) भानु ने जो उदाहरण इन तीनों के दिए हैं—

ससि सीस गरे नर माल पुरारी।—(तारक)

सुर लोग हर्ष खल-भूप दुखारी।—(कलहंस)

सुनि एवमस्तु वद मंजुभाषिणी ।—(मंजुभाषिणी)[1]

उनसे यह स्पष्ट है कि अंतिम गुरु को हटा देने से प्रथम दो में पदपादाकुलक की और तृतीय में पद्धरि की लय आ जाती है। इससे यह अनुमान भी पुष्ट हो जाता है कि संभवतः पिंगल-द्वारा उल्लिखित कनकप्रभा के अंतिम दीर्घ को निकाल कर अपभ्रंश कवियों ने अपने पद्धडिया (पद्धरि) का आविष्कार कर लिया होगा। पंत की उक्त पंक्तियाँ पद्धरि के अंत में दो मात्राओं के योग से बनी हैं। और निम्न पक्तियों का निर्माण पदपादाकुलक के अंत में दो मात्राओं के योग से हुआ है। यथा—

घन अंधकार की सीमाओं पर ।--किरण-वीणा : युध्यस्व विगतस्वर।
आँचल सँभालती, फेर नयन मुख ।—ग्राम्या : ग्रामयुवती ।
पद रेणु कणों से धरा गई भर ।—उत्तरा : जीवनप्रभात

छंदों की संख्या में व्यर्थ वृद्धि नहीं कर मिलती-जुलती लय वाली इन सभी पंक्तियों को उक्त तीन वर्णवृत्तों में किसी एक का मात्रिक रूप मान लेना चाहिए।

पन्त और निराला के काव्यों में ऐसी लय वाली पंक्तियाँ केवल स्वच्छंद छंद में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती हैं।

(५३) माली (१८ मा०)

आध्यात्मिकता भौतिकता दोनों
एकांगी निर्जीव पलायन भर
नव्य चेतना में कर संयोजित
दोनों का करना था रूपांतर।

—लोकायतन, पृ० ५२७

'लोकायतन' में माली का विशद प्रयोग हुआ है। उसका संपूर्ण 'ज्योति द्वार' (अंतर्विकास, अंतर्विरोध और उत्क्रांति) माली में ही निबद्ध है। इतने वैपुल परिमाण में इस छंद का प्रयोग संभवतः पन्त के अतिरिक्त किसी कवि ने नहीं किया। 'लोकायतन' के अतिरिक्त इसका छिटपुट प्रयोग भी पन्त-काव्य में मिलता है। यथा—

ज्योत्स्ना—आकाशगीत, पृ० ३३ (चौपाई से साथ)

---

१. द्रष्टव्य : छंदःप्रभाकर, पृ० १६१

स्वर्णधूलि—पथ में वरसा, शत आशाओं को/पृ० २७
स्वर्णिम आशा से भर दो जन मन/पृ० ६८
अतिमा—आँगन में खड़ी जपा की झाड़ी/पृ० १०६
युगांत—बाँधो, छवि के नव बंधन बाँधो/पृ० २१

इस प्रकार इस छंद को काव्य-जगत् में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करने का श्रेय पंत को अवश्य दिया जायगा। निराला में इसकी केवल छिटपुट पंक्तियाँ मिलती हैं। प्रसाद ने तो इसका प्रयोग किया ही नहीं। महादेवी के केवल एक छंदक में यह प्रयुक्त है।

(५४) तरलनयन (१८ मा०)

घुमड़ रहा अंधकार, अंधकार,
ह्रास नाश का तमिस्र दुर्निवार,
धरती की गुहाएँ रहीं पुकार
उमड़ रहा घोर सृजन प्रलय ज्वार।

—शिल्पी : युग चेतना का गीत, पृ० ६६

प्रा० पैं० में एक न न न न का वर्णवृत्त है, जो तरलनयना कहा गया है। (२/१३७) इसे ही भानु ने तरलनयन कहा है। (छं० प्र० पृ० १५८) इन दोनों में १२ मात्राएँ हैं। अतः स्पष्ट ही इन दोनों वर्णवृत्तों से १८ मात्रापादी इस तरलनयन का कोई संबंध नहीं। इस तरलनयन का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है, जिसका स्वरूप छह ऽ। के आधार पर (ऽ।ऽ।, ऽ।ऽ।, ऽ।ऽ।) निर्मित होता है।[1] इस प्रकार यह किसी अज्ञात छंदःशास्त्री-द्वारा निर्मित 'रत्नमंजूषा' के समान वर्णवृत्त (र ज र ज) का मात्रिक रूप है।[2] पंत-काव्य में उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त इसका प्रयोग निम्न स्थलों पर भी हुआ है—

शिल्पी—पृ० १०० (अंतिम चार पंक्तियाँ)

रजतशिखर—पृ० १३३ (अंधकार रहा भाग, रहा भाग—दो पंक्तियाँ)

अन्य छायावादियों ने तो इसका प्रयोग नहीं किया; पर मैथिलीशरण के 'हिंदू' में इसके चार चरण मिलते हैं।

(५५) वसंतचामर मात्रिक (१८ मा०)

विषाण तूर शृंग भेरि बज उठे
घनन घनन पटह विकट गरज उठे,

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७१
२. द्रष्टव्य : जय दामन : एच० डी० वेलंकर' पृ०, १३०

प्रवुद्ध वीर युद्ध वेश सज जुटे
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे।

—युगांतर : भारतगीत (२)

१२ वर्ण वाले (ज र ज र) वर्णवृत्त को कविदर्पणकार ने वसंत चामर (४/५३), हेमचंद्र ने विभावरी (छंदोऽनुशासन २/१८४) और वृत्तरत्नाकर के टीकाकार ने वसंत चामर (३/६४/४) कहा है। डॉ० शुक्ल ने इसी लय मे लिखी 'वच्चन' की कविता का उदाहरण देकर इस छंद का नाम चामरी रक्खा है।[1] प्रा० पैं० में उल्लिखित चामर का गण-क्रम र ज र ज र है। यह छंद पंचचामर (ज र ज र ज ग) के अंतिम ज ग को हटा कर वना है। अतः इसका नाम वसंतचामर ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी वसंतचामर का पंत ने मात्रिक रूप में केवल इन्हीं चार पंक्तियों मे प्रयोग किया है। प्रसाद, निराला और महादेवी में यह नहीं मिलता।

(५६) सुमेरु (१६ मा०)

हृदय सित प्रेम विस्मृति में डुवाओ।

—पौ फटने के पहले : पद्य १३, पृ० ३४

सुमेरु का प्रयोग प्रसाद ने तीन नाटकों में आठ स्थलों पर किया है। निराला ने अपने एक गीत को इसमें निवद्ध किया है। महादेवी ने लिखा ही नहीं, और पंत के सम्पूर्ण काव्य में केवल स्वच्छंद छंद में इसका एक चरण मिलता है।

(५७) तमाल (१६ मा०)

राग कामना कर मानव की मुक्त
धरा-स्वर्ग को करे कला चरितार्थ,
जीवन मन हों चिन्मय से संयुक्त
श्रेय प्रेय हों अपृथक्, सत्य, कृतार्थ!

—लोकायतन : संस्थान (अंत) पृ० ३११

स्वतंत्र रूप से तमाल का प्रयोग केवल 'लोकायतन' के चार स्थलों पर २२ पंक्तियों में (पृ० ५, ३११, ३६१, ४२४) हुआ है। इसी ग्रंथ के पृ० ४२४ पर चौपई और तमाल का मिश्र प्रयोग भी दो पद्यों में दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त इसके प्रयोग के कुछ स्थल निम्नलिखित हैं—

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७०

वीणा---पद्य ६० (मेरा भी है सखि, छोटा-सा रूम)

पल्लव—उच्छ्वास (आच्छादित कर ले सारा आकाश)

युगवाणी---उन्मेष (अहीर, सरसी, चौपाई के साथ) जीवन-स्पर्श (हाकलि, निश्चल, चौपाई, सरसी, महानुभाव)

स्वर्णधूलि---मर्मकथा (नहीं चाहता जो कुछ भी आदान) आर्त्त (आवें वे, आवें वे प्रभु के द्वार)

अतिमा---विद्रोह के फूल (वुझी नहीं वह हरित जलधि में डूब)

गीतहंस---पद्य ११ (जिसके स्वर में मत्त प्रेरणा गीत)

इस प्रकार तमाल का स्वतंत्र प्रयोग प्रसाद और पंत में ही मिलता है। महादेवी में इसके केवल चार चरण प्राप्त हैं। निराला के स्वच्छन्द छन्द में तो इसकी पंक्तियाँ मिलती ही हैं, उन्होंने दो-एक स्थल पर इसका मिश्र प्रयोग भी किया है।

(५८) पीयूषवर्षी (१६ मा०)

वाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

—ग्रंथि : पृ० ५

संपूर्ण ग्रंथि की रचना पीयूषवर्षी छंद में ही हुई है। अतिरिक्त प्रयोग-स्थल—

पल्लव—उच्छ्वास (पृ० ६ चार चरण, पृ० १५ आठ चरण) आँसू (पृ० १७–चार चरण; पृ० २६–दो पद्य, जिनमें चार चरण ३, ५, ६, ८ प्लवंगम के)

स्वच्छंद छंद में लिखी निम्न कविताओं में भी इसके चरण मिलते हैं—

स्वर्णधूलि—चौथी भूख (तीसरी रे भूख आत्मा की गहन)

पौ फटने—पद्य २ (प्राण, फहराता रुपहली वायुओं)

प्रसाद और महादेवी ने पीयूषवर्षी का अत्यन्त विरल प्रयोग किया है। निराला और पंत में यह अपेक्षाकृत विशद रूप में प्रयुक्त हुआ है।

(५६) पीयूषराशि (२० मा०)

एक पल जगसिंधु का गम्भीर गीत।

× ×

मधुप बाला का मधुर मधु मुग्ध राग।
× +
देखता है निर्निमेष नयन चकोर।

—ग्रंथि, पृ० २, ४, १७

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने इसे नवीन छंद मान कर दो सप्तकों (ऽ।ऽऽ) और दो त्रिकलों (ऽ।) के योग से इसका निर्माण बतलाया है। पीयूषवर्षी के अंत में लघु मात्रा के योग से इसका निर्माण हो जाता है।[1] पीयूषराशि में निबद्ध मैथिलीशरण का एक और हरिऔध के तीन पद्य मिलते हैं। प्रसाद और महादेवी में यह छंद उपलब्ध नहीं होता। निराला और पंत ने इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नहीं किया है। केवल पीयूषवर्षी के साथ तीन-तीन पंक्तियाँ दोनों कवियों की मिलती हैं।

(६०) शास्त्र (२० मा०)

सुखद यौवन ?/ विलास उपव / न रमणीय।

—पल्लव : उच्छ्‌वास (पृ० ५)

भानु[2] और डॉ० शुक्ल[3] दोनों ने इस छंद का उल्लेख किया है। भानु ने इसके गति-निर्धारण के लिए उर्दू की बहर मफाईलुन् मफाइलुन् मफाईल का उल्लेख किया है और डॉ० शुक्ल ने चतुर्थ सप्तक (।ऽऽऽ) की दो आवृत्तियों और यगण-लघु के योग से इसके चरण का निर्माण माना है। दोनों ही लक्षण पंत की उक्त पंक्ति पर घटित हो जाते हैं। अतः यह असंदिग्ध रूप से शास्त्र का चरण कहा जा सकता है। पर पंत के समस्त काव्य में इसका यही एक चरण पाया जाता है। प्रसाद, निराला और महादेवी में ही नहीं, हिन्दी-साहित्य में और कहीं भी यह मेरे देखने में नहीं आया। सूरदास के एक छंदक (सूरसागर, पद ७५६) में यह अस्तव्यस्त रूप में अवश्य उपलब्ध होता है।

(६१) मधुवन (२० मा०)

झलकती, मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात ।
× ×
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार ।
× ×

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २७८

२. छंदःप्रभाकर, पृ०४७

३. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २७६

तुम्हारे शयन-शिथिल सरसिज उन्मील।
× ×
लाज के विनत वृंत पर ज्यों अभिराम ।
× ×
आज मधुवन मुकुलों में झुक साभार ।

—गुंजन : मधुवन (१)

मधुवन छंद का प्रयोग उक्त कविता के अनुच्छेद में हुआ है, जिसकी प्रथम पंक्ति तांडव की, २री, ३री शृंगार की, ४थी इस छंद की और ५वीं फिर शृंगार की है। इस प्रकार पंत के संपूर्ण काव्य में इसके केवल उक्त पाँच चरण मिलते हैं। इसका निर्माण शृंगार (प्रथम पंक्ति) या गोपी (शेप चार पंक्तियाँ) के अन्त में क्रमशः चार मात्राओं (जगण) और पाँच मात्राओं (तगण आधार) के योग से हुआ है। इस छंद का निर्माण पंत ने किया है। निराला आदि में यह छंद प्राप्त नहीं होता।

(६२) हंसगति (२० मा०)

वाणी, शुभ्र नितंबमयी वीणा पर
वरसाओ चित्पावक कण स्वर्णिम स्वर,
मुक्त कल्पना हंस लोक मानस में
खोले शोभा-पंख-दिगंत अगोचर ।

—लोकायतन : पूर्वस्मृति

आदि-अंत के अतिरिक्त संपूर्ण 'पूर्वस्मृति' इसी छंद में निवद्ध है। अतिरिक्त प्रयोग-स्थल निम्नलिखित है—

लोकायतन—ग्राम शिविर (अंतिम पद्य) मुक्ति यज्ञ (अंतिम दो पद्य) मध्य विन्दु (प्रारंभिक तथा अंतिम दो-दो पद्य)

युगवाणी—नवसंस्कृति
उत्तरा—युगसंघर्ष
वाणी—संवोध, फूलों का दर्शन (रोला-चौपाई के साथ)
पतझर—मुक्ति और ऐक्य, उन्नयन
युगांतर—भारत गीत १ (एक पद्य) अवतरण (तीन पंक्तियाँ)
शिल्पी—जनगीत, पृ०४२ (ताटंक के साथ)
समाधिता—पद्य २५

स्वच्छंद छंद में लिखी कविताओं में भी इसके अनेक चरण पाये जाते हैं।
डॉ० शुक्ल ने 'युगवाणी' की 'नवसंस्कृति' की निम्न पंक्तियों को

भाव कर्म में जहाँ साम्य हो संतत,
जग जीवन में हो विचार जन के रत।

योग के उदाहरण में रख कर यह बताया है कि आजकल योग की २० मात्राएँ समप्रवाही होती हैं।[1] उनकी दृष्टि में हंसगति छंद योग छंद के साथ अभिन्न हो गया है।[2] पर समप्रवाही हंसगति छंद त्रिकलाधृत योग के साथ अभिन्न नहीं हो सकता। दोनों की भिन्न-भिन्न लयें दोनों को सदा पृथक् रक्खेंगी।

महादेवी ने हंसगति का प्रयोग नहीं किया। प्रसाद में इसकी कतिपय पंक्तियाँ मिलती हैं। निराला में स्वतन्त्र और मिश्र दोनों रूपों में यह कुछ अधिक परिमाण में प्रयुक्त हुई है। पंत ने निराला की अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग तो किया ही, 'लोकायतन' के एक सम्पूर्ण सर्ग में इसका प्रयोग कर इसे विपुल सम्मान दिया।

(६३) योग (२० मा०)

जयति जयति मातृ मूर्त्ति शांति चेतने !
जयति लोक शक्ति, लोक मुक्ति-केतने !

—शिल्पी : समवेत गान, पृ० ४४

अंतर के ज्योति ज्वार अजर अमर हे।—रजतशिखर, पृ० ४२
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित शुचि हिम हँसना।— ,, पृ० १३६
कुंद धवल, तुहिन तरल, तारा दल हे।—ज्योत्स्ना, पृ० १७

पंत के काव्य में योग न तो स्वतंत्र और न मिश्र रूप में प्रयुक्त हुआ है। लीला-निवद्ध गीतों के छंदकों में इसकी यही पाँच पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

प्रसाद ने योग का प्रयोग एक पद्य में किया है। निराला में इसके स्वतंत्र और मिश्र दोनों प्रकार के प्रयोग कुछ अधिक परिमाण में मिलते हैं। महादेवी के एक गीत के छंदक-रूप में चार पंक्तियाँ और पंत के तीन गीतों के छंदकों में इसकी पाँच पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

(६४) प्लवंगम (२१ मा०)

(क) त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं।

× ×

---

१. +२. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७६, २७६

तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा।
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उनकी व्यथा।
× ×
मधुप वालिकाएँ गाएँगी सर्वदा।

-- पल्लव : आँसू, पृ० २६

(ख) दोनों स्थितियों में तुम्हीं उपस्थित रहो।

—वाणी : आत्मनिवेदन, पृ० ४२

'क' की पंक्तियाँ पीयूषवर्षी के साथ मिश्रित हैं। (देखिए—पीछे पीयूषवर्षी छंद) और 'ख' स्वच्छंद छंद में लिखित है।

प्रसाद ने तिलोकी (प्लवंगम + चांद्रायण) का विशद प्रयोग किया है। निराला के स्वच्छंद छंद में इसकी कतिपय पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। महादेवी ने एक गीत में चौपाई के साथ चार चरणों में चांद्रायण का और पंत ने पाँच चरणों में प्लवंगम का प्रयोग किया है।

(६५) प्रणय (२१ मा०)

शुभ्र चरण धरो पांथ, शुभ्र चरण धरो।
अंकित कर ज्योति-चिह्न जीवन तम हरो।
× ×
कर्णधार बनो, धीर क्षुब्ध नीर तरो,
व्यथा भार हरो देव भेद अमिट भरो।
पावक की अंजलि भर वितरण हवि करो।

—रजतशिखर : आवाहन संगीत, पृ० ११६

भिखारीदास[१] और डॉ० शुक्ल[२] के अनुसार इस छंद के अंत में ऽ। रहना चाहिए। पर सूरदास में नगणांत (।।।) और लगात्मक अंत वाले चरण भी मिलते हैं। यथा—

(क) मुरली ध्वनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै।—पद १२७०

(ख) गोविंद विनु कौन हरै नैननि की जरनि।— ,, ३६६२

अतः प्रणय का सामान्य लक्षण यह होना चाहिए कि यह त्रिकल के आधार पर चलता है। इसमें १२-६ में विश्राम होता है और अंत में ऽ।, ।ऽ, ।।। सभी रह सकते हैं।

---

१. छंदार्णव, पृ० २१७

२. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २८१

प्रसाद और महादेवी में यह उपलब्ध नहीं होता। निराला के मिश्र और स्वच्छंद छंद में इसकी कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं। पंत ने इसका प्रयोग लीला-निबद्ध उक्त गीत के छंदक में किया है।

(६६) पीयूषनिर्झर (२१ मा०)

खोलता नित ग्रन्थियाँ जीवन-मरण की।

× ×

इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन,
मनो जग से परे ज्यों आत्मा चिरंतन,

× ×

क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत घन
जो धरा पर बरस भर दे भव्य जीवन ?

—स्वर्णधूलि : चौथी भूख

उक्त कविता की उक्त पाँच पंक्तियों के अतिरिक्त 'पौ फटने के पहले' तथा 'किरण-वीणा' में लिखित स्वच्छंद छंद में भी इसके चरण मिलते हैं। यथा—

(क) कौन वे स्वर्णिम क्षितिज
तुम पार जिसके।—पौ फटने, पद्य २

(ख) देह के भीतर कहीं
छूता अगोचर।— ,, पद्य ३

(ग) रिक्त होता अह, निखिल ब्रह्मांड
नभ का/नील भांड
कहीं छलकता मोतियों से ,, पद्य ५

'ग' में दो चरण हैं। दूसरा चरण दूसरी पंक्ति के बीच से प्रारम्भ किया गया है। ऐसी प्रवृत्ति पंत में बहुत अधिक दिखलाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त 'पौ फटने के पहले' के पद्य ८, १३, ४७ और ६१ तथा 'किरण-वीणा' के 'लक्ष्य' में भी इसके अनेक चरण प्राप्त होते हैं।

पीयूषनिर्झर का प्रयोग प्रसाद ने नहीं किया है। निराला-काव्य में इसकी केवल तीन पंक्तियाँ मिलती हैं। महादेवी और पंत ने निराला की अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग किया है।

(६७) साधिका (२१ मा०)

क्या भूल गए तुम क्रम-विकास सिद्धांत

—किरण-वीणा : नयी आस्था : पृ० १७७

राधिका के अंतिम गुरु की जगह लघु रखकर साधिका का निर्माण निराला ने किया है। उनके स्वच्छन्द छन्द में लिखित कविताओं में (विशेषतः 'परिमल' की 'उसकी स्मृति' और 'विधवा' में) इस छन्द के अनेक चरण उपलब्ध होते हैं। पन्त के संपूर्ण काव्य में साधिका की केवल उक्त पंक्ति मिलती है। प्रसाद और महादेवी में यह प्राप्त नहीं। भगवतीचरण वर्मा की 'उल्टी-सीधी' कविता (मेरी कविताएँ) इसी छंद में निबद्ध है।

(६८) राधिका (२२ मा०)

तुम अंधकार, जीवन को ज्यो/तित करती,
तुम विष हो, उर में मधुर सुधा/सी झरती।
तुम मरण, विश्व में अमर चेत/ना भरती,
तुम निखिल भयंकर, भ्रांति जगत/की हरती।

—युगवाणी : क्रांति

डॉ० शुक्ल ने उक्त पंक्तियों को रास के उदाहरण में रक्खा है।[1] रास का निर्माण चौपाई के अंत में और राधिका का पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत मे ६ मात्राओं के योग से होता है। उक्त पंक्तियाँ पद्धरि-पदपादाकुलक के अंत में ६ मात्राओं को जोड़कर बनाई गई हैं। इनकी लय रास से बिलकुल भिन्न है। अतः इनमें रास छन्द देखना सरासर भूल है।

राधिका का प्रयोग पन्त-काव्य में स्वतन्त्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

युगांत—पद्य ७
युगवाणी—क्रांति
स्वर्णधूलि—मानसी ५
उत्तरा—गीतविहग, अवगाहन
लोकायतन—संस्कृति द्वार (मध्यविंदु—आदि अंत के चार पद्यों को छोड़कर)
ज्योत्स्ना—गीत, पृ० २७
पौ फटने के पहले—पद्य १७
गीतहंस—पद्य ८१

मिश्र प्रयोग के स्थल—

१. आ० हि० का० में छंद योजना. पृ० २८३।

वीणा—पद्य ५२ (तारक, सरसी, चौपाई के साथ)
युगांतर—त्रिवेणी (पृ० १५६, १५७, १५८, १५९)
युगवाणी—भवसंस्कृति (पद्धरि-पदपादाकुलक के साथ)
पौ फटने के पहले—पद्य १८ (चिदंबर छंद के साथ)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में भी इसके चरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। निराला ने राधिका का स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया। 'तुलसीदास' के अनुच्छेद में तथा स्वच्छन्द छन्द में ही इसकी पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रसाद ने तीन स्थलों पर तथा महादेवी ने चार गीतों में इसका प्रयोग किया है। इस तरह पंत के काव्य में यह छंद अपेक्षाकृत बहुत अधिक परिमाण में प्रयुक्त हुआ है।

(६९) कुंडल (२२ मा०)

नाच, मन मयूर नाच, प्रलय घटा छाई;
विद्युत असि क्रांति ज्योति उर में लहराई।
× ×
प्राणों में क्रुद्ध युद्ध दुंदभी बजाई।
× ×
दौड़ रही भाव तप्त रक्त में ललाई।

—पौ फटने के पहले : पद्य ३८

कुंडल का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। लीला के साथ 'पौ फटने के पहले' के उक्त गीत में ८ तथा 'ज्योत्स्ना' में ४ चरण (गीत, पृ० ३–दो चरण; गीत, पृ० ३७–दो चरण) इसके उपलब्ध होते हैं। निराला ने भी इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया। पर मिश्र रूप में उनके काव्य में पंत की अपेक्षा इसके अधिक चरण मिलते हैं। प्रसाद और महादेवी के काव्य में यह प्रयुक्त नहीं हुआ।

(७०) रास (२२ मा०)

नव जीवन की इंद्रिय दो हे, मानव को
× ×
नव मानवता का अनुभव कर सके मनुज,
× ×
नव युग की नव आत्मा दो पशु मानव को

× ×

भव मानवता का साम्राज्य बने भू पर।

—ग्राम्या : नव इंद्रिय

पंत-काव्य में रास का अत्यंत विरल प्रयोग हुआ है। हाकलि के साथ उक्त चार पंक्तियों के अतिरिक्त इसकी कतिपय पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में ही मिलती हैं। यथा—

हाँक रहे तुम जीवन-रथ, नव मानव बन।

—स्वर्णधूलि : जातिमन

देव तभी तो जरा मरण ही जरा मरण।

—वाणी : बुद्ध के प्रति, पृ० ६२

रुचि संस्कार नहीं औ स्मृति संचार नहीं। आदि तीन पंक्तियाँ

—वाणी : आत्मनिवेदन, पृ० ४१

जन मन अभिलाषा के कर्मठ तरनि—वाणी : घोंघे शंख, पृ० ६६

इस प्रकार पंत और निराला में कतिपय पंक्तियाँ रास की उपलब्ध हो जाती हैं। प्रसाद और महादेवी में इसका कहीं पता नहीं।

(७१) रासामृत (२२ मा०)

मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर
मुझे तमस् से उठा, दिखाओ ज्योति छोर।
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर।

—स्वर्णधूलि : प्रारंभ

रास के समान यह छंद भी चौपाई के अंत में ६ मात्राओं के योग से बना है। पर रास के विपरीत इसका गलात्मक अंत (ऽ।) उससे भिन्न लय को जन्म देता है। इसी से इस लय को रासामृत नाम दिया गया है। उक्त तीन चरणों के अतिरिक्त इसके दो चरण स्वच्छंद छंद में और प्राप्त होते हैं। यथा—

रेंग रहा तल में जो कल-कल गरल स्रोत।—वाणी : आत्म-निवेदन।

काँव काँव करते कठकौवे, काँव काँव।—वाणी : कौवे।

इसका निर्माण पंत ने किया है। अन्य छायावादी-त्रय के काव्य में यह प्रयुक्त नहीं। पर जानकीवल्लभ शास्त्री ने इसका प्रयोग 'पापाणी' की उर्वशी कविता में किया है। यथा—

यह कैसा आश्चर्य ! कौन सा नया साज।
गिरि के हो रोमांच, गगन को लगे लाज।

(७२) सुखदा (२२ मा०)

गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा।

—स्वर्णधूलि : मर्म कथा।

सुखदा की यही उक्त अर्द्धाली पंत के संपूर्ण काव्य में प्राप्त होती है। डॉ० शुक्ल ने इसे नवीन अर्द्धसम मात्रिक छंद के उदाहरण में रक्खा है।[1] अर्द्धसम छंद के विषम चरणों के अंत में जिस पूर्ण यति की अपेक्षा रहती है, वह इसमें किंचिदंश में भले ही मिल जाय; पर आजकल एक चरण को दो पंक्तियों में लिखने की जो परिपाटी चल पड़ी है, उस पर ध्यान रख कर उक्त पंक्तियों को सम सुखदा की एक अर्द्धाली मानना ही विशेष युक्तिसंगत है।

प्रसाद और महादेवी के काव्यों में सुखदा के दर्शन नहीं होते। निराला के स्वच्छंद छंद में इसकी कुछ पंक्तियाँ मिल जाती हैं।

(७३) निश्चल (२३ मा०)

सोए तरु-वन में खग सरसी में जलजात
सजग गगन के तारक भू प्रहरी प्रख्यात
सोओ जग-दृग तारक भूलो पलक निपात
चपल वायु-सा मानस पा स्मृतियों के घात।

—पल्लविनी : निद्रा के गीत, पृ० २२२

उक्त पंक्तियों को डॉ० शुक्ल ने हीर के उदाहरण मे रक्खा है।[2] हीर त्रिकल-षट्कल के आधार पर चलने वाला छंद है। उपरिलिखित पंक्तियाँ समप्रवाही हैं। अतः ये २३ मात्रापादी निश्चल की पक्तियाँ है, हीर की नहीं। इसके अतिरिक्त इसकी पंक्तियाँ प्रगाथ और स्वच्छंद छंद में भी प्राप्त होती हैं—

युगवाणी—जीवनस्पर्श (फूल रहा मधुवन में जो सौंदर्योल्लास आदि तीन पंक्तियाँ)

स्वर्णधूलि—आर्त्त (प्रभु करुणा के, महिमा के है मेघ उदार)

गीतहंस—पद्य ५०—स्वर संगति में तन्मय बँध जाए संसार (पृ० ११९)

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३१०

२. वही, पृ० २८६

प्रसाद और महादेवी में निश्चल नहीं मिलता। निराला और पंत दोनों ने इसका यत्किंचित् प्रयोग किया है।

(७४) हीर (२३ मा०)

(क) विहँस उठी मौन अतल नीलिमा उदासिनी
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति जगी हृदय ह्लादिनी।
—स्वर्णधूलि : शरद चाँदनी

(ख) भाल के कलंक पंक को मनुज के हरो।
तुम प्रथम मनुष्य हो, न युग्ममात्र, स्त्री नरो।
स्वर्ग तुल्य हो धरा, जघन्य रूढ़ियो, झरो।
—स्वर्णधूलि : मानसी १६

'ख' की प्रथम और तृतीय पंक्तियों में चामर (र ज र ज र) की गण-व्यवस्था है। पर द्वितीय में गण-क्रम भंग हो गया है और वर्ण भी १७ हो गए हैं। अतः इन्हें चामर नहीं मान कर चामर का मात्रिक रूप हीर मानना ही युक्तिसंगत है।

पन्त के काव्य में हीर की ये ही पाँच पंक्तियाँ मिलती हैं। निराला ने इसका प्रयोग २३ पंक्तियों में किया है। प्रसाद और महादेवी में यह उपलब्ध नहीं।

(७५) रजनी (२३ मा०)

स्वर्ग किरणें ही उतरती क्यों धरा-रज पर ?
× × ×
लता ही क्यों कँप पिरोती हार कलियों के।
× × ×
भक्ति जप तप ध्यान करते विफल आराधन।
—पौ फटने के पहले : पद्य ५

स्वप्न शयन, शरीर आत्मिक-स्पर्श सुख भागी।
—पौ फटने के पहले : पद्य १३

रजनी का प्रयोग स्वच्छन्द छन्द में लिखी कविताओं में ही हुआ है। उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त इसके चरण 'स्वर्णकिरण' के 'युगप्रभात,' (विश्व सरसी में नवल खोल किरणों के दल) 'पौ फटने के पहले' के पद्य ६१ (रिक्त केंचुल-सा जगत लगता असार विरस) तथा 'किरण-वीणा' के 'लक्ष्य' (मैं न अब रस-

गीत लिखता, प्यार करता हूँ; ताप उसको कहूँ गोपन, गूढ़ हर्ष कहूँ ?) में भी मिलते हैं।

प्रसाद में रजनी छंद प्राप्त नहीं होता। निराला-काव्य में अन्य छन्दों के साथ इसके करीब १२ चरण मिलते हैं। महादेवी ने रजनी में एक सम्पूर्ण गीत की रचना तो की ही है, अन्य छन्दों के साथ तथा कई छन्दकों में भी इसका प्रयोग किया है।

(७६) माधुरी) २३ मा०)

मर्त्य से उठ स्वर्ग तक······मालिका
सित भावना-रस-श्रेणि
तुम बनती अगोचर। } —माधुरी

—पौ फटने के पहले : पद्य १३

स्वच्छंद छंद में लिखी उक्त कविता में ही माधुरी की एक पंक्ति पंत के काव्य में दिखलाई पड़ी। रजनी और माधुरी दोनों में २३ मात्राएँ होती हैं, तथा १४-९ पर विश्राम होता है। दोनों में अंतर यह है कि रजनी ऽ।ऽऽ के और माधुरी ऽऽ।ऽ के आधार पर चलती है। रजनी मनोरम के और माधुरी मधुमालती के अंत में ९ मात्राओं के योग से वनी है।

प्रसाद, निराला तथा महादेवी में यह छंद नहीं मिलता। इसका सर्वप्रथम प्रयोग संभवत: मैथिलीशरण ने 'झंकार' की माधुरी शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों में किया है और वहीं इसने यह नाम पाया है।

(७७) रोला (२४ मा०)

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।
स्फटिक सौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रहें जीवित जन ?

—युगांत : ताज।

रोला के ११-१३ मात्रा पर यति की बात पर सभी आचार्य एकमत नहीं हैं। पंत ने 'रजतशिखर' की विज्ञप्ति में लिखा है—'यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एवं तेरह-ग्यारह (?) के स्थान पर दो बारह अथवा तीन आठ मात्रा के टुकड़ों पर रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है।' इस प्रकार पंत-द्वारा प्रयुक्त रोला में ११-१३, १२-१२, ८-८-८ ये तीन

प्रकार के यति-स्थल मिलते हैं। रोला का स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में प्रयोग हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

युगांत—पद्य १२, ताज

युगांतर—श्रद्धा के फूल (१--६, १२,१५) रवींद्र के प्रति, अवनींद्र नाथ की ७५ वीं वर्षगाँठ पर, मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति

युगवाणी—पतझर, दो लड़के, धनपति, मध्यवर्ग, कृषक, श्रमजीवी, भूतजगत, अनायिका के कवि, आचार्य द्विवेदी के प्रति

ग्राम्या—खिड़की से, दिवा-स्वप्न

स्वर्णकिरण—जवाहर लाल, पूषण, चंद्रोदय, द्वा सुपर्णा, अरविंद दर्शन, श्री मैथिलीशरण गुप्त

स्वर्णधूलि—नरक में स्वर्ग १, ३; सावन, १५ अगस्त '४७, ज्योतिवृषभ, अग्नि, काल अश्व, देवकाव्य, देव, पुरुषार्थ, अन्तर्गमन, एकं सत्, प्रच्छन्न मन, सृजन शक्तियाँ, इंद्र, वरुण, सोमपायी, मंगल स्तवन

खादी के फूल—पद्य १--६, १२, १५

लोकायतन —ज्योतिद्वार–उत्क्रांति (अंतिम १ पद्य)

रजतशिखर—गीतों को छोड़कर संपूर्ण

सौवर्ण— ,, ,,

शिल्पी— ,, ,,

अतिमा—प्रार्थना, शांति और क्रांति, आः धरती कितना देती है, आत्म-दया, ध्यान भूमि, सृजनवह्नि

वाणी—कृतज्ञता, अंतः साक्ष्य, विकास क्षेत्र, कवींद्र के प्रति, प्रार्थना

पौ फटने के पहले—पद्य १०, ११, १४, १५, १६, ४४, ५१, ५२

पतझर—चन्द्रकला, गिरिविहंगिनी, भाव और वस्तु, गिरि कोयल, मानव-सौंदर्य, याथातथ्य, कविकोकिल, विश्वविवर्तन, भावशक्ति, विज्ञान और कविता, सरिता, शिवोऽहम्, प्रेम, हृदय स्वप्न, जागा वृत्त, भविष्योन्मुख, नवशोणित, भरतनाट्यम्, नया वृत्त, संपृक्ति, मानदंड, सुधा स्रोत, संस्कृति, अनन्य तन्मया, जीवन और मन, जीवनक्षेत्र, पौरुष, इतिहास भूमि, आंतर क्रांति, जीवन ईश्वर, अंतर्हिम गिरि, विद्याविनम्रता, अजेयशक्ति, मनुजसत्य, सहजसाधना, हृदय-बोध, चार्वाक, विश्व-रत, व्यक्ति

विश्व (अन्य छंद भी) नाम-मोह, आश्वासन, सत्यव्यथा, भाव-स्रोत, गजल, हृदयमुक्ति, मानवीय जग, निग्रह, होटल का वैरा

गीतहंस—पद्य १, ६, १०, ३२, ४१, ४८, ५५, ५६, ५७, ५८, ६२, ६३, ८२, ८४, ६३

किरण-वीणा—वंशी, भारतनारी, क्षणजीवी, हेनरी के प्रति, पुरुषोत्तम राम

मधुज्वाल—पद्य ४५

समाधिता—पद्य ६, १०, १६, २१, २२, २७, ३३, ३६, ३७, ४१, ४३, ४८, ५४, ५५, ६५, ६६, ७१, ७२, ७३, ७४, ८८, ८६, ६०, ६६

मिश्र प्रयोग के स्थल—

पल्लव—उच्छ्वास (अनेक छंदों के साथ) परिवर्त्तन (सरसी, शृंगार, तांडव, गोपी, शिखंडी, शृंगारकल्प के साथ)

युगांतर—स्वतन्त्रतादिवस (महानुभाव) अवतरण (चौपाई, हंसगति, समानसवैया, सार, महानुभाव) स्वप्न पूजन (चौपाई) करुणा-धारा (समान सवैया) त्रिवेणी (अनेक छन्द)

स्वर्णकिरण—इन्द्रधनुष (सार के साथ) उषा (अनेक छन्द) स्वर्णोदय (अनेक छन्द)

स्वर्णधूलि—प्रारम्भ (रासामृत के साथ) काले बादल (चौपाई, समान-सवैया) क्षणजीवी (चौपाई, शृंगाराभास, ताटंक, वीर) मनुष्यत्व (चौपाई) प्रीतिनिर्झर (प्रदोष, महानुभाव, चौपाई)

उत्तरा—उद्दीपन (हंसगति, राधिका, चौपाई) विनय (अखंड, चौपाई, पद्धरि, मधुभार, शक्तिपूजा, पदपादाकुलक)

ज्योत्स्ना—पृ० ६१ (अखंड, चौपाई, समानसवैया)

अतिमा—जन्मदिवस (चौपाई, सार, महानुभाव) सोनजुही (चौपाई, सार, समानसवैया) कौएँ बतखें मेंढक (चौपाई, समानसवैया)

वाणी—अभिव्यक्ति, विकास-क्रम (चौपाई) फूलों का दर्शन (चौपाई, हंसगति) स्नेहस्पर्श (महानुभाव) आत्मदान (सुगति, चौपाई, हाकलि) आत्मिका (चौपाई, हंसगति, समानसवैया)

पौ फटने के पहले—पद्य ३२,४२ (चौपाई) ३५ (विष्णुपद) ३७,४६ (सार)

पतझर—गुह्याकर्षण, समर्पण (चौपाई) जीवनकर्म (हंसगति) सौन्दर्य भैरवी (सार) जीवनयात्री (चौपाई, समानसवैया)

गीतहंस—पद्य ३ (चौपाई) १४ (चौपाई, समानसवैया) २४ (समान-सवैया, हंसगति) ७७ (सार)

किरण-वीणा—देवश्रेणी, नया वोध (चौपाई, समानसवैया) बीज, का ते कांता, सौंदर्य (चौपाई)

समाधिता—पद्य १ (सार के साथ)

इसके अतिरिक्त स्वच्छंद छंद में भी रोला के चरण उपलब्ध होते हैं। यों तो रोला सभी छायावादियों के काव्यों में पर्याप्त रूप से प्रयुक्त हुआ है; पर पन्त ने इसका प्रयोग विपुल परिमाण में किया है।

(७८) पंचचामर मात्रिक (२४ मा०)

सुनो, प्रयाण के विपाण तूरि भेरि वज उठे;
घनन पणव पटह प्रचंड घोप कर गरज उठे,
विशाल सत्व सैन्य, वीर युद्ध वेश सज जुटे,
कण, कण अस्त्र शस्त्र युक्त क्रुद्ध भुज उठे।

—युगांतर : भारतगीत १

ज र ज र ज ग का पंचचामर वर्णवृत्त होता है। उक्त पद्य में गण का क्रम भंग हो गया है, पर लय वही है। अतः यह पंचचामर का मात्रिक रूप है। पन्त के सम्पूर्ण काव्य में पंचचामर की १४ पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं। उक्त चार पंक्तियों के अतिरिक्त इसके प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

स्वर्णकिरण—उपा, पृ० ५२ (अमन्द रहस गीत नृत्य नाद से दिशा ध्वनित आदि ४ पंक्तियाँ)

स्वर्णधूलि—मानसी १६ (प्रमाणिका, लीला, लीलाधिका, हीर के साथ ४ पंक्तियाँ) २० (अंत में दो पंक्तियाँ)

मानसी की निम्न पंक्तियों में—

प्रतीति प्रीति प्राण में, चरण धरो, चरण धरो।
लिए हो हाथ हाथ में, न तुम डरो, न तुम डरो।

डॉ० शुक्ल ने सारस छंद माना है, और उसका वृत्तरूप पंचचामर

बतलाया है।[1] पर यहाँ पंचचामर का संस्कार अधिक प्रबल है, उसकी गूंज स्पष्ट सुनाई पड़ती है। अतः यहाँ पंचचामर मानना ही अधिक युक्तिसंगत है।

वर्णवृत्त—रूप में पंचचामर का पयोग प्रसाद ने किया है। निराला और महादेवी में यह प्राप्त नहीं होता।

(७९) चंचला मात्रिका (२४ मा०)

रंग चपल पुष्प हास पंख खोल भूमि कंत
भृंग गुंजरित, पिकी रटित जगा नवल वसंत।
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगंत,
गीत गंध मधु मरंद हिम ग्रथित समीर मंद।

– स्वर्णकिरण : उषा, पृ० ५२

यह चंचला (र ज र ज र ल) का मात्रिक रूप है। इसकी ये ही चार पंक्तियाँ पंत के काव्य में मिलती हैं। निराला ने भी इसका प्रयोग किया है। प्रसाद और महादेवी में यह उपलब्ध नहीं।

(८०) सारस (२४ मा०)

स्वर्णिम महिशतदल पर शोभित लघु अरुण चरण।
झुक-झुक मुख चूम चूम तृण तृण कण प्रीति भरण।
दिशि-धनु शर-सी असंख्य द्रुत भव तम-भीति हरण।
रवि-छवि से स्मित लघु पर अप्सरि-सी व्योम तरण।

—ज्योत्स्ना, पृ० १२१–१२२

भानु ने सारस का जो उदाहरण दिया है, वह भगण और गुरु (भ ग) की चार आवृत्तियों से बना है। वह लक्षण इन पंक्तियों पर पूर्ण रूप से घटित नहीं होता। ये पंक्तियाँ छकल की (चाहे उसका जो रूप हो) चार आवृत्तियों से निर्मित हुई हैं। सारस का यही सामान्य लक्षण मान कर ये पंक्तियाँ सारस-निबद्ध बतलाई गई हैं। इसी आधार पर सूरदास के पदों (सूरसागर, पद ३२६१,४०२०) और निराला की पंक्तियों में सारस माना गया है। :

'ज्योत्स्ना' में ऐसी छह पंक्तियाँ हैं, जिनके ऊपर लीला का एक चरण है। (कनक-किरण, कनक-चरण) इसके अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग 'ग्राम्या' के 'उद्बोधन' में भी हुआ है, जहाँ अनेक स्थलों पर अनेक वर्णों का लघूच्चारण करना पड़ता है। यथा –

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २६०

भित्तियाँ खड़ी हैं वहाँ देश काल की दुर्धर।
विश्व सभ्यता का शिलान्यास करें भव शोभन।

फिर भी दो-चार पंक्तियाँ ऐसी मिल जाती हैं, जिनमें कहीं तो दो मात्राओं की अधिकता और कहीं एक की न्यूनता है। १८ मात्रापादी पंक्तियाँ लीला-वृत्त की कही जा सकती हैं।

प्रसाद और महादेवी ने सारस नहीं लिखा। निराला की तीन कविताओं में इसके चरण उपलब्ध होते हैं।

(८१) शक्तिपूजा (२४ मा०)

खुल गए छंद के बंध
प्रास के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ युगवाणी बहती अयास।
बन गए कलात्मक भाव
जगत के रूप नाम,
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम।

—युगवाणी : नव दृष्टि

उक्त 'नव दृष्टि' कविता आद्योपांत शक्तिपूजा छंद में निबद्ध है। कवि ने एक चरण को मनमाने ढंग से दो पंक्तियों में रखकर 'छंद के बंध' खुल जाने की दुंदुभि बजाई है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

युगांतर—वह मानव क्या?
युगवाणी—नव दृष्टि
ग्राम्या—ग्राम नारी, ग्राम देवता, मजदूरनी के प्रति, द्वंद्व प्रणय, सूत्रधर, सांस्कृतिक दृश्य, भारत ग्राम, बापू, अहिंसा, वाणी, विनय
उत्तरा—परिणय, छायासरिता
अतिमा—संदेश
वाणी – रूपांतर

स्वतंत्र प्रयोग के अतिरिक्त शक्तिपूजा छंद स्वच्छंद छन्द में भी प्रयुक्त हुआ है। यथा –

मैं रिक्त, पूर्ण कर भर दो
नव आशाऽभिलाष । } — उत्तरा : विनय

अनिवार कामना
नित अबाध अमना बहती } — स्वर्णधूलि : छायाभा

प्रसाद के काव्य में शक्तिपूजा छन्द नहीं मिलता । निराला और पंत ने इसका विशद प्रयोग किया है । महादेवी ने केवल दो गीतों की रचना इस छन्द में की है ।

(८२) रूपमाला (२४ मा०)

जुगनुओं के ज्योति मंडल से घिरा मुख शांत
तारिकाओं की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रांत,
इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कांत
सजल करुणा थी खड़ी ज्यों इंद्र धूम दिनांत ।

— स्वर्णकिरण : उषा, पृ० ६०

पंत ने रूपमाला का अत्यंत अल्प प्रयोग किया है । उक्त कविता में १६ तथा 'रजतशिखर' (पृ० १४८) में मनोरम के साथ एक — बस इतनी ही पंक्तियाँ पंत-काव्य में रूपमाला की मिलती हैं ।

रूपमाला का प्रसाद ने अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है । उनके बाद महादेवी, फिर निराला और अंत में पंत आते हैं ।

(८३) चिदंबर (२६ मा०)

(क) फिर उड़ने लगा सुवर्ण मरंद चिदम्बर से झर,
तन्मय स्पर्शों से मनः शिराएँ कँपती थर् थर् ।

× × ×

स्वप्नों के क्षितिजों में तुम खोल रही उन्मेषित
नित नए रूप के अन्तरिक्ष अंतः सुख/प्रेरित !
उर रूप तुम्हारा धर नव श्री सुषमा से/विष्टित ।

— पौ फटने के पहले : पद्य १८

(ख) जिसका न, —
वहाँ
गीतों के पंखों पर उड़ जाएं ।

— गीतहंस : पद्य ६६

(कवि ने 'क' के प्रत्येक चरण को 'ख' की तरह दो-तीन पंक्तियों में लिखा है ।)

चिदंबर छंद का निर्माण राधिका के अन्त में चार मात्राओं अथवा पद्धरि-पदपादाकुलक के आगे दस मात्राओं के योग से हुआ है। इसके केवल उक्त छह चरण स्वच्छन्द छन्द में मिलते हैं। यह पंत की सृष्टि है। निराला आदि में यह प्राप्त नहीं।

(८४) गीतिका (२६ मा०)

तुम न होती तो, प्रिये,
सौंदर्य के सित चरण छूकर } – माधवमालती

पार कर पाता कभी मन
सत्य के दुर्जेय शिखर } —गीतिका

—पौ फटने के पहले : पद्य ५

पंत के काव्य में गीतिका का केवल उक्त एक चरण स्वच्छंद छन्द में लिखी उक्त कविता में प्राप्त होता है। पर प्रसाद, निराला और महादेवी ने इसका अनल्प प्रयोग किया है।

(८५) विष्णुपद (२६ मा०)

छोड़ अतल उद्वेलित जल में तृण की तरी भली,
मैं निर्भय हो तिरता, किसके बल से लघु तृण वली ? (सरसी)
छिद्र अनेक तरी में तृण की जाती सहज चली—
तृण न डूबते सरिता में वह गहरी हो उथली। (सरसी)

—किरण-वीणा : तृणतरी

विष्णुपद का स्वतंत्र प्रयोग कहीं प्राप्त नहीं। उक्त कविता में इसकी एक-एक पंक्ति सरसी की एक-एक पंक्ति के साथ पाई जाती है। सरसी के अंत में आचार्यों ने ऽ। माना है। पर पद-साहित्य में इसका लगात्मक (। ऽ) अंत भी देखा जाता है। अतिरिक्त प्रयोग-स्थल—

युगांत (पद्य २०) रजतशिखर (पृ० १४७, १४९) अतिमा (गीत, पृ० ९०) गीतहंस (पद्य ३८) शिल्पी (पृ० १३, ३८, ११०) में यह चौपाई के साथ तथा ग्राम्या (राष्ट्रगान) में सार एवं चौपाई के साथ प्रयुक्त हुआ है।

प्रसाद और महादेवी ने विष्णुपद का स्वतंत्र प्रयोग भी किया है। निराला और पंत में यह केवल अन्य छंदों के साथ प्रयुक्त हुआ है।

(८६) सरसी (२७ मा०)

सखि, मानस के स्वर्ग-वास में चिर-सुख में आसीन,
अपनी ही सुखमा से अनुपम, इच्छा में स्वाधीन,

प्रति युग में आती हो रंगिणि ! रच रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि-ईप्सित-अप्सरि ! त्रिभुवन भर में लीन।
—गुंजन : अप्सरा

सरसी का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

गुंजन—अप्सरा

युगवाणी—खोलो, संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति, रूपनिर्माण, बंद तुम्हारे द्वार, राग, पलाश, पलाश के प्रति, आचार्य द्विवेदी के प्रति

स्वर्णधूलि – संन्यासी का गीत

ज्योत्स्ना—पृ० १०० (पद)

मधुज्वाल – पद्य १२२

समाधिता—पद्य ११

मिश्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य ३५, ४२, ५४, ५६, ५७ (शृंगार के साथ) ५२ (तारक, चौपाई, राधिका) ५३ (शृंगार, चौपाई, गोपी) ६० (महानुभाव, अखंड, तमाल, शृंगार, चौपाई)

पल्लव—उच्छ्वास (अनेक छंदों के साथ) आँसू (अनेक छंद) जीवनयान (चौपाई, शृंगार) परिवर्त्तन (शृंगार, तांडव, गोपी, शिखंडी, शृंगारकल्प, रोला)

युगवाणी—बापू, गंगा की साँझ, गंगा का प्रभात, मार्क्स के प्रति, रूप सत्य (सब सार के साथ)

स्वर्णकिरण—ज्योति भारत (चौपई, चौपाई, अहीर)

स्वर्णधूलि—आर्त्त (चौपाई, तमाल, निश्चल)

ज्योत्स्ना—पृ० ५० (चौपाई के साथ)

अतिमा—प्राणों की द्वाभा, मुरली के प्रति (चौपाई)

किरण-वीणा—प्रेरणा (चौपाई) रूप स्वप्न (उत्कंठा, चौपाई, वीर) तृण-तरी, आत्मकथा (विष्णुपद)

मधुज्वाल—पद्य ५० (शृंगार के साथ)

स्वच्छंद छंद में भी इसकी पंक्ति कहीं-कहीं दिखलाई पड़ जाती है। सरसी का प्रयोग अन्य तीन कवियों की अपेक्षा निराला ने कम किया है। उनकी केवल एक कविता में इसका स्वतंत्र प्रयोग हुआ है।

(८७) माधवमालती (२८ मा०)

स्वप्नदेही हो प्रिये, तुम देह तनिमा अश्रु धोई।
रूप की लौ सी सुनहली दीप में तन के सँजोई।
सेज पर लेटी सुघर सौंदर्य छाया सी सुहाई,
कामदेही स्वप्न सी स्मृति तल्प पर तुम दी दिखाई।

—स्वर्णधूलि : स्वप्नदेही

आजकल की प्रचलित परिपाटी के अनुसार इस छंद के प्रत्येक चरण को कवि ने दो पंक्तियों में लिखा है। इसी ने डॉ० शुक्ल को धोखे में डाल दिया। फलतः उक्त प्रथम-दो पंक्तियों को उन्होंने मनोरम का अर्द्धसम रूप मान लिया।[1] वस्तुतः ये मनोरम की नहीं माधवमालती की पंक्तियाँ हैं। माधवमालती का स्वतंत्र प्रयोग बस इसी एक कविता में हुआ है।

मिश्र प्रयोग के स्थल—

पौ फटने के पहले – पद्य ३६ (मनोरम के साथ)

किरण-वीणा – तुम कौन (मनोरम, पीयूषनिर्झर) हिम चंचल (मनोरम)

इसके अतिरिक्त स्वच्छन्द छंद में भी इसके चरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। प्रसाद के काव्य में इसके केवल छह चरण मिलते हैं। पंत ने भी इसका बहुत प्रयोग नहीं किया। निराला ने इसमें कई कविताओं की रचना आद्योपांत की है। पर महादेवी ने इन तीनों की अपेक्षा इसका विशद प्रयोग किया है।

(८८) सार (२८ मा०)

विगत सत्य, शिव, सुंदर करता नहीं हृदय आकर्पित,
सभ्य, शिष्ट और संस्कृत लगते मन को केवल कुत्सित।
संस्कृति, कला, सदाचारों से भव-मानवता पीड़ित।
स्वर्ण-पींजड़े में बंदी है मानव आत्मा निश्चित।

—युगवाणी : मूल्यांकन

सार का स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में प्रयोग हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २५५

युगांतर—श्रद्धा के फूल (१०, ११) जागरण-गीत, अरविंद के प्रति, जिज्ञासा

युगवाणी—मानवपन, मूल्यांकन, भूतदर्शन, साम्राज्यवाद, रूप का मन, रूप पूजन, नारी, अनुभूति, राग-साधना, आत्म समर्पण, वाणी

ग्राम्या—स्वप्न पट, ग्राम, ग्रामचित्र, कहारों का रुद्र नृत्य, महात्मा जी के प्रति, रेखाचित्र, सौंदर्य-कला, कला के प्रति, आधुनिका, नारी, संस्कृति का प्रश्न, आँगन से, याद, गुलदावदी

स्वर्णकिरण—स्वर्णनिर्झर, नोआखाली, व्यक्ति और विश्व, भूलता, कौवे के प्रति

स्वर्णधूलि—नरक में स्वर्ग (२), अंतिम पैगंबर, क्रोटन की टहनी, स्वप्न-बंधन

उत्तरा—वंदना

खादी के फूल—पद्य १०, ११

अतिमा—गीतों का दर्पण, नव चैतन्य, पतझर, कूर्मांचल के प्रति

पौ फटने के पहले—पद्य ४८, ५६

पतझर—आत्म प्रतारण, गीत भ्रमर, प्रलय सृजन, भावक्रांति, विद्रोही यौवन, अंतरमयी, भावी मानव, संस्कृति पीठ

गीतहंस—पद्य ४६, ६०, ६१, ६५, ७२, ७४, ७६, ७६, ८२

किरण-वीणा—प्रीति आस्था, रस सूर्योदय, मृदवास, अभिसार

समाधिता—पद्य २-५, ७-६, १८-२०, २३, ३०, ३८, ४४, ४६-५१, ६७, ६८, ८२, ८३, ८७

मिश्र प्रयोग के स्थल—

युगांत—पद्य २१ (चौपाई के साथ)

युगांतर—भारत गीत १ (हंसगति, महानुभाव, चौपाई, पंचचामर)
,, २ (चौपाई, वसंत चामर)
,, ३ (चौपाई, महानुभाव, प्रमाणिका) जयगान (चौपाई, महानुभाव) अवतरण (चौपाई, हंसगति, समानसवैया, महानुभाव) नव आवेश (चौपाई)

युगवाणी—बापू, गंगा की साँझ, गंगा का प्रभात, मार्क्स के प्रति, रूप सत्य (सरसी के साथ) युगवाणी (अखंड, सखी, चौपाई)

ग्राम्या – राष्ट्रगान (अखंड, शशिवदना, चौपाई, विष्णुपद)

स्वर्णकिरण—इन्द्रधनुष (रोला के साथ) चिंतन (समानसवैया) उषा (अनेक छन्द) स्वर्णोदय (अनेक छन्द)

स्वर्णधूलि – लोकसत्य (अखंड के साथ) आवाहन (हाकलि, महानुभाव) मानसी १ (चौपाई)

उत्तरा—युगविपाद, युगछाया, स्वप्नक्रांत, जगतघन, उन्मेष, भू वीणा, रूपांतर, भू यौवन, मौन गुंजन, शोभाक्षण, शरदागम, मानव ईश्वर, प्रीति-समर्पण, प्रतीक्षा (सब चौपाई के साथ) जागरण-गान, उद्‌बोधन (हंसगति के साथ) आभास्पर्श (हंसगति, चौपाई) जीवन प्रभात (ताटंक, अखंड, पदपादाकुलक)

रजतशिखर—पृ० ११, १२६ (चौपाई) पृ० ८३, ११०, १२४ (चौपाई, महानुभाव) १०८ (चौपाई, समानसवैया)

सौवर्ण—पृ० ७३ (चौपाई के साथ)

अतिमा—पृ० ३० (गीत), पृ० ५१ (गीत), पृ० ८३ (गीत), स्वर्णिम पावक, गीत (१२०)—(सब चौपाई के साथ) सोनजुही (चौपाई, रोला, समानसवैया) विज्ञापन (शिव, राम, शशिवदना, माली, अहीर)

वाणी—वाणी, आवाहन, मनोभव (चौपाई के साथ)

पौ फटने के पहले—पद्य २०, ३४, ५४ (चौपाई) ३७, ४६ (रोला)

पतझर—युगबोध, सौंदर्य भैरवी (चौपाई) चित्रगीत, प्रेमाश्रु (महानुभाव, चौपाई)

किरण-वीणा—किरण-वीणा, नवोन्मेष (समानसवैया) सूर्योदय (चौपाई, समानसवैया) अमरयात्रा (चौपाई)

गीतहंस—पद्य ४४, ८८, ६० (चौपाई)

शिल्पी—पृ० २७, ३०, ३५, १०४, १०५, १०६ (चौपाई)

इसके अतिरिक्त स्वच्छन्द छन्द में भी इसके चरण यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। सार का प्रयोग अन्य छायावादियों ने बहुत कम किया है। निराला और महादेवी में तो इसका बहुत अल्प प्रयोग मिलता है। प्रसाद के काव्य में इन दोनों की अपेक्षा यह अधिक प्रयुक्त हुआ है। पंत ने इन तीनों की अपेक्षा इसका प्रयोग बहुत अधिक परिमाण में किया है।

(८६) ताटंक (३० मा०)

कौन, कौन तुम परिहत-वसना, म्लान-मना, भू-पतिता-सी,
वातहता-विच्छिन्न लता-सी, रति-श्रांता व्रज वनिता-सी ?
नियति-वंचिता, आश्रय-रहिता, जर्जरिता पद-दलिता-सी,
धूलि धूसरित मुक्त कुंतला, किसके चरणों की दासी ?

—पल्लव : छाया

ताटंक का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य ३, ८, १०, ११, १४, १५, ३६
स्वर्णकिरण—भू प्रेमी, आवाहन
स्वर्णधूलि—नव वधू के प्रति
मधुज्वाल—पद्य १०२, ११७, ११८, १३८, १४२
समाधिता—पद्य ५२

मिश्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य १, २, ५, १६, २७, ४१ (हाकलि के साथ) ४, १२, २०, २३, २८, ३०, ३३, ३७, ३६, ४४, ५१, ५८, ६१, ६२ (वीर के साथ) १३, २२, २४, ४३ (वीर, हाकलि, चौपई) १७, २१, ३४ (वीर, हाकलि) १८, ४७ (चौपई) ३१, ३८ (हाकलि, चौपई) ४० (चौपई, वीर)

पल्लव—अनंग, स्वप्न, छाया, नक्षत्र, वादल, वालापन (वीर के साथ) मोह (हाकलि, चौपई) वसंतश्री (हाकलि, चौपाई, वीर) याचना (हाकलि)

युगवाणी—जीवन-तम (वीर के साथ)
स्वर्णकिरण—क्षणजीवी (चौपाई, शृंगाराभास, वीर, रोला)
रजतशिखर—पृ० ६५ (चौपाई, हाकलि)
किरण-वीणा—विरहणी (चौपाई)
शिल्पी—पृ० ४२ (हंसगति)
मधुज्वाल—पद्य १०८, ११६, १२१, १२३, १३६, १४३ (सब वीर के साथ)

निराला के अतिरिक्त सब छायावादियों ने ताटंक का स्वतंत्र प्रयोग किया है। महादेवी के तीन गीत आद्योपांत ताटंक में निबद्ध हैं। प्रायः इसका प्रयोग कवियों ने वीर छंद के साथ किया है। प्रसाद और पंत में उन दोनों की अपेक्षा यह अधिक प्रयुक्त हुआ है। परिमाण की दृष्टि से प्रसाद का काव्य संभवतः अधिक भारी सिद्ध हो सकता है।

(९०) उत्कंठा (३० मा०)

कहाँ खोंस लाई कवरी में फुंदे वाले लाल फूल
हरी भरी झवरी कवरी में मणि की मालें रही झूल;
कहाँ गूँथ लाई कवरी में रक्तजिह्व रतनार फूल।
चिकनी केंचुल-सी कवरी में मणि की ज्वालें रही झूल।

—अतिमा : विद्रोह के फूल

उत्कंठा का उल्लेख डॉ० शुक्ल ने किया है। इसे नवीन प्रयोग मानकर वे इसका लक्षण बतलाते हैं—१६ मात्राओं के बाद यति आती है, पर समचरण (१४ मात्राएँ) अष्टक और दो त्रिकलों के योग से बनता है। अंत में गुरु-लघु अनिवार्यतः आता है।[1] वस्तुतः चौपाई और कज्जल के चरणों के योग से इसके चरण का निर्माण हुआ है। दो त्रिकलांत ताटंक के अंतिम त्रिकल (। ऽ) को ऽ। कर देने से भी यह बन जाता है। दूसरी और चौथी पंक्तियों के 'मणि की मालें रही झूल' की जगह 'मणि की मालें झूल रही, कर देने से दोनों पंक्तियाँ ताटंक की हो जायँगी।

यह प्रयोग नवीन नहीं, प्राचीन है। इसका प्रयोग सूरदास ने तीन पदों में (३१४२, ३६४४, परिशिष्ट १३२) किया है। प्रसाद, निराला और महादेवी ने इसका प्रयोग नहीं किया है, पंत में भी यह स्वतंत्र रूप में प्राप्त नहीं। प्रगाथ (मिश्र) और स्वच्छंद छंद में इसकी कतिपय पंक्तियाँ मिलती हैं। अतिरिक्त प्रयोग-स्थल—

काँव काँव करते कठ कौवे
काँव काँव कटु काँव काँव।

—वाणी : कौवे।

भू जीवन के पुलिन चूमता
नव भावों का रश्मि ज्वार।

—किरण-वीणा : रूप स्वप्न

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३०३

आधुनिक युग में इसका प्रयोग सर्वप्रथम संभवतः मैथिलीशरण ने 'यशोधरा' में किया है।

(९१) चतुष्पद (३० मा०)

शिशु हंस वक्ष, कृश कटि
मांसल अवयव-शोभा-संगति भर।

—पौ फटने के पहले : पद्य ३३

सौंदर्य मधुरिमा
प्रीति प्रहर्ष धरा पर करते विचरण।

—पतझर : तारा चिंतन

भिखारीदास-द्वारा उल्लिखित चतुष्पद की ये ही दो पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में लिखी उक्त दो कविताओं में उपलब्ध होती हैं। निराला-काव्य में भी इसकी कुछ पंक्तियाँ स्वच्छंद छंद में ही मिलती हैं। प्रसाद और महादेवी में यह प्राप्त नहीं।

(९२) संसार (३० मा०)

मैं विष्णुपदी, मैं सुर-सरिता मैं हरि चरणों से आई,
मैं पुण्य त्रिपथगा, स्वर्गंगा की सुधा-धार हूँ लाई।
शत रश्मि ज्वलित निर्झर सी उतरी मै शंकर के सिर पर,
शोभा में लहरी, जटा शंकरी कवियों से कहलाई।

—युगांतर : त्रिवेणी, पृ० १५४

संसार छंद में १८–१२ पर यति देकर ३० मात्राएँ होती हैं। सार के आदि में दो मात्राओं के योग से इसका निर्माण मैथिलीशरण ने किया है। (अनघ : उद्यान गान, पृ० ३४) पंत ने इसका स्वतंत्र प्रयोग उक्त कविता के चार पद्यों में किया है। 'गीतहंस' की स्वच्छन्द छन्द में लिखी २२वीं कविता में भी इसकी एक पंक्ति मिलती है। यथा—

मैं शील-नम्र मानव का करता
जन भू पर आवाहन।

पंत के अतिरिक्त छायावादी-त्रय में किसी ने इसका प्रयोग नहीं किया।

(९३) वीर छन्द (३१ मा०)

कभी अचानक, भूतों का सा प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क-कड़क जब हँसते हम सब थर्रा उठता है संसार;

फिर परियों के बच्चों-से हम सुभग सीप के पंख पसार,
समुद तैरते शुचि ज्योत्स्ना में, पकड़ इंदु के कर सुकुमार।
—पल्लव : बादल

स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में वीर छंद का प्रयोग हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—उत्सर्ग, पद्य ७, २५, ४६, ५५ (सब में टेक--चौपई)

युगवाणी—युग उपकरण, समाजवाद, गाँधीवाद, जीवनमांस मधु के स्वप्न

ज्योत्स्ना—पृ० १०४

मधुज्वाल—पद्य १०६, ११५, ११६, १२०, १२६, १२७, १३०, १३३, १३४, १३६, १३७, १४०, १४१, १४४–१५१

मिश्र प्रयोग के स्थल—

वीणा—पद्य ४, १२, २०, २३, २८, ३०, ३३, ३७, ३६, ४४, ५१; ५८, ६१, ६२ (ताटंक के साथ) १३, २२, २४, ४३ (ताटंक, हाकलि, चौपई) १७, २१, ३४ (ताटंक, हाकलि) २६, ३२, ४८, ६३ (हाकलि, चौपई) ४० (ताटंक, चौपई)

पल्लव—विनय (चौपई के साथ) अनंग, स्वप्न, छाया, नक्षत्र, बादल, बालापन (ताटंक) वसंतश्री (हाकलि, चौपाई, ताटंक) आकांक्षा (हाकलि, चौपई)

युगवाणी—जीवन-तम (ताटंक)

ग्राम्या—चमारों का नाच (चौपई, चौपाई, समान-सवैये के साथ--केवल एक पंक्ति) (उछल कूद······उमंग)

स्वर्णधूलि—अगजीवी (चौपाई, शृंगाराभास, ताटंक, रोला) चौथी भूख (प्रारंभिक एक पंक्ति)

उत्तरा—अभिलाषा (चौपई, चौपाई)

किरण-वीणा—रूप स्वप्न (कज्जल, उत्कंठा, चौपाई, सरसी के साथ दो पंक्तियाँ)

मधुज्वाल—पद्य १०८, ११६, १२१, १२३, १३६, १४३ (ताटंक के साथ)

वीर छंद का स्वतंत्र प्रयोग छायावाद में बहुत कम हुआ है। स्वतंत्र रू

में इसकी रचना प्रसाद ने ३, निराला ने ३ (यमुना के प्रति में ताटंक की मात्र एक अर्द्धाली है), महादेवी ने ६ और पंत ने ११ कविताओं में की है। ताटंक के साथ मिश्र रूप में प्रसाद और पंत ने उन दोनों की अपेक्षा इसका प्रयोग कुछ विशद रूप में अवश्य किया है।

(६४) समान सवैया (३२ मा०)

खड़ा द्वार पर, लाठी टेके
वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढाँचे पर।
उभरी ढीली नसें जाल सी
सूखी ठठरी से है लिपटी,
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों
सूनी अमर बेल हो चिपटी।

—ग्राम्या : वह बुड्ढा

समान सवैये का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में हुआ है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

युगांत—खद्योत
युगांतर—श्रद्धा के फूल-१३, जागरण, दीपलोक, श्रद्धांजलि।
युगवाणी—उद्‌बोधन, मन के स्वप्न
ग्राम्या—ग्रामकवि, वे आँखें, वह बुड्ढा, संध्या के बाद
स्वर्णकिरण—सम्मोहन, रजतातप, हिमाद्रि, जिज्ञासा, प्रभात का चाँद
स्वर्णधूलि—स्वर्णधूलि, पतिता, परकीया, ग्रामीण, सामंजस्य, आजाद, नरक में स्वर्ग (४—अंत में रोला, सार) छायादर्पण, हृदय-तारुण्य, प्रेममुक्ति, मुक्तिबंधन
उत्तरा—शरद श्री, स्तवन
खादी के फूल—पद्य १३
लोकायतन—जीवन-द्वार (युग भू, ग्रामशिविर, मुक्ति-यज्ञ) पृ० ४६३ (अंतिम पद्य) पृ० ५३५ (अंतिम डेढ़ पद्य) पृ० ६८० (अंतिम २ पद्य)
ज्योत्स्ना—पृ० ११०, १२१

अतिमा—जिज्ञासा, आत्मबोध, प्रकाश पतिंगे छिपकलियां, केंचुल, स्वर्ण-मृग, गिरि प्रांतर, स्फटिक वन।

वाणी—अंतरिक्ष भ्रमण

पौ फटने के पहले—पद्य ४५, ५७

पतझर—गीतप्रेरणा, संवेदना, प्रार्थना रूप

गीतहंस—पद्य ८,३९,७३,८०,८५

किरण-वीणा—भारत भू

मधुज्वाल—पद्य ३,१२,२९,३१,६३,८१,८९,१०१,१०३–१०७,१२४, १३१,१३२,१३५

समाधिता—पद्य ३९

मिश्र प्रयोग के स्थल—

युगांत—पद्य ११ (चौपाई के साथ)

युगांतर—अवतरण (चौपाई, हंसगति, रोला, सार, महानुभाव) करुणा-धारा (रोला) रँग दो, शोभाजागरण, मानसी, अंतरधन, प्रीतिपरिणय (चौपाई) त्रिवेणी (अनेक छंदों के साथ)

युगवाणी—कर्म का मन, मुझे स्वप्न दो आदि (चौपाई के साथ—देखिए पीछे चौपाई छंद)

ग्राम्या—चमारों का नाच (चौपई, चौपाई, वीर)

स्वर्णकिरण—चिंतन (सार के साथ) अवगुंठिता (अनेक छंद) उषा (अनेक छंद) निवेदन आदि (चौपाई के साथ। देखिए चौपाई छंद) स्वर्णोदय (अनेक छंद)

स्वर्णधूलि—काले बादल (चौपाई,रोला) मर्मव्यथा (चौपाई, हाकलि, पदपादाकुलक, माली)

उत्तरा—उत्तरा, आगमन आदि (चौपाई के साथ। द्रष्टव्य: चौपाई छंद)

रजतशिखर—पृ० ७९,११८,१३२ (चौपाई के साथ) १०८ (सार, चौपाई)

सौवर्ण—पृ० ६६,८६,१०१, १०४ (चौपाई)

ज्योत्स्ना—पृ० १३ (चौपाई) ६१ (अखंड, चौपाई, रोला)

अतिमा—नव अरुणोदय, आदि (चौपाई के साथ) सोनजुही (चौपाई, सार, रोला)

वाणी—जीवन-चेतना आदि (चौपाई के साथ) आत्मिका (रोला, चौपाई, हंसगति)

पौ फटने के पहले—पद्य १, २४ आदि (चौपाई के साथ)

पतझर—गीतदूत, गंभीर प्रश्न आदि (चौपाई के साथ) जीवनयात्री (रोला, चौपाई)

गीतहंस—पद्य १४ (चौपाई, रोला) २४ (रोला, हंसगति) २५, ४५ ८७ (चौपाई)

किरण-वीणा—किरण-वीणा, नवोन्मेष (सार) सूर्योदय (चौपाई, सार) देवश्रेणी, नया बोध (चौपाई, रोला) अमर पांथ, चित्प्रदेश (चौपाई)

मधुज्वाल—पद्य ४६, ६४ (चौपाई)

स्वच्छंद छंद में भी समान सवैये की पंक्तियाँ यत्र-तत्र मिलती हैं। परिमाण की दृष्टि से समान सवैये का प्रयोग छायावादियों में सबसे अधिक पंत ने किया है। उनके बाद प्रसाद के काव्य में ही यह विशद रूप से प्रयुक्त हुआ है। निराला और महादेवी में यह बहुत कम परिमाण में प्राप्त होता है।

(६५) मत्तसवैया (३२ मा०)

नव संस्कृति की चेतना-शिला
का न्यास हुआ अब भू-मन में,
नव लोक-सत्य का विश्व-संचरण
हुआ प्रतिष्ठित जीवन में।
गत जाति धर्म के भेद हुए
भावी मानवता में चिर लय,
विद्वेष घृणा का सामूहिक
नव हुआ अहिंसा से परिचय।

—युगांतर : श्रद्धा के फूल, १४

मत्तसवैये का प्रयोग प्रायः स्वतंत्र रूप में ही हुआ है। प्रयोग-स्थल—

युगांतर—श्रद्धा के फूल-१४, त्रिवेणी, पृ० १६० (डेढ़ पद्य)
युगवाणी—प्रकाश
स्वर्णकिरण—उषा (पृ० ५२-डेढ़ पद्य)
स्वर्णधूलि—मानसी १०,१४
खादी के फूल—पद्य १४
रजतशिखर—पृ० १२५,१२७
ज्योत्स्ना – पृ० ३७,४६,११६,११७,१२०,१२९
किरण-वीणा – सौंदर्य प्रदेश

मिश्र प्रयोग

वाणी – पुनर्नवा (शक्तिपूजा, पद्धरि, मधुभार)

मत्तसवैये का छायावाद में प्रचलन तो हुआ, पर इसमें कुछ अधिक परिमाण में रचना प्रसाद ने ही की है। उनके बाद पंत के काव्य में यह प्रयुक्त हुआ है। निराला और महादेवी में तो इसकी कतिपय पंक्तियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं।

स्वच्छंद छंद

स्वच्छंद छंद का विवेचन 'निराला की छंदोयोजना' में किया जा चुका है। निराला के स्वच्छन्द छन्द में तीन प्रकार के चरण मिलते हैं। पन्त ने उन तीनों प्रकारों के अतिरिक्त एक और ढंग से चरण का संस्थापन किया है। नीचे सब के उदाहरण दिए जाते हैं –

(१) शास्त्रीय छंद का चरण, जो प्राय: दो अथवा तीन पंक्तियों में लिखित है। यथा –

(क) साँसों में भर
सद्य: स्फुट
सुमनों की गंध अंतद्रित } सार

(ख) तुम प्रकाश पक्षी हो
जीवन पावक के
पंखों से भूपित } समान सवैया

पन्त की उत्तरकालीन कविताओं में यह प्रवृत्ति निराला की अपेक्षा बहुत अधिक है।

(२) शास्त्रीय दो छन्दों के चरणों के योग से निर्मित चरण –

(क) हृदय में उपजाता गोपन/संवेदन (गोपी + अलिपद)
– स्वर्णकिरण : स्वर्णोदय, ८७

(ख) जिसे शिशु ने जीवन-सागर/में छोड़ा (गोपी + अलिपद)
– स्वर्ण किरण : स्वर्णोदय, पृ० १०१

(ग) उसी में धीरे साँस/खींच मैं ढला (तांडव + छवि)
—पतझर : सत्यदृष्टि

(घ) मुक्त हो काम द्रोह से काम/दासता जो (शृंगार + सुगति)
—वाणी : पुनर्मूल्यांकन

(ङ) पुष्प स्वतकों-से कुम्हला/हुए अविद्या तम दूषित (शृंगार-कल्प + हाकलि)
—वाणी : पुनर्मूल्यांकन

पन्त में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत बहुत कम है। उनके काव्यों में उक्त पंक्तियों के अतिरिक्त ऐसी कतिपय पंक्तियाँ ही मिल सकती हैं।

(३) शास्त्रीय छंद के चरण की मात्राओं को घटा-बढ़ा कर बनाए गए चरण। ऐसे प्रयोगों को नूतन मान कर नए नाम दिए गए हैं।

(४) शास्त्रीय छन्द के दो चरणों का संयुक्त-रूप में लेखन—

सस्मित कपोल
अधर प्रवाल
म/राल वक्ष
पुलक-लता सी बाँह कोमल।
—पौ० फटने : पद्य ६१, पृ० १७३

यहाँ 'मराल' के 'म' तक सोलहमात्रापादी मधुमंजरी छंद है और 'राल' से 'कोमल' तक पीयूषनिर्झर। ऐसे एक अन्य उदाहरण के लिए देखिए पीछे पीयूषनिर्झर छन्द।

निराला के संपूर्ण काव्य में ऐसा दो छन्दों के चरणों का संयुक्त संस्थापन दिखलाई नहीं पड़ा। पन्त के स्वच्छन्द छन्द में दो भिन्न चरणों का संयुक्त रूप में लेखन बहुत अधिक मात्रा में दीख पड़ता है, जिससे पाठकों की उलझन बेतरह बढ़ गई है।

अध्ययन की सुविधा के लिए निराला के समान पन्त के स्वच्छन्द छन्द की भी दो कोटियाँ मानी जा सकती हैं।

(१) जिसमें किसी एक अथवा एक वर्ग के छन्दों के लयाधार पर चलने वाले शास्त्रीय तथा नवनिर्मित छंदों का विनियोग हुआ है। यथा—

(क) ऊर्णनाभ-से प्राण............अहीर
सूक्ष्म, अमर अन्तर जीवन का
ताने मधुर वितान। } ....सरसी
देश काल के मिला छोर!............कज्जल
पशु जीवन के तम में............महानुभाव
जीवन रूप मरण में............"
जाग्रत मानव!............अखण्ड
सत्य बनाओं स्वप्नों को
रच मानवता नव } ....रोला
हो नव युग का भोर............अहीर।
—युगवाणी : मानव

यहाँ जितने छन्द हैं, वे सब समप्रवाही अष्टकाधृत (चौपाई) वर्ग के है।

(ख) मन कला विज्ञान द्वारा............मनोरम
खोलता नित ग्रंथियाँ जीवन मरण की............पीयूषनिर्झर
दूसरी यह भूख मन की।............मनोरम
तीसरी रे भूख आत्मा की गहन!............पीयूषवर्षी
इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन............पीयूषनिर्झर
मनो जग से परे त्यों आत्मा चिरंतन............"
जहाँ मुक्ति विराजती
औ डूब जाता हृदय-क्रंदन } ....माधवमालती
—स्वर्णधूलि : चौथी भूख

उक्त सारी पंक्तियाँ सप्तक के आधार पर चलने वाली हैं। अतः ये सभी मनोरम की लय पर आश्रित कही जा सकती हैं। ऐसे स्वच्छंद छंद के प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

(क) अष्टकाधृत—
पल्लव—जीवन-यान, परिवर्तन

युगवाणी--मानव, चींटी, आम्र विहग, उन्मेष, जीवन-स्पर्श, दो मित्र, झंझा में नीम

स्वर्णकिरण--अवगुंठिता, छायापट

ग्राम्या--ग्रामयुवती, स्वीट पी के प्रति

स्वर्णधूलि--स्वप्ननिर्बल, आशंका, जातिमन, छायाभा, मृत्युंजय, चित्रकरी, अंतर्वाणी, ज्योतिझर

उत्तरा--प्रगति, प्रतिक्रिया, परिणति

अतिमा--विद्रोह के फूल, नेहरू युग

वाणी--अभीप्सित, अभिव्यक्ति, नवोन्मेष, आत्मनिवेदन, फूल की मृत्यु, वज्र के नूपुर, पुनर्मूल्यांकन, घोंघे शंख, नम्र अवज्ञा, उन्नयन, अग्नि, संदेश, अभिषेक, चैतन्य सूर्य, बुद्ध के प्रति (केवल प्रारंभिक अंश)

लौ फटने के पहले--पद्य ४, ६, ७, ६, १२, १६, २१, २२, २३, २५, ३०, ३१, ३३, ३६, ४०, ४१, ४३, ४६, ५०, ५५

पतझर--पवनपुत्र, नीलकुसुम, आत्मचेतन, तारांचितन, सोपान, निसर्ग वैभव, अज्ञेय, आत्मनस्तु कामाय, सृजनप्रक्रिया, सत्यदृष्टि, ऋतपतझर, मध्या के प्रति, हार्दिकता, वार्धक्य, जरा, इंद्रियाँ, शीलधन्या, अनुभूति, रूपांतरिता, अंतर्यौवन; साध्य, मूर्त्त करुणा, आत्मबोध, युगपतझर, अंधड़, परा, कला दृष्टि

गीतहंस--पद्य २,४,५,७,६,११,१२,१३,१५,२३,२६-३१,३३-३६,४०, ४२,४३,४६,५०-५२,५४,५६,६७,६८,६६,७०,७५, ७८, ८१, ८६,८६

किरण-वीणा--मैं हूँ केवल, दीप सूर्य, स्नेहदृष्टि, फूल चाँद पक्षी, आश्रय दारु योषित दृष्टि, सर्प रज्जु भ्रम, प्रेममार्ग, सीख, स्वर्णकिरण, दृष्टि, प्रेम, चंद्रमुख, वेणीवार्त्ता, खोज, सूरज और जुगनू, युध्यस्व विगतज्वरः, सूर्यास्त, संभ्रांत स्मृति, नयी आस्था

समाधिता--पद्य १२-१५, १७,२४,२६,२८,२६,३२,३४,३५, ६६, ७०, ७५,८६,६१-६८,१००,१०१

(ख) सप्तकाधृत--

स्वर्णधूलि --चौथी भूख (प्रारंभ में वीर छंद की एक पंक्ति)

पौ फटने के पहले—पद्य २, ३, ५, ८, १३, ४७, ६१

किरण-वीणा—लक्ष्य

(२) जिसमें कवि ने एक छंद या एक वर्ग के छंदों तक ही अपने को आवद्ध नहीं कर भिन्न वर्ग के छंदों के विनियोग में भी स्वच्छंदता ग्रहण की है। यथा—

दर्शन, सहस्र शास्त्र.........अहीर
सभ्यता के ब्रह्मास्त्र ....तांडव
खो गई एकता.........विमोहा
व्याप्त है अनेकता.........शिव
रह गई जाति-पांति.........शिखंडी
देश प्रांत.........धारी
युगों की रीति नीति.........शिखंडी
रूढ़ि भ्रांत...... धारी
स्वर्ग नरक ईति भीति ....लीला
जन अशांत ....धारी

—स्वर्ण किरण : संक्रमण

यहां अष्टकाधृत अहीर, तांडव आदि के साथ त्रिकल (शिव, लीला) और पंचकल (विमोहा) पर चलने वाले छंद भी मिले हुए है। प्रयोग-स्थल—

वीणा—पद्य ५६

पल्लव–उच्छ्वास, आंसू

युगवाणी—पुण्यप्रसू, सुमन के प्रति, प्रकृति के प्रति, द्वंद्व, बदली का प्रभात, दो मित्र, ओस के प्रति

स्वर्णकिरण—संक्रमण, नारी-पथ, युगप्रभात

स्वर्णधूलि—गणपति उत्सव, युगागम, मातृशक्ति, प्रतीति, सार्थकता, निर्झर, स्वर्ग अप्सरी

स्वच्छंद छंद में निराला और पंत दोनों की सामान्यतः एक ही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। फिर भी दोनों के प्रयोग में थोड़ा अंतर स्पष्टतः दिखलाई पड़ता है। निराला के स्वच्छंद छंद में अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंदता है। वे लिखते समय चरण-पर-चरण रखते चलते हैं; चाहे वे किसी छंद के हों। अंत्यानुप्रास भी आप-से-आप कहीं-कहीं मिलता चलता है। पंत में अंत्यानु-

प्रास का अधिक आग्रह है। साथ ही इनकी अनेक ऐसी कविताओं में एक छंद बहुत दूर तक चलता दिखलाई पड़ता है। कोई-कोई कविता तो प्रायः एक ही छंद में लिखी गई है। उसमें यत्र-तत्र दो-चार चरण अन्य छंदों के भी मिल जाते हैं। (गीतहंस, पद्य २७; वाणी—अभिषेक, चैतन्य सूर्य, बुद्ध के प्रति) 'पल्लव' के 'उच्छ्वास' और 'आँसू' में भी स्थल-विशेष पर ही थोड़ी स्वच्छंदता है। नहीं तो, ये दोनों कविताएँ आदि से अंत तक अनेक छंदों में निवद्ध हैं। अवश्य कहीं-कहीं इन छंदों के चरणों में कुछ काट-छाँट करने की स्वच्छंदता ग्रहण की गई है। 'परिवर्त्तन' की भी यही दशा है। उसमें तो अपेक्षाकृत और भी कम स्वच्छन्दता है। इसीलिए ऐसी कविताओं को स्वच्छन्द छन्द में रचित कहना उतना समीचीन नहीं, जितना अनेक छन्दों में निवद्ध वतलाना। 'युगांतर' की भारतगीत—१, त्रिवेणी, 'स्वर्णकिरण' की उषा, स्वर्णोदय, 'स्वर्णधूलि' की मर्मकथा, मर्मव्यथा, रसस्रवण, प्रीति-निर्झर तथा 'युगवाणी' की युग-नृत्य आदि कविताएँ तो स्पष्टतः अनेक छन्दों में निवद्ध हैं। उनमें स्वच्छन्द छंद की स्वच्छन्दता नाम मात्र को भी नहीं।

स्वच्छन्द छन्द निराला और पंत ने ही लिखा है। प्रसाद और महादेवी में यह प्राप्त नहीं।

मुक्त छंद

मुक्त छन्द कवित्त के लयाधार पर चलता है। कवित्त के सम्बन्ध में निराला और पंत दोनों के विचार भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ निराला कवित्त को हिंदी का जातीय छन्द मानते हैं,[1] वहाँ पंत की दृष्टि में यह 'हिंदी का औरस जात नहीं, पोष्य-पुत्र है; न जाने, यह हिंदी में कैसे और कहाँ से आ गया।'[2] इतना ही नहीं पंत ने निराला के दो पद्यांशों (एक मुक्त छन्द का और द्वितीय स्वच्छंद छन्द का) को उद्धृत कर यह उद्घोषित किया कि 'पहले छन्द के चरण अक्षर मात्रिक राग की गति पर, दूसरे के ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक राग की गति पर चलते हैं। पहले छन्द में राग की एक धारा व्याप्त मिलती है, उसका स्वर भंग नहीं होता। × × पहले छन्द का राग हिन्दी के उच्चारण संगीत के अनुकूल नहीं, दूसरे का अनुकूल है।'[3] निष्कर्षतः पंत की दृष्टि में मुक्त या स्वच्छन्द छन्द के लिए कवित्त सर्वथा अनुपयुक्त है। पर कालांतर में इनका

१. परिमल : भूमिका, पृ० १४
२. पल्लव : प्रवेश, पृ० ३८
३. वही, पृ० ५२

यह विचार कदाचित् परिवर्त्तित हो गया और इन्होंने कवित्त के लयाधार पर चलने वाले मुक्त छन्द का भी प्रयोय किया। यथा---

कहो,
शुभ्र कुँई-से उरोज खोल
दुग्ध स्नात चाँदनी
चाँद के कटोरे में
सुधा पीती रहे,—
रात
काले कुंतलों में
देह लपेटे
गुहा गर्भ में
सोती रहे।
दिन रात
मेरी भ्रू-भंगिमाएँ नही
तो क्या है ?

—कला और बूढ़ा चाँद : एकमेव

'कला और बूढ़ा चाँद' की सारी कविताएँ मुक्त छंद में निबद्ध हैं। अन्यत्र इस छंद की प्राप्ति नहीं होती।

मुक्त छंद का प्रयोग प्रसाद, निराला और पंत तीनों ने किया है। महादेवी में यह नहीं मिलता।

छन्दोनिरूपण के वाद अव पंत की छंदःप्रयोग-प्रवृत्ति पर भी एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। छायावाद की छंदःक्रांति के अंदर जिन तत्त्वों की ओर प्रथम अध्याय में निर्देश किया गया है, वे सारे तत्त्व पंत के काव्य में वहुत स्पष्टता के साथ देखे जा सकते हैं। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न छायावाद के इस कवि ने मैथिलीशरण के काव्यों से अनुप्राणित होते हुए भी[1] उनके प्रिय छन्द हरिगीतिका और गीतिका (गीतिका की केवल एक पंक्ति स्वच्छंद छंद में मिलती है) का प्रयोग अपने संपूर्ण

१. शैशव से ही रहा आप के प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीति वश चपल अनुकरण।
—स्वर्णकिरण : भक्तिप्राण श्री मैथिलीशरण जी गुप्त, पृ०। ३।

काव्य में कहीं नहीं किया। प्रसाद और महादेवी ने इन दोनों छन्दों को अपने काव्य-जीवन के प्रारम्भ में ही अपनाया। निराला ने यद्यपि गीतिका को बाद में अपनाया, पर इसका प्रयोग वे करीब अंत तक करते रहे, और 'आराधना' का एक गीत आद्योपांत हरिगीतिका में निबद्ध किया। पूर्वयुग के प्रचलित छन्द कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि पंत के काव्य में एकदम नहीं मिलते। प्रसाद ने इन सभी छन्दों का प्रयोग किया है। महादेवी में कवित्त, छप्पय, दोहा और सोरठा तो नहीं मिलते, पर दो पद्य सवैये में निबद्ध उपलब्ध होते हैं। निराला ने सवैया, दोहा और सोरठा तो नहीं लिखे, पर छप्पय और कवित्त के रूप में मदनहरण घनाक्षरी का प्रयोग अवश्य किया। द्विवेदी-युग में प्रचलित उर्दू छन्दों में प्रसाद और निराला ने कई कविताएँ लिखीं, पर पंत और महादेवी ने उर्दू बहरों का प्रयोग बिलकुल नहीं किया। महादेवी ने कम-से-कम उर्दू से आए विजात और विधाता को एक पद्य में तो स्थान दिया, पर पंत ने ऐसे छन्दों में एक पीयूषवर्षी में ही रचना की। (विजात और सुमेरु की क्रमशः चार और एक पंक्ति स्वच्छन्द छन्द में अनायास टपक पड़ी है।) इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युग के प्रचलित छन्दों में जितने का त्याग पंत ने किया, उतना अन्य किसी छायावादी ने नहीं। पर द्विवेदी-काल तक जीती चली आती हुई पद-शैली के आकर्षण से कोई छायावादी कवि बच नहीं सका। प्रसाद ने अनेक पद्यों की रचना पद-शैली में की। निराला ने तीन (गीतिका—गीत २२,४३,५६) महादेवी ने एक (नीरजा : गीत ५१) और पंत ने छह (वीणा : पद्य २५,५५; ज्योत्स्ना : पृ० १००; युगवाणी : बंद तुम्हारे द्वार, मधु के स्वप्न; स्वर्णकिरण-सम्मोहन) पदों की रचना कर सरहपा से चली आती हुई पद-परंपरा को अक्षुण्ण रक्खा। द्विवेदी-युग में धड़ल्ले से लिखे जाने वाले वर्णवृत्त का प्रसाद ने तो शुद्ध गणात्मक रूप में प्रयोग किया; पर निराला, पंत और महादेवी में ;जो दो-चार वर्णवृत्त मिलते हैं; उन्होंने गण-बंधन तोड़ कर मात्रिक रूप धारण कर लिया है।

निराला की तरह पंत ने भी अपनी प्रथम पुस्तक 'वीणा' में कुछ को छोड़ कर (उत्सर्ग, पद्य ८,१०,११,१४,१६,२५,४६,५५) सारी कविताएँ कई छन्दों के मेल से बने गीतों के रूप में लिखीं। इसी पुस्तक की एक कविता (पद्य ५६) में स्वच्छंद छन्द का प्रयोग कर शास्त्रीय नियम का उल्लंघन किया। इसीलिए निराला की तरह पन्त का काव्य भी द्विवेदीयुगीन आलोचकों की

आँखों की किरकिरी बन गया।[1] पर स्वरूप की दृष्टि से इस पुस्तक में चाहे जो नवीनता हो, निराला के 'परिमल' के समान इसमें किसी नए छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। यों तो इसमें द्विवेदी-युग के कई प्रचलित छन्द प्राप्त होते है, पर ताटंक और वीर छन्द का विशेष प्रयोग हुआ है। ताटंक और वीर को 'पल्लव' में भी काफी सम्मान मिला, पर इस ग्रंथ में छोटे छन्द भी (विशेपतः तांडव, गोपी, शृंगार, चौपई) कवि के विशेप प्रेमभाजन बने। यहीं कुछ नए छन्द भी दिखलाई पड़े। इसका क्रम आगे भी थोड़ा-बहुत चलता रहा। 'गुंजन' में प्रायः छोटे-छोटे छन्दों का ही प्रयोग हुआ है, जिनमें सखी, शृंगार, पद्धरि और पदपादाकुलक मुख्य है। ये छन्द हैं तो पुराने, पर छायावाद-युग में इनका प्रयोग विपुल परिमाण में हुआ। 'युगांत' से पन्त की भाव-धारा परिवर्त्तित हुई, तो छन्द में भी किंचित् परिवर्त्तन हो गया। ताटंक और वीर एक प्रकार से अपदस्थ हो गए और उनकी जगह पर सार तथा रोला ने आसन जमाया। लम्बे छन्दों में समानसवैया आकर डट गया और सखी, शृंगार, गोपी आदि छोटे छन्द भाग खड़े हुए। छोटे छन्दों में पदपादाकुलक और चौपाई की ही तूती बोलती रही। लीला की लीला भी नाटकों मे दिखलाई पड़ती रही। 'लोकायतन' में सखी और शृंगार फिर एक बार अपनाए गए, और हंसगति एवं माली—इन दो उपेक्षित छन्दों को विपुल सम्मान दिया गया। इधर पन्त स्वच्छंद छन्द की ओर विशेप रूप से उन्मुख हैं। इधर के प्रकाशित ग्रंथों में अधिक कविताएँ स्वच्छंद छंद में ही लिखी गई हैं। 'कला और बूढ़ा चाँद' में मुक्त छंद की रचना कर कवित्त के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसके ऊपर हिंदी का औरस जात पुत्र नहीं होने का अपने द्वारा लगाए कलंक का इन्होंने एक प्रकार से मार्जन कर दिया है।

छंदःप्रयोग-प्रवृत्ति के बाद अब पंत के छंदःप्रयोग-कौशल पर भी दृष्टि-निक्षेप कर लेना चाहिए। अन्य छायावादियो की तरह इनके काव्य में भी गति-भंग के सभी प्रकार प्राप्त होते हैं। यथा——

---

१. 'वीणा' नामक अपने इस दुधमुँहे प्रयास को हिंदी संसार के उदभट समालोचकों की छिद्रान्वेषी मूषक दृष्टि के सम्मुख रखने में मुझे संकोच से अधिक आह्लाद ही हो रहा है। × × मेरे अभिमानी कवि ने निर्भयता का कवच पहन कर मुझे उनकी लम्बी चोंच के लिए 'शोरवा' तैयार करने से रोक दिया।
——वीणा : विज्ञापन

(१) पाद में मात्रा की न्यूनता—

(क) विश्व-विजयी-प्रेम ! औ' भीलता ।—ग्रंथि, पृ० १०

पीयूषवर्षी में लिखित उक्त पंक्ति में दो मात्राओं की कमी स्पष्ट है ।

(ख) आशीर्वाद सी झुकी स्वर्ग की भू पर ।—ज्योत्स्ना. पृ० २८

(ग) नव ऊषा आशीर्वाद सी

उतर रही वह, लो, अवलोक ।— ,, पृ० १०५

'ख' और 'ग' दोनों में 'आशीर्वाद' का उच्चारण अष्ट-मात्रिक (आशीर-वाद) के रूप में करना पड़ता है; जबकि इसमें सात ही मात्राएँ हैं । 'युगांतर' (श्रद्धा के फूल—३) की निम्न पंक्ति के 'आशीर्वाद' की भी यही दशा है—

बापू के आशीर्वाद सा ही : अंतस्तल ।

(घ) मोह-रात्रि रात्रिचर ।—ज्योत्स्ना : पृ० ६८

लीला में लिखित उक्त पंक्ति में ११ ही मात्राएँ हैं । 'यहाँ 'रात्रि-चर' की जगह 'रजनीचर' होना चाहिए ।

(ङ) गृह गृह में कलह, खेत में कलह, कलह है नग में ।

—ग्राम्या : ग्रामचित्र ।

सार-निबद्ध इस पंक्ति में दो मात्राओं की न्यूनता है । यहाँ आदि में 'है' चाहिए । संभव है, यह मुद्रण की त्रुटि हो ।

पाद में मात्राधिक्य

अदृश्य, अस्पृश्य, अजात ।—गुंजन : पद्य ३६

तांडव की उक्त पंक्ति में १२ की जगह १३ मात्राएँ हैं । साथ ही यह पंक्ति शब्द-संस्थापन-व्यतिक्रम दोष से भी पीड़ित है । तांडव का प्रारंभ त्रिकल से होता है । यहाँ चौकल (जगण) से प्रारंभ होने के कारण एक मात्रा अधिक हो गई है । प्रसाद और निराला में मात्राधिक्य से पीड़ित कई पंक्तियाँ हैं । पंत के काव्य में ऐसी उक्त पंक्ति ही मिलती है ।

(२) शब्द-संस्थापन में व्यतिक्रम—

(क) देश की धूलि से भरा ताल ।—वीणा : पद्य ५३

(ख) जटिल तरु-जाल हैं किसी ओर ।—पल्लव : उच्छ्वास, पृ० ७

(ग) टूट जा यहीं यह हृदय-हार ।— ,, ,, पृ० १५

उक्त तीनों पंक्तियों के अंत में दो त्रिकल होने से शृंगार की वांछित लय प्राप्त नहीं होती । उत्तरार्द्ध में पद्धरि की-सी लय प्रतीत होती है ।

(घ) अतृप्त, अकथ, वियोग-सी दीन ।—वीणा, पद्य ५४

श्रृंगार का प्रारंभ त्रिकल से होता है। यहाँ चौकल से प्रारंभ होने के कारण लय प्रतिहत हो गई है।

(ङ) मेरे अधरों पर वह माँ के दूध से धुली मृदु मुसकान।

—पल्लव : वालापन

(च) एक ज्योति के पाश में बँधे भगिनि भ्रात से भू-स्वर्लोक।

—ज्योत्स्ना, पृ० १०५

रेखांकित वाक्यांशों में विषम के बाद सम आ जाने से वीर छंद का सम-प्रवाह टूट गया है। ऐसी पंक्तियाँ पंत के प्रारंभिक काव्यों में तो बहुत कम मिलती हैं। संभवतः उक्त दो पंक्तियाँ (ङ, च) ही होंगी। पर उत्तरकालीन काव्यों में (युगांतर-युगवाणी से प्रारंभ हो कर अब तक) तो ऐसी पंक्तियों की भरमार है। उदाहरणार्थ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

नृत्य परा अप्सरा सी चपल, ज्योति ग्रहों से।

—युगपथ : पृ० १०७

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान।

—युगवाणी, वापू

तट पर वगुलों सी वृद्धाएँ, विधवाएँ जप ध्यान में मगन।

—ग्राम्या : संध्या के वाद

विधि ने उनकी बुद्धि दी पलट।

—स्वर्णकिरण : अशोक वन,१२

जग जीवन के नव स्वप्नों की ज्योति वृष्टि में स्नान कर अमर

—स्वर्णकिरण : सम्मोहन

ऐसी पंक्तियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं, जिनके अंत में दो त्रिकल रख कर चौपाई का पाद-संगठन (विपम विपम सम विपम विपम सम) विकृत कर दिया गया है। यथा—

गंध-व्यजन पुलकित मलय पवन।—स्वर्णकिरण : अशोकवन, ५
होना था मन से उसे विलग।— ,, ,, ६
प्राणों को कर लालसा शिथिल।—उत्तरा : प्रतीक्षा

ऐसी अस्तव्यस्त पंक्तियों के पीछे कवि का आकस्मिक स्खलन नहीं, सचेतन प्रयास है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित किया है—'स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि में मैंने यत्र-तत्र छंदों की सम-विषम गति की एक स्वरता को वदलने

की दिशा में भी कुछ प्रयोग किए हैं। जिससे ह्रस्व दीर्घ मात्रिक छंदों की गति में अधिक वैचित्र्य तथा शक्ति आ जाती है। × × × इस युग में जब हम ह्रस्व दीर्घ मात्रिक के पाश से मुक्त होकर अक्षर मात्रिक तथा गद्यवत् मुक्त छंद लिखने में अधिक सौकर्य अनुभव करते हैं, मेरी दृष्टि में, ह्रस्व दीर्घ मात्रिक में यति को मानते हुए सम-विषम की गति में इधर-उधर परिवर्त्तन कर देना कविता पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होगा, बल्कि उससे ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक में स्वर पात का सौंदर्य आ जाता है।'[1] पंत में मनमानेपन की यह प्रवृत्ति प्रारंभ से ही है। प्रारंभिक काव्यों के व्याकरण-गत नियमोल्लंघन की रक्षा यदि इन्होंने भावुकता की कवच के सहारे की, तो उत्तरवर्त्ती काव्यों की छंदः त्रुटियों को तर्क की ढाल से बचाने का प्रयत्न किया।

(२) यति-भंग-दोष

(क) उदित हुई थी तुम अनंत यौ/वन में चिर अम्लान।
— गुंजन : अप्सरा

(ख) निखिल व्यक्त अव्यक्त सकल सी/मा असीम लय हुए विमोहित।
—युगपथ : श्रद्धांजलि, पृ० १३०

(ग) कोमलतम वन निखर रहा लग/ता जग अखिल अशोक।
—युगवाणी : गंगा का प्रभात

(घ) माता पिता, बंधु बांधव परि/जन, पुरजन, भू, गोधन।
—ग्राम्या : ग्रामदृष्टि

(ङ) आओ, सोचें द्विपद जीव कै/से बन सकता मानव।
—स्वर्णकिरण : इंद्रधनुष, पृ० १७

(च) इस प्रकार काटो बंधन, सं/न्यासी रहो अबंध।
—स्वर्णधूलि : संन्यासी का गीत, १३३

पंत के उत्तरकालीन काव्यों में ऐसी पंक्तियाँ ढेर-की-ढेर मिलती हैं। नमूने के रूप में ही कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं। यदि ऐसी पंक्तियाँ मनोहारी विविधता के निदर्शन मानी जायँ, तो निम्न पंक्तियों में यति-दोष कौन स्वीकार नहीं करेगा ?

(क) कहते 'शुभ का शुभ औ अशुभ अ/शुभ का फल' धीमान्।
—स्वर्णधूलि : संन्यासी का गीत

१, उत्तरा, प्रस्तावना, पृ० २५

(ख) गर्जन मंथित नभ से बरस ध/रा पर शतमुख जीवन ।

—स्वर्णकिरण : इंद्रधनुष

(ग) युग युग का इतिहास सभ्यता/ओं का इसमें संचित ।

—ग्राम्या : ग्राम

(घ) फडक रहे अवयव-आवेश वि/वश मुद्राएँ अंकित ।

—ग्राम्या : कहारों का रुद्र नृत्य

(ङ) हाड़-माँस का आज बनाओ/गे तुम मनुज समाज ।

—युगवाणी : भौतिकवादियों के प्रति

(च) मृदु त्वच, सौंद/र्य प्ररोह अंग ।

(छ) दृढ़ श्रद्धा स/त्य प्रेम अक्षय ।

—युगांत : मानव

(ज) निज वृन्त पर उ/से खिलना था ।

—गुंजन : पद्य १८

ऐसी पंक्तियो की भी पंत-काव्य में कमी नहीं है ।

(४) पाद का अश्रव्य होना

(क) निर्भीक बनो, सा/हसी, शक्त ।

—युगांत, पद्य १०

(ख) तू जड अथवा चे/तना-प्राण ।
क्या जड़ता चे/तनता समान । } ,, ,, १७

(ग) उदयाचल पर दी/खते प्रात । —,, शुक्र

यहाँ पद्धरि की वांछित लय के लिए 'साहसी' आदि शब्दों को खंडित कर पाठ करना पड़ता है ।

(घ) परीक्षा का कठोर ले व्याज ।

—वीणा : पद्य ३५

(ङ) शिशिर का-सा समीर संचार ।

—पल्लव : आँसू, पृ० २५

(च) निर्निमेष विलोकता है विश्व को ।

—ग्रंथि, पृ० ४४

उक्त सभी पंक्तियों में रेखांकित जगण छंद की अप्रतिहत लय में बाधा उपस्थित कर पाठ को अश्रव्य बना देता है । कवि ने ऐसा प्रयोग भी जान-बूझ

कर कुछ सिद्धांत-वश ही किया है।[1] इसी से उसके काव्य में ऐसे दुष्प्रयोगों की भरमार है। प्राचीन काल में कहा गया था—अपि माषं मषं कुर्यान्छंदोभंगं न कारयेत्। आज जब कवि का सिद्धांत हो गया है—चेत्पश्येत् शक्तिवैचित्र्यं छंदोभंगान्न जिह्मियात्, तब क्या कहा जाय?

पंत की भाव-धारा ज्यों-ज्यों परिवर्त्तित होती गई, छंदों में भी त्यों-त्यों परिवर्त्तन होता गया। 'वीणा' के गीतों की रचना में कवि ने छोटे छंदों (हाकलि, चौपई, शृंगार आदि) के साथ ताटंक और वीर जैसे लंबे छंदों का सहारा लिया है। ताटंक और वीर 'वीणा' के प्रमुख छंद माने जा सकते हैं। 'पल्लव' की विवरणात्मक कविताओं (अनंग, स्वप्न, छाया, नक्षत्र, बादल, बालापन) की रचना तो ताटंक-वीर में हुई है, पर हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए अधिकतर छोटे छंद अपनाए गए हैं। 'उच्छ्वास' और 'आँसू' में रोला और सरसी जैसे लंबे छंदों की कुछ ही पंक्तियाँ हैं। परिवर्त्तन के रुद्र रूप को दिखलाने के लिए 'परिवर्त्तन' में रोला का प्रयोग अवश्य किया गया है; पर उसके सौम्य तथा मृदुल रूप के अंकन के लिए शृंगार और उससे बने छंद ही प्रयुक्त हुए है। शृंगार का अत्यधिक प्रयोग उसे 'पल्लव' का मुख्य छंद सिद्ध करता है। वियोग की करुण अभिव्यक्ति के लिए 'ग्रन्थि' में पीयूषवर्षी का चयन छंदों की भावानुकूलता से कवि का पूर्ण परिचय उद्घोषित करता है।[2] अपने हृदय की 'उन्मन गुंजन' की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने छोटे छंदों—विशेषतः शृंगार और सखी को उपयुक्त समझा है। 'गुंजन' का प्रमुख छंद सखी है, जिसमें १८ कविताएँ निबद्ध हैं। 'ज्योत्स्ना' के गीतों में छोटे छंदों का प्रयोग तो हुआ ही है, नाटकोचित वर्णन-विस्तार के लिए राधिका, मत्तसवैया,

---

१. 'सुवर्णकिरणों का झरता निर्झर' में 'सुवर्ण' के स्थान पर 'स्वर्णिम' कर देने से गति में संगति तो आ जाती है, पर सुवर्णकिरणों का प्रकाश मंद पड़ जाता है। × × मैंने सम विषम गति से शब्द शक्ति को ही अधिक महत्त्व देना उचित समझा है।

—उत्तरा : प्रस्तावना, पृ० २५

२. हिंदी के प्रचलित छन्दों में पीयूषवर्षण, रूपमाला, सखी और प्लवंगम छंद करुण रस के लिए मुझे विशेष उपयुक्त लगते हैं। पीयूषवर्षण की ध्वनि से कैसी उदासीनता टपकती है?

—पल्लव : प्रवेश, पृ० ४६

सरसी तथा समानसवैया जैसे लम्बे छंद भी अपनाए गए हैं। 'युगांत' से पंत की भाव-धारा बदल गई और छोटे छंदों में पद्धरि-पदपादाकुलक और लम्बे छंदों में रोला, सार एवं समानसवैये ने इनके साहित्य पर आधिपत्य जमाया। 'लोकायतन' संस्कृत महाकाव्य की सर्गबंधात्मक शैली में लिखा गया है, जिसमें नियमानुसार सर्गान्त में तो छंद बदल ही दिया गया है, सर्गादि में भी सर्ग-भिन्न छंद का प्रयोग किया गया है। साथ ही भाव-संकोच तथा भाव-विस्तार के लिए क्रमशः छोटे और बड़े छंद प्रयोग में लाए गए है। यों तो स्वच्छंद छंद का प्रयोग 'वीणा' में ही मिलता है, 'पल्लव' की उच्छ्वास और आँसू कविताएँ स्वच्छंद छन्द में ही लिखी गई हैं, पर आज पंत अपने को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष रूप से स्वच्छंद छंद को ही अपनाए हुए है, जिसमें भाव के अनुरूप छोटी-बड़ी पंक्तियों को रखने की पूरी स्वच्छन्दता है।

शास्त्रोल्लिखित छन्दों के अतिरिक्त पंत के काव्य मे कुछ नूतन छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। जिनमें कुछ तो (पदपादांकुर, प्रदोप, शिखंडी आदि) प्राचीन काव्यों में भी मिलते है। कुछ प्रसाद और निराला में (शृंगाराभास, शृंगारकल्प आदि) प्राप्त होते है। समसामयिक होने के कारण यह कहना थोड़ा कठिन हो जाता है कि सब में पाये जाने वाले इन नूतन छन्दों में किसका किसने सर्वप्रथम प्रयोग किया है? फिर भी पंत के काव्य में पाए जाने वाले मधुभरित, विजातक, लीलाधिका, मधुमंजरी, मधुवन, रासामृत तथा चिदंबर सात ऐसे छन्द हैं, जो न तो किसी प्राचीन काव्य में मिलते है और न जिनका प्रयोग पंत के अतिरिक्त छायावादी-त्रय ने किया है। अतः ये छन्द पंत की नूतन सृष्टि निर्विवादतः माने जा सकते है।

छायावाद-युग मुख्यतः मात्रिक छन्दों का युग है। इस युग में जो भी वर्णवृत्त प्रयुक्त हुए है, वे अपने गण-बंधन को त्याग कर मात्रिक साँचे में ढल गए हैं। निराला और महादेवी की तरह पंत ने भी कुछ वर्णवृत्तो को मात्रिक लिबास पहनाया है और वे ही दो-चार वर्णवृत्त नाम मात्र को इनके काव्यो में मिलते हैं। नहीं तो, इनका सारा साहित्य मात्रिक छन्दों में ही निबद्ध है। ('कला और बूढ़ा चाँद' के मुक्त छन्द को छोड़कर) और इस दृष्टि से भी पंत छायावाद के प्रतिनिधि कवि सिद्ध होते है। प्रसाद के काव्य में जो वर्णवृत्त उपलब्ध होते है, वे अधिकांशतः छाया-युग के पहले के अवश्य है। पर 'विशाख' (वियोगिनी, वसंततिलका) 'चन्द्रगुप्त' (पंचचामर) और 'राज्यश्री' (दुर्मिल, सवैया) में कुछ गणात्मक वर्णवृत्त तथा 'झरना' (मनहरण, घनाक्षरी) में मुक्तक

वर्णिक भी मिलते हैं। यदि ये ग्रन्थ छाया-युग के माने जायँ ('झरना' तो निस्संदेह छाया-युग की रचना है) तो इतना तो निर्विवादतः सिद्ध हो जाता है कि प्रसाद का मोह वर्णिक छन्दों से एकदम नहीं टूटा था। महादेवी के सवैये में निबद्ध दो पद्यों से इस ओर उनकी प्रवृत्ति के होने का स्पष्ट आभास मिल जाता है। निराला ने अवश्य किसी वर्णवृत्त का प्रयोग गणबद्ध रूप में नहीं किया है, पर मुक्तक वर्णिक (अर्चना, मदनहरण, घनाक्षरी) को वे भी नहीं छोड़ सके। इस प्रकार छायावादियों में पन्त ही एक ऐसे कवि हैं, जिनके काव्य में एक भी वर्णिक छन्द—चाहे वह गणात्मक हो, या मुक्तक—नहीं पाया जाता।

हिंदी साहित्य में उर्दू बहरों में पद्य-रचना की परिपाटी भारतेन्दु-युग से ही प्रारंभ हो गई थी। द्विवेदी-युग में काव्य-भाषा के बदल जाने पर तद्युगीन कवियो का ध्यान उर्दू बहरों की ओर एक बार फिर बहुत जोर से गया। फलतः हरिऔध, भगवान 'दीन' प्रभृति कवियों ने अनेक कविताएँ उर्दू बहरों में रचीं। प्रसाद और द्विवेदी छाया-युग के संधि-स्थल पर खड़े थे। अतः उनके साहित्य में उर्दू बहरों में लिखित दो-चार पद्यों का मिलना आश्चर्य की बात नहीं। पर द्विवेदी-युग की कविता के प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न छायावाद के उन्नायक निराला भी उर्दू बहरों से अपने को पृथक् नहीं रख सके। प्रसाद ने तो उर्दू बहरों में दो-चार कविताएँ लिखकर ही संतोष किया, पर निराला ने अनेक कविताएँ रच कर जैसे उर्दू शायरों के साथ हाथ मिलाने की कोशिश की। इस उर्दू प्रभाव से पन्त और महादेवी दोनो बचे रहे। उर्दू से हिंदी में आए दिग-पाल, सुमेरु, पीयूषवर्षी का प्रयोग मैथिलीशरण तक ने किया। विजात और विधाता को महादेवी ने अपनाया, पर पीयूषवर्षी के अतिरिक्त पन्त ने किसी का प्रयोग नहीं किया। इस दृष्टि से भी पन्त ने छायावाद का प्रतिनिधित्व किया, यह निःसंकोच स्वीकार किया जाना चाहिए।

निराला की तरह पन्त के साहित्य में भी सर्वाधिक बड़े छन्द समानसवैया और मत्तसवैया हैं, और सब से छोटा चार मात्रापादी युग छन्द। यों तो इनके साहित्य में अनेक प्रकार के छंद मिलते हैं, पर इन्होंने सखी, शृंगार, चौपाई, पदपादाकुलक, माली, राधिका, रोला, सरसी, सार, ताटंक, वीर तथा समान-सवैये का अपेक्षाकृत विशेष प्रयोग किया है। हिंदी के मात्रिक छंद त्रिकल, चौकल, पंचकल, षट्कल, सप्तकल तथा अष्टकल के आधार पर चलते हैं। पंत

के साहित्य में यों तो इन सभी आधारों पर चलने वाले छन्द मिल जाते है, पर विशेष रूप से इन्होंने त्रिकल-पट्कल और चौकल-अष्टकल पर आधारित छन्दों का ही प्रयोग किया है। त्रिकलाधृत निधि, शिव, लीला, योग, कुंडल, हीर तथा सारस तो इनके काव्य में मिलते ही हैं; निराला की तरह त्रिकल के आधार पर चलने वाले एक नूतन छंद लीलाधिका का भी इन्होंने आविष्कार किया है। सप्तक पर आधृत यों तो अनेक छंद (सुगति, गंग, मालिका, सुलक्षण, मनोरम, मधुमालती, विजात, मधुमंजरी, उर्मिला, सुमेरु, पीयूषवर्षी, पीयूषराशि, पीयूषनिर्झर, रूपमाला, गीतिका, माधवमालती) इनके काव्य में प्राप्त होते हैं, पर मनोरम, पीयूषवर्षी, रूपमाला तथा माधवमालती के अतिरिक्त शेष सारे छन्दों की केवल दो-चार पंक्तियाँ स्वच्छन्द छन्द में ही मिलती हैं। इन चारों में भी पीयूषवर्षी का ही अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ है। माधवमालती में एक कविता और रूपमाला में केवल चार पद्य (१६ पंक्तियाँ) स्वतन्त्र रूप से निवद्ध हैं। मनोरम का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं हुआ। प्रगाथ और स्वच्छंद छंद में ही इसकी पंक्तियाँ मिलती हैं। इस प्रकार सप्तकाधृत छंदों का पन्त ने अत्यंत विरल प्रयोग किया है। जहाँ निराला ने पंचकाधृत कई छंदों का प्रयोग किया है, वहाँ पंत में केवल दो छोटे छंदों (ज्योति और विमोहा मात्रिक) की दो-चार पंक्तियाँ ही मिलती हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मैथिलीशरण की तरह (तोमर और दिगपाल पूर्णतया पंचक पर आधृत नहीं कहे जा सकते) पंत ने भी पंचकलाधृत छंदों का प्रयोग नही किया। स्वच्छंद छंद में भी पंत ने अधिकतर चौकल-अष्टक का आधार ग्रहण किया है। कुछ ही कविताएँ ऐसी हैं, जो सप्तक के आधार पर चलने वाले स्वच्छंद छन्द मे निवद्ध है। निराला ने त्रिकल-पट्कल आधृत स्वच्छंद छंद की भी रचना की है। पंत-काव्य में त्रिकल-पट्कल के आधार चलने वाले विभिन्न छदों के मेल से बना कोई आद्योपान्त स्वच्छंद छंद नहीं मिलता। पंचकल पर आधृत स्वच्छंद छंद जब निराला ने ही नही लिखा, तब पंत क्या लिखते?

अपने काव्य-जीवन के प्रारंभ में पंत ने छोटे छंदों में सखी, शृंगार और बड़े छंदों में ताटंक और वीर का बहुश: प्रयोग किया है। अपने महाकाव्य 'लोकायतन' में भी कवि इन्हें भूल नहीं सका। अतः ये इनके प्रिय छंद माने जा सकते हैं। कालान्तर में इनका विशेष झुकाव चौपाई, पद्धरि, पदपादाकुलक, रोला और सार की ओर दिखलाई पड़ता है। परिमाण की दृष्टि से इन्होंने इन छंदों में काफी रचना की है। इसलिए इनके उत्तर काल के प्रिय छंदों मे

इन छन्दों के नाम लिए जा सकते हैं। पर इन सब छन्दों में सबसे अधिक संभवतः इन्होंने रोला की रचना की है। 'गुंजन' के अतिरिक्त ऐसी कोई पुस्तक नहीं, जिसमें रोला प्रयुक्त नहीं हुआ हो। 'वीणा-पल्लव' से लेकर आज तक इनके द्वारा रोला सम्मान पाता रहा। इनके तीन नाटक—शिल्पी, सौवर्ण और रजतशिखर आद्योपांत (कुछ गीतों को छोड़कर) रोला में ही लिखे गए हैं। स्वच्छन्द छन्द में लिखित अधिकांश पद्य रोला के ही आधार पर चलते हैं। कुछ पद्य तो अधिकांशतः रोला में ही लिखा गया है, कुछ चरण ही अन्य छंदों के प्रयुक्त हुए हैं। अतः रोला इनका सर्वाधिक प्रिय छंद है, इसमें कोई संदेह नहीं। परिणाम की दृष्टि से रोला के बाद चौपाई का नम्बर आता है, और उसके बाद सार का। चौपाई का प्रयोग तो 'वीणा' से ही होता रहा, पर सार सर्वप्रथम 'युगांत' में प्रयुक्त हुआ। पर चौपाई के समान सार भी अंत तक कवि का प्रेम-भाजन बना रहा। अतः रोला के बाद चौपाई और सार भी इनके प्रिय छन्द कहलाने के अधिकारी है। इन तीनों के बाद माली भी इनके प्रिय छंदों में माना जा सकता है, जिसका प्रयोग कवि ने 'लोकायतन' में विपुल परिमाण में किया है।

सफलता की दृष्टि से देखें, तो पंत को सब से अधिक सफलता सखी, लीला और शृंगार की रचना में मिली है। इन तीनों में दो-चार स्थलों को छोड़कर कहीं अस्तव्यस्तता दिखलाई नहीं पड़ती। पद्धरि-पदपादाकुलक, निराला के विपरीत, प्रायः शुद्ध रूप में लिखे गए हैं। स्थल-विशेप पर कहीं-कहीं यति-भंग-दोप अवश्य खटकता है, पर निराला के समान इन्होंने त्रिकल से प्रारम्भ कर इनकी गति नहीं बिगाड़ी है। पीयूपवर्षी में भी कहीं-कहीं यति-भंग-दोप मिलता है, पर प्रवाह प्रतिहत नहीं हो पाया है। अतः इन तीनों छन्दों के प्रयोग में पंत विफल नहीं कहे जा सकते। निराला और प्रसाद के विपरीत इनका रोला भी, दो-चार स्थलों को छोड़ कर, प्रायः प्रवाह-पूर्ण है, यद्यपि इन्होंने ११-१३, ८-८-८, १२-१२ सब पर विश्राम दिया है। समप्रवाही चौपाई, रोला, सार आदि छन्दों में जहाँ शब्द की शक्ति और वैचित्र्य के चक्कर में पड़कर कवि ने सम-विपम पर ध्यान नहीं दिया है, वहीं गति टूटती प्रतीत होती है। अन्यथा सर्वत्र अप्रतिहत लय दिखलाई पड़ती है। शक्ति और वैचित्र्य के चक्कर में कवि 'युगांत'-काल से पड़ा है। इसीलिए यह दोप कवि की इधर की रचनाओं में पाया जाता है। 'वीणा-पल्लव'-काल के ताटंक और वीर छन्द

इस दोष से सर्वथा मुक्त हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'युगांत' के पूर्व तक पंत की कविता, मैथिलीशरण की तरह, छन्दोदृष्टि से बहुत शुद्ध है। बाद की कविता, विद्वानों की दृष्टि में, यदि कवित्व के उच्चासन से पतित हो गई, तो छन्दःशास्त्रियों की दृष्टि में बाद की छन्दोरचना भी बहुत कुछ स्खलित हो गई। फिर भी इतना तो कहा ही जायगा कि पंत प्रसाद और निराला के विपरीत छन्दः प्रयोग में विशेष जागरूक हैं।

२२, नवम्बर '७४]

महादेवी की छंदोयोजना

महादेवी वर्मा छायावाद के प्रधान स्तंभों में एक हैं। प्रसाद, निराला और पंत जब छायावाद-क्षेत्र में बहुत दूर तक बढ़ आए थे, तब महादेवी ने उसमें प्रवेश किया और अपनी काव्यगत विशिष्टता के कारण अपना एक स्थान बना लिया। महादेवी छायावाद के अंतर्गत प्रवाहित होने वाली रहस्यवादी काव्य-धारा की प्रमुख कवयित्री हैं। दो-चार कविताओं के अतिरिक्त इनकी सारी कविताएँ रहस्य से संबंधित हैं। कविता के अतिरिक्त इन्होंने छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य आदि विषयों पर विवेचनात्मक निबंध भी लिखे हैं, जो 'महादेवी के विवेचनात्मक गद्य' में संकलित हैं। इस प्रकार का विवेचनात्मक गद्य हम इनकी अनेक काव्य-पुस्तकों की भूमिका में भी पाते हैं। इस विवेचनात्मक गद्य के अतिरिक्त इन्होंने अनेक संस्मरण भी लिखे हैं, जिनका हिंदी साहित्य में अपना स्थान है। इस प्रकार महादेवी ने गद्य और पद्य दोनों की रचना कर हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में काफी योग दिया है। प्रस्तुत निबंध में इनके गद्य ग्रन्थ से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। अतः ऐसे ग्रन्थों का नामोल्लेख नहीं कर केवल उन पुस्तकों का उल्लेख किया जाता है; जिनकी रचना पद्य में हुई है। वे ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

(१) नीहार (२) रश्मि (३) नीरजा (४) सांध्यगीत (५) दीपशिखा (६) सप्तपर्णा (७) यामा (८) संधिनी (९) गीतपर्व (१०) हिमालय।

इन ग्रन्थों में 'यामा' प्रथम चार पुस्तकों का मात्र संकलन है। 'संधिनी' और 'गीतपर्व' में प्रथम पाँच पुस्तकों की ही चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं, केवल दो-चार कविताएँ नई हैं। 'हिमालय' एक संग्रह-ग्रन्थ है, जिसमें महादेवी की मौलिक और अनुवादित पाँच कविताओं के अतिरिक्त शेष कविताएँ हिमालय से संबंध रखने वाली अन्यान्य कवियों की हैं। सप्तपर्णा में ऋग्वेद, अथर्ववेद, वाल्मीकि, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति और जयदेव की कुछ कविताओं का पद्यानुवाद किया गया है। अतः मौलिक नहीं होते हुए भी यह हमारे काम की चीज है। इस प्रकार मुख्य रूप से इनके पद्य-ग्रंथ प्रथम छह ही हैं, जिनके

छन्दों का विवेचन इस निवंध का प्रतिपाद्य है। इन छह ग्रंथों तथा शेष ग्रंथों की नूतन कविताओं में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है, वे निम्नलिखित हैं—

मात्रिक

सुगति, अखंड, मधुभार, तिलकामात्रिक, दीप, ज्योति, अहीर, लीला, मालिका, महानुभाव, तांडव; पदपादांकुर, सखी, मधुमालती, मनोरम, सुलक्षण, विजात, गोपी, चौपई, शृंगार, चौपाई, पद्धरि, पदपादाकुलक, द्रुतविलंबित-मात्रिक, राम, उर्मिला, माली, पीयूषवर्षी, तमाल, योग, भ्रमरावलीमात्रिक, भुजंगप्रयातमात्रिक, मंजुतिलका, पीयूषनिर्झर, कंदमात्रिक, चांद्रायण, राधिका, रजनी, रूपमाला, रोला, शक्तिपूजा, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, विधाता, हरिगीतिका, सार, मधुगीता, माधवमालती, मरहट्ठामाधवी, ताटंक, वीर, समानसवैया, मत्तसवैया = ५४

वर्णिक

सवैया = १

इस प्रकार महादेवी के काव्य में ५४ प्रकार के छंद प्रयुक्त हुए हैं। जिनमें ८ (ज्योति, मधुभार, मालिका, महानुभाव, पदपादांकुर, राम, उर्मिला, माली और भ्रमरावलीमात्रिक) तो केवल छंदक में प्रयुक्त हुए हैं। शेष ४६ छंदों का प्रयोग स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में संपद में हुआ है।

आगे की पंक्तियों में प्रत्येक छन्द का विवरण उदाहरणसहित प्रस्तुत किया जाता है।

(१) सुगति (७ मा०)

दुःखमय सुख
सुखभरा दुख
× ×
भ्रांतिमय कण
भ्रांतिमय क्षण

—सांध्यगीत : पद्य १०, पृ० १९८*

उक्त गीत के अतिरिक्त सुगति का प्रयोग 'सांध्यगीत' के गीत १४ की टेक में (पंकजकली-द्वितीय सप्तक ऽ ऽ । ऽ) तथा 'दीपशिखा' के २०वें एवं ३२वें गीतों में हुआ है। तीनों जगह इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं, वरन् अन्य छन्दों के साथ मिश्र रूप में हुआ है।

* 'सांध्यगीत' की पृष्ठ-संख्या 'यामा' के अनुसार है।

(२) अखंड (८ मा०)

चौकी निद्रित,
रजनी अलसित,
× ×
दिशि का चंचल,
परिमल-अंचल।

—नीरजा : गीत ४३

इस छंद का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कहीं नही हुआ है। इसका मिश्रण 'नीरजा' के गीत ३० में पद-पादाकुलक-मत्तसवैये के साथ, ४३ में समानसवैये के साथ, 'सांध्यगीत' के गीत ३७ में सार के साथ और 'दीपशिखा' के गीत ३७ में पद्धरि-पादाकुलक के साथ हुआ है।

(३) मधुभार (८ मा०)

हे चिर महान।

—सांध्यगीत, ४२, पृ० २३२

मधुभार का प्रयोग केवल उक्त गीत के छंदक में हुआ है।

(४) तिलका मात्रिक (८ मा०)

(क) ओ विभावरी।

—नीरजा, गीत ३२

(ख) मैं अश्रु-तरल, मैं अश्रु-विरल।—दीपशिखा : गीत ३

तिलका मात्रिक का प्रयोग केवल उक्त गीतों की टेक में हुआ है।

(५) दीप (१० मा०)

चिर बंधु पथ आप
पगचाप संलाप
× ×
बादल रहे खेल
गा गीत अनमोल।

—दीपशिखा : गीत ४८

दीप का स्वतंत्र प्रयोग नहीं मिलता। उक्त गीत में मंजुतिलका के साथ इसके ६ चरण मिलते हैं।

(६) ज्योति (१० मा०)

जाग बेसुध जाग।

—नीरजा : गीत ५३

ज्योति का प्रयोग केवल उक्त छंदक में हुआ है।

(७) अहीर (११ मा०)

नव लतिका सा गात
पीते दृग जलजात !
× ×
बहता सुरभित वात
× ×
तम तुषार की रात।

—रश्मि : गीत, पृ० ४०

अहीर का स्वतंत्र प्रयोग महादेवी के काव्य में कहीं नहीं हुआ है। उक्त गीत में चौपाई की तीन-तीन पंक्तियों के बाद अहीर का उपरिलिखित एक-एक चरण प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'नीरजा' के सरसी-शृंगार में निबद्ध गीत ३९ में निम्नलिखित तीन पंक्तियाँ अहीर की मिलती हैं—

(क) मधु वेला है आज।
(ख) डर मत रे सुकुमार।
(ग) रीते कर ले कोप।

(८) लीला (१२ मा०)

प्रिय गया है लौट रात !
सजल धवल अलस चरण,
मूक मदिर मधुर करुण,
चाँदनी है अश्रु-स्नात।

—नीरजा : गीत २६

(रेखांकित वर्णों का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित)

लीला का स्वतंत्र प्रयोग 'नीरजा' के उक्त गीत के अतिरिक्त 'दीपशिखा' के गीत २१ में हुआ है। 'नीरजा' के गीत ३२ में इसके दो चरणों के साथ योग का एक चरण मिश्रित है।

(९) मालिका (१२ मा०)

रे पपीहे पी कहाँ ?

—सांध्यगीत : गीत ११, पृ० २००

आंसुओं के देश में।

—दीपशिखा : गीत २७

महादेवी के काव्य में मालिका का प्रयोग केवल उक्त दो छंदकों में हुआ है।

(१०) महानुभाव (१२ मा०)

आज सुनहली वेला।

—सांध्यगीत : गीत ३७, पृ० २२७

जग अपना भाता है।

—दीपशिखा : गीत ४७

महानुभाव का प्रयोग केवल उक्त दो छंदकों में हुआ है।

(११) तांडव (१२ मा०)

सजनि तेरे दृग बाल !

× ×

सरल तेरा मृदु हास।

× ×

सजनि वे पद सुकुमार।

× ×

मुकुर से तेरे प्राण।

—रश्मि : क्यों ? पृ० ६

इन चार चरणों के अतिरिक्त तांडव की एक पंक्ति—मुखर पिक हौले बोल—'नीरजा' के गीत १५ में भी मिलती है।

(१२) पदपादांकुर (१३ मा०)

अलि, अब सपने की बात।

—रश्मि : गीत, पृ० ४०

पथ देख बिता दी रैन,
मैं प्रिय पहचानी नहीं।

—नीरजा : गीत १६

महादेवी के सम्पूर्ण काव्य में पदपादांकुर का प्रयोग उक्त दो स्थलों पर केवल छन्दक में हुआ है। 'रश्मि' के उक्त गीत में चार अनुच्छेद हैं, जो चौपाई की तीन और अहीर की एक पंक्ति से गठित है। अहीर के चरणों की तुक दो छन्दकों से मिली हुई है, जिसमें उक्त छन्दक पदपादांकुर में लिखित है और दूसरा शृंगार में, जिसका अंत्यानुप्रास पदपादांकुर के चरण से मिला हुआ है।

'नीरजा' का उक्त छन्दक शक्तिपूजा छन्द में निवद्ध संपद का है। छंदक के साथ तुक-साम्य रखने वाले शक्तिपूजा के निम्न चरणों में मात्राधिक्य स्पष्टत: दीख पड़ता है, पर रेखांकित वर्णो का ह्रस्वोच्चारण करने से दोष दूर हो जाता है। यथा—

(क) आ प्रात बुझा गया कौन अपरिचित जानी नहीं।
(ख) आया प्रिय पथ से प्रात सुनाई कहानी नहीं।
(ग) फिर आई मनाने साँझ मैं वेसुध मानी नहीं।
(घ) वह ढुलक रही है याद नयन से पानी नहीं।
(ङ) हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि पथ की निश्वनी नहीं।

(१३) सखी (१४ मा०)

आलोक यहाँ लुटता है,
बुझ जाते है तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक-सा मन।

—नीहार : अभिमान

सूरदास-द्वारा प्रयुक्त सखी छंद है तो प्राचीन, पर छायावाद-युग में इसे बहुत सम्मान मिला। महादेवी ने अपने प्रारंभिक काव्य में इसका विपुल प्रयोग किया है। 'नीहार' की ६ (मेरा राज्य, अभिमान, स्वप्न, आना, निश्चय, अनुरोध, उत्तर, प्रतीक्षा, आँसू की माला) और 'रश्मि' की ५ (अतृप्ति, वे दिन, दुविधा, उलझन, मृत्यु से) कविताएँ सखी छन्द में ही लिखी गई है। इसके अतिरिक्त 'नीरजा' के गीत ३३, ४० और ५६ भी इसी में निवद्ध हैं। 'नीहार' का अनुरोध और 'नीरजा' के गीत ३३ और ४० में हाकलि छन्द भी माना जा सकता है। पर वस्तुतः इनमें सखी मानना ही समीचीन है। क्योंकि इनमें कोई ऐसी पंक्ति नहीं, जिनका प्रारंभ दो त्रिकलों से हुआ हो। कई कविताओं की टेक में भी इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

दीपशिखा—गीत १५—तू धूल-भरा जव आया
सप्तपर्णा—ज्योतिष्मती—आ रही उषा ज्योतिः स्मित

(१४) मधुमालती (१४ मा०)

मधु से भरा विधु पात्र है,
मद से उनींदी रात है।

—सांध्यगीत : गीत १५, पृ० २०४

मधुमालती का प्रयोग महादेवी ने केवल उक्त गीत में हरिगीतिका के साथ किया है। इसके अतिरिक्त तीन छंदक भी मधुमालती में निबद्ध हैं। यथा—

श्रृंगार कर ले री सजनि।—नीरजा : गीत ६
मत अरुण घूंघट खोल री।— ,, ,, ४५
री कुंज की शेफालिका।—सांध्यगीत, २०, पृ० २१०

(१५) मनोरम (१४ मा०)

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में
वह गया बँध लघु हृदय में;
अब विरह की रात को तू चिर मिलन का प्रात रे कह।
दुख अतिथि का धो चरणतल
विश्व रसमय कर रहा जल।
यह नहीं क्रंदन हठीले! सजल पावस मास रे कह।
—नीरजा : गीत ४७

महादेवी ने मनोरम का विपुल प्रयोग किया है, पर कहीं भी स्वतंत्र रूप से नहीं। उक्त गीत में छोटी पंक्तियाँ मनोरम की और बड़ी माधवमालती की हैं। 'कामायनी' में प्रसाद ने भी श्रद्धा के गीत की रचना इसी क्रम से की है। 'तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन' से ऊपर की माधवमालती की पंक्तियाँ सहज तुलनीय हैं। मनोरम का प्रयोग-स्थल निम्नलिखित हैं—

नीरजा—गीत ४५ (गीतिका के साथ)
,, —गीत ४७ (माधवमालती के साथ)
,, —गीत ४६ (रूपमाला (अंत ।।।) के साथ)
सांध्यगीत—गीत ३, ४, ८, ११, १६, १६, ३०, ३२ (सब माधवमालती के साथ)
,, —गीत १० (माधवमालती, सुगति)
,, —गीत १३ (माधवमालती, रजनी)
,, —गीत २० (गीतिका)
दीपशिखा—गीत १, २, १४, १६, २२, २३, २६, ३४, ४१ (सब माधवमालती के साथ)

दीपशिखा—गीत १७ (गीतिका)
,, —गीत २० (सुगति, रूपमाला)
,, —गीत ३० (माधवमालती, रूपमाला)
,, —गीत ३२ (सुगति, रजनी)

इस मिश्रित प्रयोग के अतिरिक्त मनोरम 'नीरजा' के गीत ७, २३, ३८, 'सांध्यगीत' के गीत २५ तथा 'दीपशिखा' के गीत ५, २५ के छंदकों में भी प्रयुक्त हुआ है।

(१६) सुलक्षण (१४ मा०)

उठता मचल सिंधु-अतीत,
लेकर सुप्त सुधि का ज्वार,
मेरे रोम में सुकुमार
उठते विश्व के दुख जाग।
—सांध्यगीत : ४४, पृ० २३४

उक्त गीत के अतिरिक्त 'दीपशिखा' के दो गीत (३१, ४३) भी सुलक्षण में निवद्ध हैं। इसका प्रयोग निम्न छंदकों में भी हुआ है—

जीवन विरह का जलजात।—नीरजा, ६
अलि वरदान मेरे नयन।— ,, ४६
मेरी है पहेली बात।—सांध्यगीत, २७, पृ० २१७
पागल रे शलभ अनजान।—दीपशिखा, ३६
जीवन के अजस्र प्रणाम।—संधिनी, ६५

'नीरजा' ४६ के छंदक में नगणांत रूपमाला से तुक मिलाने के लिए एक गुरु की जगह दो लघु (न य) रखने की स्वतंत्रता ली गई है।

(१७) विजात (१४ मा०)

धरा से व्योम का अंतर,
रहे हम स्पंदनों से भर,
निकट तृण नीड़ तेरा धूलि का आगार है मेरा।
—दीपशिखा, गीत ११

विजात का प्रयोग केवल उक्त गीत में विधाता छंद के साथ हुआ है। यहाँ छोटी पंक्तियाँ विजात की और बड़ी विधाता की है।

(१८) गोपी (१५ मा०)

शून्य नभ में तम का चुंबन,
जला देता असंख्य उडुगण;
× ×
विफल सपनों का हार पिघल
ढुलकते क्यों रहते प्रतिपल ?

—रश्मि : ?, पृ० ५

गोपी का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। शृंगार के साथ 'नीहार' की दो (मेरा जीवन, नीरव भाषण) तथा 'रश्मि' की तीन कविताओं (?, जीवन, रहस्य) में इसका मिश्रण हुआ है। निम्नांकित छंदक भी गोपी में ही निवद्ध हैं—

पुलकती आ वसंत-रजनी।—नीरजा, २
अनिल ने मधु-मदिरा पी ली।—सांध्यगीत, ३४, पृ० २२४
तिमिर में वे पदचिह्न मिले।— ,, ४५, पृ० २३५
तरल मोती से नयन भरे।—दीपशिखा, १०

(१९) चौपई (१५ मा०)

वे मंथर सी लोल हिलोर
फैला अपने अंचल छोर।

—नीहार : खोज।

महादेवी के संपूर्ण साहित्य में चौपई की केवल उक्त दो पंक्तियाँ ताटंक-वीर में निवद्ध उक्त कविता में मिलती हैं।

(२०) शृंगार (१६ मा०)

निशा की, धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधु मदिरा का मोल।

—नीहार : विसर्जन।

शृंगार का स्वतंत्र प्रयोग 'नीहार' की १८ (विसर्जन, कौन, उस पार, मेरी साध, तब, कहाँ, उनका प्यार, आँसू, मेरा एकांत, उनसे, सूना संदेश, विस्मृति, अनंत की ओर, स्मारक, दीप, वरदान, याद, फूल) 'रश्मि' की ५

(पहचान, उनसे, विनिमय, जब, क्यों) तथा 'सप्तपर्णा' की विराग-गीत कविताओं में हुआ है। गोपी के साथ इसके मिश्रण की चर्चा पीछे हो चुकी है। 'नीहार' की चाह कविता में शृंगार की दो-दो पंक्तियों के बाद सरसी की दो-दो पंक्तियाँ रक्खी गई हैं। शृंगार का प्रयोग छन्दक में भी हुआ है। यथा--

आज॰क्यों तेरी वीणा मौन।—नीरजा, ५

(२१) चौपाई (१६ मा॰)

सिंधु तरंगें तेरी अनुचर,
सुन्दर चरणों में पहनाती
ये रजताभ फेन के नूपुर;
पर उनको संतोष न होता।

—हिमालय : मातृवंदना।

चौपाई का स्वतंत्र प्रयोग उक्त कविता के अतिरिक्त 'सप्तपर्णा' के अग्नि-गान (२), तथा 'सांध्यगीत' के गीत २ में हुआ है। अन्यत्र इसका प्रयोग किसी अन्य छन्द के साथ हुआ है। प्रयोग-स्थल—

नीहार—सूनापन (वीर, समानसवैये के साथ)
रश्मि—गीत, पृ॰ ६ (सार के साथ)
,, —दुःख, निभृत मिलन (ताटंक के साथ)
,, —गीत, पृ॰ ४० (अहीर, शृंगार के साथ)
,, —उपालम्भ, स्मृति, क्रय (सरसी के साथ)
नीरजा—गीत २८ (सार के साथ)
,, —गीत ३५ (ताटंक के साथ)
,, —गीत २ (विष्णुपद के साथ)
,, —गीत ३, ४, १२, १४, १८, २०, ३१, ४२, ५२, ५७ (सब समानसवैये के साथ)
,, —गीत ५, ८ (सरसी के साथ)
सांध्यगीत—गीत १८ (सार के साथ)
,, —गीत ४५ (विष्णुपद के साथ)
,, —गीत १५, ३८ (समानसवैये के साथ)
,, —गीत २३ (मरहट्ठामाधवी के साथ)
दीपशिखा—गीत ८, ४७ (सार के साथ)

दीपशिखा—गीत १८, २८, ३३, ३८, ४५ (समानसवैया)

,, —गीत १० (मरहट्ठा माधवी)

,, —गीत १२ (सार, समानसवैया)

,, गीत १३ (रोला)

सप्तपर्णा—संदेश (विष्णुपद)

,, उषा, शरद, थेरगाथा (समानसवैया)

(२२) पद्धरि (१६ मा०)

किस सुधि वसंत का सुमन तीर,
कर गया मुग्ध मानस अधीर ?
वेदना गगन से रजत ओस,
चू-चू भरती मन-कंज-कोष ।

—रश्मि : सुधि

पद्धरि का स्वतंत्र प्रयोग केवल 'नीहार' की २ (फिर एक बार, जो तुम आ जाते एक बार) और 'रश्मि' की ३ (रश्मि, सुधि, समाधि से) कविताओं में हुआ है। इसका मिश्र प्रयोग निम्न स्थलों पर पाया जाता है—

नीरजा—गीत १, ११, २९, ३७, ४६, ५४ (पदपादाकुलक के साथ)

सांध्यगीत—गीत १, ७, २१, ३३, ४२ (पदपादाकुलक)

,, —गीत ६ (पदपादाकुलक-मत्तसवैया)

दीपशिखा—गीत २७ (पदपादाकुलक)

,, —गीत ३५ (पदपादाकुलक-मत्तसवैया)

,, —गीत ३७ (पदपादाकुलक, अखंड)

सप्तपर्णा—थेरगाथा (२), आभाकण (१), वसंत (२—पृ० १९२)

हिमालय—हे चिर महान (पदपादाकुलक)

गीतपर्व—गीत ८५ (पदपादाकुलक)

(२३) पदपादाकुलक (१६ मा०)

किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
है एक मुझे मधुमय विषमय,
मेरे पद छूते ही होते
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय ।

—सांध्यगीत ४३, पृ० २३३

पदपादाकुलक का स्वतंत्र प्रयोग केवल तीन गीतों (नीरजा-४४, सांध्यगीत-४४, दीपशिखा—४४) में हुआ है। पद्धरि के साथ इसके मिश्रण की चर्चा ऊपर हो चुकी है। उसके अतिरिक्त इसका जो मिश्रित प्रयोग मिलता है, वह निम्नलिखित है—

नीरजा—गीत २१,२२,४८ (मत्तसवैया)
" —गीत ३० (मत्तसवैया, अखंड)
सांध्यगीत—गीत ३६ (मत्तसवैया)
दीपशिखा—गीत २६, ४०, ५१ (मत्तसवैया)
" —गीत ३ (मधुभार)

(२४) द्रुतविलंवित मात्रिक (१६ मा०)

जलधि-मानस में नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग-व्योम में;
सजल श्यामल मंथर मूक-सा
तरल अश्रु-विनिर्मित गात ले।

—नीरजा : गीत १६

इस पद्य के तीन चरणों (प्रथम, तृतीय, चतुर्थ) में द्रुतविलंवित वर्णवृत्त की गण-व्यवस्था (न भ भ र) विलकुल ठीक है। द्वितीय चरण में रेखांकित 'रे' दो लघु के स्थान पर रक्खा गया है। अतः एक अक्षर घट गया है और गण-क्रम भी विगड़ गया है। इस प्रकार वर्णिक द्रुतविलंवित यहाँ मात्रिक बन गया। इसके छंदक 'घन वनूँ वर दो मुझे प्रिय' में पादांत 'य' को गुरु मानने पर भी १५ मात्राएँ होती हैं। वस्तुतः इस पंक्ति में अपेक्षित लय का अभाव है। यदि यह 'घन वनूँ वर दो मुझको प्रिय' हो जाय तो गण-क्रम का भी निर्वाह हो जाय और अपेक्षित लय भी आ जाय। डॉ० शुक्ल ने भुजंग-प्रयात और इंद्रवज्रा के मात्रिक रूप को क्रमशः भुजंगप्रयाता[1] और महेंद्रवज्रा[2] नाम दिए हैं। मेरी दृष्टि में ऐसा करना छंदों की संख्या में व्यर्थ वृद्धि करना है। मात्रिक वने हुए ऐसे वर्णवृत्त के आगे मात्रिक शब्द रख देने से पाठकों को वहुत वड़ी सुविधा हाथ लगेगी।

वर्णवृत्त के रूप में द्रुतविलंवित का प्रयोग प्रसाद के काव्य में उपलब्ध होता है।

---

१. + २. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७७, २७२

(२५) राम (१७ मा०)

पुजारी ! दीप कहीं सोता है।

—दीपशिखा : गीत ४५

मुझे प्रिय पथ अपना भाता है।

—दीपशिखा : गीत ४७

राम छन्द का प्रयोग केवल उक्त दो गीतों के छन्दकों में हुआ है।

(२६) उर्मिला (१७ मा०)

पूछता क्यों शेष कितनी रात ?

—दीपशिखा : गीत ४२

महादेवी के संपूर्ण साहित्य में उर्मिला का प्रयोग केवल उक्त छन्दक में हुआ है।

(२७) माली (१८ मा०)

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली।

—नीरजा : गीत ५२

महादेवी ने माली का प्रयोग केवल उक्त छन्दक में किया है।

(२८) पीयूषवर्षा (१९ मा०)

विश्व में वह कौन सीमाहीन है ?
हो न जिसका खोज सीमा में मिला।
क्या रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?

—रश्मि : प्रश्न

पीयूषवर्षा में केवल 'रश्मि' की दो कविताएँ (कौन है ? प्रश्न) निबद्ध हैं। इन कविताओं के अतिरिक्त इसका प्रयोग 'सांध्यगीत' के गीत ३० की छन्दक रूप में प्रयुक्त पाँच पंक्तियों में भी हुआ है। यथा—

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो/आदि।

(२९) तमाल (१९ मा०)

आज यज्ञ शाला का खोलो द्वारा।

× ×

करो वहीं एकत्र यज्ञसंभार।
× ×
करो हमारे हेतु मंगलाचार।
× ×
होता को हो प्राप्त दिव्य उपहार।
—सप्तपर्णा : अग्निगान (२)

तमाल का प्रयोग चौपाई में निबद्ध उक्त गीत के उक्त चार चरणों में ही हुआ है।

(३०) योग (२० मा०)

रश्मि तार बाँध मृदुल चिकुर-भार री।
× ×
मोतियों के सुमन कोष वार-वार री।
× ×
प्रिय की पदचाप-मदिर गा मलार री।
× ×
पहिन सुरभि का दुकूल वकुल हार री।
—नीरजा : गीत ३२

योग का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। उक्त गीत में लीला के साथ इसकी यही चार पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(३१) भ्रमरावली मात्रिक (२० मा०)

आषाढ़ मास का प्रथम दिवस आया।
—सप्तपर्णा : संदेश, पृ० १८३

प्रा० पैं० में एक वर्णवृत्त भ्रमरावली (२/१५४) का उल्लेख हुआ है, जिसके चरण का निर्माण ५ सगण से होता है। यथा—

तुअ देव दुरित्त गणा हरगा चरणा
जइ पावउ चंदकला भरणा सरणा।

वस्तुतः यह छन्द तोटक के अंत में एक सगण रखकर बना लिया गया है। तोटक की लय पदपादाकुलक से मिलती-जुलती है और पदपादाकुलक के अंत में चार मात्राएँ जोड़ कर उक्त पंक्ति बना ली गई है। अतः यह छन्द भ्रमरावली का मात्रिक रूप सहज ही कहा जा सकता है। महादेवी ने इसका प्रयोग,

बस, इसी एक पंक्ति में किया है। प्रसाद, निराला और पंत के काव्यों में तो यह उपलब्ध नहीं होता, पर गोपालसिंह 'नेपाली' ने अपनी पुस्तक 'नवीन' में कई कविताएँ (मैं प्रभात का पहला-पहला झोंका, मैं गायक हूँ स्वच्छन्द हिमांचल का, है दर्द दिया में बाती का जलना, उस पार कहीं बिजली चमकी होगी, दुखिया) इस छन्द में रची है। यथा—

अनुराग यहाँ विश्वास बना करता
पतझार यहाँ मधुमास बना करता
रण-मरण यहाँ उल्लास बना करता
बलिदान यहाँ इतिहास बना करता।

—मैं गायक हूँ स्वच्छन्द हिमांचल का।

(३२) भुजंगप्रयात मात्रिक (२० मा०)

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन।
अगरु धूप सी साँस सुधि गंध सुरभित,
बनी स्नेह लौ आरती चिर अकंपित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक जल-कण।

—दीपशिखा : गीत ६

'दीपशिखा' के उक्त गीत में इसका स्वतंत्र प्रयोग हुआ है और इसी पुस्तक के गीत ४६ में कंद छन्द के साथ मिश्र प्रयोग। महादेवी के समस्त काव्य में यह केवल गीतो में दिखलाई पड़ता है। प्रसाद और पन्त ने इसका प्रयोग नहीं किया है। निराला-काव्य में यह कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

(३३) मंजुतिलका (२० मा०)

दूरी क्षितिज की परिधि ही रही नाप,
हर पल मुझे छाँह हर साँस आवास।

× ×

फैला तरल मोतियों की अमरबेल,
पवि पात है व्योम का मुग्ध परिहास।

—दीपशिखा : गीत ४८

उक्त गीत की ऐसी सभी पंक्तियाँ ४ तगण के आधार पर निर्मित हुई हैं। डॉ० शुक्ल ने सारंग वृत्त (त त त त) के मात्रिक रूप को सारंग नाम देकर कहा है कि आजकल मंजुतिलका छंद (१२—८, अंत । ऽ।—भानु: छ० प्र०

पृ० ५७) सारंग के साथ अभिन्न हो गया है ।[1] मैं समझता हूँ सारंग के मात्रिक रूप को ही भानु ने मंजुतिलका नाम दिया है । अतः मंजुतिलका के रहते इसे सारंग कहना समीचीन नहीं । महादेवी ने केवल उक्त गीत में दीप छंद के साथ इसका प्रयोग किया है । प्रसाद और पंत में यह नहीं मिलता । निराला ने इसका प्रयोग कई स्थलों पर किया है ।

(३४) पीयूषनिर्झर (२१ मा०)

ले उपा ने किरण-अक्षत हास-रोली,
रात-अंकों से पराजय-रेख धोली ।
राग ने फिर साँस का संसार घेरा ।

—दीपशिखा : गीत ५०

इस छंद का प्रयोग महादेवी के काव्य में उक्त कविता के अतिरिक्त 'सप्तपर्णा' के वसंत (पृ० १५०) में भी हुआ है । 'दीपशिखा' के गीत २६ तथा ४१ के छंदक भी इसी छंद में निवद्ध हैं ।

(३५) कंदमात्रिक (२१ मा०)

चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर वात ।
× × ×
मुझे भेंटता हर पलक-पात में प्रात ।
× × ×
कहीं चिर विरह ने मिलन की नई वात ।
× × ×
लिया साध ने तोल अंगार-संघात
× × ×
खिले अग्नि-पथ में सजल मुक्ति जलजात

—दीपशिखा : गीत ४६

कंद मात्रिक का स्वतंत्र प्रयोग कहीं प्राप्त नहीं होता । केवल उक्त गीत में भुजंगप्रयात मात्रिक के साथ इसकी उक्त पांच पंक्तियां मिलती हैं । निराला में इसके तीन चरण प्राप्त होते हैं, पर प्रसाद और पंत में इसका पता नहीं ।

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० २७९

(३६) चांद्रायण (२१ मा०)

(प्रिय) मेरे गीले गीत बनेंगे आरती।
× ×
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी भारती।
× ×
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी पारती।
× ×
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती।

—सांध्यगीत : गीत २, पृ० १८९

चांद्रायण का प्रयोग और कहीं नहीं मिलता। केवल उक्त गीत में चौपाई के साथ इसकी उक्त चार पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। प्रथम पंक्ति में 'प्रिय' छंद से बाहर है।

(३७) राधिका (२२ मा०)

तारों से खारे जो विषाद से श्यामल
अपनी चितवन में छान इन्हें कर मधु जल,
फिर इन से रच कर एक घटा करुणा की,
कोई यह जलता व्योम आज छा आता।

—दीपशिखा : गीत २४

उक्त गीत के अतिरिक्त राधिका का प्रयोग 'दीपशिखा' के गीत १५ 'सप्तपर्णा' के 'ज्योतिष्मती' तथा 'गीतपर्व' के गीत ७९ में हुआ है।

(३८) रजनी (२३ मा०)

वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण कण में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में।

—नीरजा : गीत १०

महादेवी के काव्य में रजनी का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त गीत में हुआ है। 'दीपशिखा' के गीत ३२ में इसकी ७ पंक्तियाँ सुगति-मनोरम के साथ मिली हुई मिलती हैं। 'संधिनी' के गीत ६३ और 'गीतपर्व' के गीत ८०,८४, तथा ८६ के छंदकों में भी यह प्रयुक्त हुई है।

(३९) रूपमाला (२४ मा०)

पूछता क्या दीप है आलोक का आवास ?
सिंधु को कब खोजने लहरें उड़ी आकाश ?
धड़कनों से पूछता है क्या हृदय पहिचान ?
क्या कभी कलिका रही मकरंद से अनजान ?

—रश्मि : मेरा पता

उक्त पद्य के अतिरिक्त रूपमाला का स्वतंत्र प्रयोग निम्न स्थलों पर हुआ है—

नीरजा—गीत ९, ५३

दीपशिखा—गीत ४

सप्तपर्णा—रामकाव्य का जन्म, आभाकण (२), बुद्ध जन्म (१) वसंत (पृ० १९०) संगम, राम (१) भरत (प्रारंभिक ८ पंक्तियों के बाद) सरयू (अंतिम चार पंक्तियों को छोड़कर)

मिश्र प्रयोग के स्थल—

नीरजा—गीत ४९ (अंत । । ।, मनोरम के साथ)
सांध्यगीत—गीत २७ (माधवमालती के साथ)
दीपशिखा—गीत २० (सुगति, मनोरम)
,, —गीत ३० (मनोरम, माधवमालती)
,, —गीत ३६ (माधवमालती)
हिमालय—जयगान (पृ० ६४) (मनोरम)
संधिनी—६५ (माधवमालती)
गीतपर्व—८७ (माधवमालती)

(४०) रोला (२४ मा०)

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं।
हीरक सी वह याद बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किंतु खरा इसको है होना !
चल ज्वाला के देश जहाँ अंगारे ही हैं।

—सांध्यगीत, गीत ९, पृ० १९७

रोला के स्वतंत्र प्रयोग के निम्न स्थल हैं—

सांध्यगीत—गीत ९

दीपशिखा—गीत ६

सप्तपर्णा—बोध, प्रश्न, भू-वंदना, शक्ति स्तवन, गृह-प्रवेश, चयन (२-१०) दंडकारण्य (२) जागरण (अंतिम चार पंक्तियाँ) भरत-मिलन (प्रथम २८ पंक्तियों के बाद) सरयू (अंतिम चार पंक्तियाँ)

गीतपर्व—गीत ८२

मिश्र प्रयोग—

सप्तपर्णा—अभय (समानसवैये के साथ)

(४१) शक्तिपूजा (२४ मा०)

आर्या अरुणा आरूढ़ आ रही तिमिर पार,
गृह-गृह पहुँचाने ज्योतिर्धन का अतुल भार।
जेता संग्रामों की ऐश्वर्यो की रानी,
चेतन जग से पहले जागी यह कल्याणी।

—सप्तपर्णा : जागरण, पृ० ७७

शक्तिपूजा छंद का प्रयोग उक्त कविता के अतिरिक्त 'नीरजा' के गीत १६ में भी देखा जाता है। यथा—

धर कनक-थाल में मेघ सुनहला पाटल-सा,
कर बालारुण का कलश विहग रव मंगल सा।

(४२) गीतिका (२६ मा०)

स्निग्ध किरणें चंद्र की तुझको हँसाती थीं सदा,
रात तुझ पर वारती थी मोतियों की संपदा।
लोरियाँ गाकर मधुप निद्रा-विवश करते तुझे
यत्न माली का रहा आनंद से भरता तुझे।

—नीहार : मुर्झाया फूल

गीतिका का स्वतंत्र प्रयोग केवल उक्त कविता में हुआ है। इसका मिश्रण माधवमालती के साथ 'नीरजा' के गीत २३, ३६ और ५५ में प्राप्त होता है। मनोरम के साथ इसका जो मिश्रण 'नीरजा' (४५) 'सांध्यगीत' (२०) तथा 'दीपशिखा' (१७) में मिलता है, उसकी चर्चा मनोरम के प्रसंग में हो चुकी है।

(४३) विष्णुपद (२६ मा०)

इसको क्षण संताप भोर उसको भी बुझ जाना।

इसके झुलसे पंख धूम की उसके रेख रही,
इसमें वह उन्माद न उसमें ज्वाला शेप रही !
जग इसको चिर तृप्ति कहे या समझे पछताना ?

—सांध्यगीत : गीत ३६, पृ० २२६

विष्णुपद का स्वतंत्र प्रयोग केवल २ स्थलों पर (सांध्यगीत, ३४, ३६) हुआ है। इसके अतिरिक्त इसका मिश्रण चौपाई के साथ 'नीरजा' (गीत २) 'सांध्यगीत' (४५) 'दीपशिखा' (१०) तथा 'सप्तपर्णा' (संदेश) में भी हुआ है।

(४४) सरसी (२७ मा०)

तुम हो विधु के विम्व और मैं मुग्धा रश्मि अजान;
जिसे खींच लाते अस्थिर कर कौतूहल के वाण।
कलियों के मधु प्यालों से जो करती मदिरा पान,
झाँक, जला देती नीड़ों में दीपक-सी मुस्कान।

—रश्मि : मैं और तू

उक्त कविता के अतिरिक्त सरसी का स्वतंत्र प्रयोग निम्न स्थलों पर हुआ है—

रश्मि—जीवन-दीप, अंत
नीरजा—गीत ५०
सप्तपर्णा—अग्निगान (३), हेमंत, गीत (पृ० २१०)
सांध्यगीत—गीत ४० (शृंगार की एक पंक्ति छोड़कर) चौपाई, शृंगार आदि के साथ इसके मिश्रण की चर्चा पीछे की जा चुकी है।

(४५) विधाता (२८ मा०)

तुझे पथ स्वर्ण-रेखा, चित्रमय संचार है मेरा।
× ×
किरण तेरा मिलन, झंकार सा अभिसार है मेरा।
× ×
निकट तृण-नीड़ तेरा धूलि का आगार है मेरा।
× ×
सजा तू लहर सा खग, दीप सा शृंगार है मेरा।

—दीपशिखा : गीत ११

विधाता का स्वतंत्र प्रयोग कहीं नहीं मिलता। केवल उक्त गीत में विजात की दो-दो पंक्तियों के वाद इसकी एक-एक पंक्ति प्राप्त होती है।

(४६) हरिगीतिका (२८ मा०)

श्रृंगार कर ले री सजनि !
नव क्षीरनिधि की उर्मियों से रजत झीने मेघसित,
मृदु फेनमय मुक्तावली से तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियों का पहिन अवगुंठन अवनि।

—नीरजा : गीत ६

महादेवी ने हरिगीतिका का वहुत कम प्रयोग किया है। केवल तीन कविताओं (नीहार–स्मृति; नीरजा–६; सांध्यगीत–१४–मधुमालती के साथ) में इसका प्रयोग दिखलाई पड़ता है। उक्त गीत में टेक मधुमालती की है। शेष तीन पंक्तियाँ हरिगीतिका में निवद्ध है।

(४७) सार (२८ मा०)

फिर क्यों प्रिय मुझको अग जग का प्यासा कण-कण घेरे।
× × ×
उसको माँग रहे हँस रो कर कितने रात सवेरे।
× × ×
इस क्षण के हित मत्त समीरण करता शत-शत फेरे।
× × ×
सागर की लहरों-लहरों में करती प्यास वसेरे।

—नीरजा : गीत ५८

सार का महादेवी ने अत्यंत अल्प प्रयोग किया है, और स्वतंत्र रूप से तो कहीं किया ही नहीं। चौपाई के साथ इसके मिश्रण की चर्चा पीछे की जा चुकी है। उक्त गीत में भी चौपाई की दो-दो पंक्तियों के वाद सार की एक-एक पंक्ति प्रयुक्त हुई है।

(४८) मधुगीता (२८ मा०)

प्राणों में रही घिर घूमती चिर मूर्च्छना सुकुमार।
× ×
अभिनव मधुर उज्ज्वल स्वप्न शत शत राग के श्रृंगार।
× ×

मिटती लहरियों ने रच दिए कितने अमिट संसार।

× ×

घुल कर करुण लय में तरल विद्युत की बहे झंकार।

—दीपशिखा : गीत ४३

गीता (२६ मा०) के आदि में दो मात्राओ के योग से इस छन्द का निर्माण हुआ है। अतः इसे मधुगीता नाम दिया गया है। रूपमाला के आदि में ४ मात्राएँ जोड़ देने से भी यह बन जाता है। उक्त गीत में सुलक्षण की दो-दो पंक्तियों के बाद एक-एक पंक्ति मधुगीता की प्रयुक्त हुई है। इसकी प्रथम पंक्ति 'तुम्हारी बीन ही में बज रहे हैं बेसुरे सब तार' की 'तुम्हारी' में चार मात्राएँ माननी पड़ेंगी। प्रसाद, निराला और पंत में यह प्राप्त नहीं। संभवतः इसका आविष्कार महादेवी ने ही किया है।

(४९) माधवमालती (२८ मा०)

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी-सी
दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर;
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर,
आज है निःसीमता लघु प्राण की अनुगामिनी-सी

—सांध्यगीत : १२, पृ० २०१

महादेवी ने माधवमालती का स्वतंत्र और मिश्र प्रयोग विपुल परिमाण में किया है। स्वतंत्र प्रयोग के स्थल—

नीरजा—गीत ७

सांध्यगीत—गीत ५, १२, १७, २२, २४, २६, २८, २९; ३१, ४१

दीपशिखा—गीत ५, ७, १६, २५

सप्तपर्णा—चयन १, अजविलाप, उद्बोधन (पृ० १७०) (अंतिम समान-सवैये के छह चरण छोड़कर)

संधिनी—गीत ६३

गीतपर्व—८०, ८४, ८६

गीतिका, मनोरम, रूपमाला आदि के साथ इसके मिश्रण की चर्चा पीछे हो चुकी है।

(५०) मरहट्ठा माधवी (२९ मा०)

प्राण-रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री।

× ×

पथ विन अंत, पथिक छायामय, साथ कुहुकिनी रात री।
× ×
असमंजस में डूब गया आया हँसता जो प्रात री।
× ×
रोते मुझ पर मेघ आह रुँधे फिरता है वात री।
× ×
स्पंदन शब्द व्यथा की पाती दूत नयन-जलजात री।
—सांध्यगीत : गीत २३, पृ० २१३

भानु ने २६ मात्रापादी एक छन्द मरहट्ठा माधवी का उल्लेख किया है, जिसमें ११-८-१० पर विश्राम होता है, अंत में । ऽ रहता है।[1] डॉ० शुक्ल के अनुसार झूलना शैली (११-८-१०) में लिखे जाने वाले इस प्राचीन छन्द ने अब नया रूप धारण कर लिया है। इसके अंत में लघु-गुरु तो ज्यों-के-त्यों रहते हैं, पर यति केवल १६वीं मात्रा के वाद आती है।[2] पर इस छन्द का यह रूप नया नहीं। यह इसी रूप में सिद्धकवि सरहपा[3] तथा संस्कृत कवि जयदेव[4] में प्राप्त होता है। महादेवी के काव्य में इसका प्रयोग केवल उक्त गीत की उक्त पाँच पंक्तियों में हुआ है, जो चौपाई की दो-दो पंक्तियों के वाद रक्खी गई हैं। प्रसाद, निराला और पंत में तो यह प्राप्त नहीं, पर मैथिलीशरण ने इसका प्रयोग 'द्वापर' में किया है।

(५१) ताटंक (३० मा०)

मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू-लड़ियाँ देखो।
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो।
हँस देता नव इंद्रधनुप की स्मित में घन मिटता-मिटता,
रँग जाता है विश्व राग से निष्फल दिन ढलता-ढलता।
—नीरजा : गीत १७

ताटंक का स्वतंत्र प्रयोग केवल 'नीरजा' की तीन कविताओं में (गीत १७,२४ पद ५१) में हुआ है। मिश्र प्रयोग के स्थल निम्नलिखित हैं—

१. छंदःप्रभाकर, पृ० ७१
२. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३०१
३. दोहाकोश की भूमिका : सं० राहुल सांकृत्यायन
४. गीतगोविंद, सर्ग १२

नीहार—मिलन, अतिथि से, मिटने का खेल, संसार, अधिकार, निर्वाण (सब वीर के साथ) खोज (चौपई; वीर के साथ)

रश्मि—दुःख, निभृत मिलन (चौपाई के साथ) आशा, देखो, कभी (वीर के साथ)

नीरजा—गीत ३५ (चौपाई के साथ)

सप्तपर्णा—अग्निगान (१) तपोवन यात्रा (१,२) (वीर के साथ)

इस प्रकार ताटंक का प्रयोग महादेवी ने बहुत अधिक नहीं किया है।

(५२) वीर छन्द (३१ मा०)

बहती जिस नक्षत्र लोक में निद्रा के श्वासों से वात,
रजत रश्मियों के तारों पर बेसुध सी गाती थी रात।
अलसाती थीं लहरें पी कर मधुमिश्रित तारों की ओस,
भरती थी सपने गिन गिन कर मूक व्यथाएँ अपने कोष।

—नीहार : संदेह

वीर छन्द का स्वतंत्र प्रयोग 'नीहार' की पाँच (संदेह, समाधि के दीप से, मोल, अनोखी भूल, परिचय) और 'रश्मि' की एक कविता (आह्वान) में हुआ है। ताटंक के साथ इसके मिश्र प्रयोग की चर्चा ताटंक के प्रसंग में की जा चुकी है।

(५३) समानसवैया (३२ मा०)

मुसकाता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?
विद्युत के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता जलधर,
अपने मृदुमानस की ज्वाला गीतों में नहलाता सागर,
दिन निशि को, देती निशि दिन को कनक-रजत के मधु प्याले हैं?

—नीरजा : गीत ४१

समानसवैये का स्वतंत्र प्रयोग निम्न स्थलों पर हुआ है—

नीरजा—गीत २५, २७, ३४, ४१

दीपशिखा—गीत ३६

सप्तपर्णा—स्वस्ति, बुद्ध जन्म (२), रथयात्रा, हिमालय, प्रत्यागमन, ग्रीष्म, विदा, दंडकारण्य (१), राम (२), मंगलाचरण

संधिनी—गीत ६४

गीतपर्व—गीत ८१, ८३

अखंड, चौपाई, रोला आदि के साथ इसके मिश्र प्रयोग की चर्चा पीछे हो चुकी है। इस प्रकार महादेवी के काव्य में सार, ताटंक तथा वीर की अपेक्षा समानसवैये का अधिक प्रयोग मिलता है।

(५४) मत्तसवैया (३२ मा०)

तू भू के प्राणों का शतदल !
सित क्षीर-फेन हीरक-रज से जो हुए चाँदनी में निर्मित,
पारद की रेखाओं में चिर चाँदी के रंगों से चित्रित,
खुल रहे दलों पर दल झलमल !

× ×

युगव्यापी अनगिन जीवन के अर्चन से हिम-शृंगार किए,
पल पल विहसित क्षण क्षण विकसित बिन मुरझाए उपहार लिए
घेरे है तू नभ के पदतल !

—हिमालय : तू भू के प्राणों का शतदल।

मत्तसवैये का स्वतंत्र प्रयोग महादेवी ने नहीं किया। पदपादाकुलक की टेक वाले उक्त गीत में ही मत्तसवैये का स्वतंत्र प्रयोग देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'नीरजा' (२१, २२, ३०, ४८) 'सांध्यगीत' (६, ३६) तथा 'दीपशिखा' (२९, ३५, ४०, ५१) में पद्धरि-पदपादाकुलक की कुछ पंक्तियों के साथ मत्तसवैये की एक-एक पंक्ति प्रयुक्त हुई है, जिसकी चर्चा पद्धरि-पदपादाकुलक के प्रसंग में की जा चुकी है।

वर्णवृत्त

गण-व्यवस्था की पूरी पाबंदी के साथ महादेवी ने किसी वर्णवृत्त का प्रयोग नहीं किया। वर्णवृत्तों में एक सवैया छंद अवश्य मिलता है, जिसका प्रयोग इन्होंने 'रश्मि' की दो कविताओं) अलि से, पपीहे के प्रति) में किया है।

(५५) दुर्मिल सवैया (८ सगण)

जिसको अनुराग सा दान दिया,
उससे कण माँग लजाता नहीं;
अपनापन भूल समाधि लगा
यह पी का विहाग भुलाता नहीं।
नभ देख पयोधर श्याम घिरा
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?

वह कौन-सा पी है पपीहा तेरा
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं ?
—रश्मि : पपीहे के प्रति

इस प्रकार महादेवी का संपूर्ण साहित्य ५४ प्रकार के छंदों में निवद्ध है।

छंदोनिरूपण के वाद अव महादेवी के छंद:प्रयोग-कौशल पर भी थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक है। अन्य कवियों की तरह इनके काव्य में गति-भंग-दोष के सभी प्रकार प्राप्त हो जाते हैं। यथा—

(१) **पाद में मात्रा की न्यूनता**

(क) तेरे विना संसार में मानव-हृदय **स्मशान** है।
—नीहार : स्मृति

(ख) **ज्योत्स्ना** के रजत पारावार में।
—रश्मि : कौन है ?

(ग) स्मित तुम्हारी से छलक यह **ज्योत्स्ना** अम्लान।
—रश्मि : मेरा पता

(घ) सृष्टि के आदि में मौन।
—रश्मि : रहस्य

यहाँ प्रथम तीन पंक्तियों में एक-एक मात्रा कम है। तीनों रेखांकित शब्दों में चार-चार मात्राएँ हैं, जवकि लय के लिए इनका उच्चारण पंचमात्रिक (अस्मशान, ज्योतसना) के रूप में करना पड़ता है। 'घ' में तीन मात्राओं की कमी है। इसका पाठ होना चाहिए—सृष्टि के आदि काल में मौन ? संभव है, यह प्रेस की गलती हो।

पाद में मात्राधिक्य

अपनी कृतियों में आज अमरता पाने की वेला आती रे।
—गीतपर्व : गीत ८१

समानसवैये की उक्त पंक्ति में ३४ मात्राएँ हो गई हैं। 'अपनी' को 'निज' या 'कृतियों' को 'कृति' कर देने से पंक्ति दोप-मुक्त हो जाती है।

(२) **शब्द-संस्थापन में व्यतिक्रम**

(क) ज्योति वुझ गई रह गया दीप। —नीहार : उनका प्यार

यहाँ शृंगार के अंत में दो त्रिकल आ गए हैं, जिससे इसकी लय कुछ पद्धरि की-सी हो गई है। 'रह गया दीप' की जगह होना चाहिए 'गया रह दीप'।

(ख) शिथिल मधु-पवन, गिन गिन मधुकण
हरसिंगार झरते हैं झर-झर।

—नीरजा : गीत ३

समानसवैये की उक्त पंक्ति के प्रारंभ में विषम के बाद सम आ जाने से लय प्रतिहत हो गई है।

(ग) प्रतिबिंबित रोम-रोम तेरा। —नीरजा : गीत ४४

'रोम-रोम प्रतिबिंबित तेरा' में प्रवाह तो आ जाता है, पर पंक्ति पदपादाकुलक की न रह कर चौपाई की हो जाती है। पदपादाकुलक के लिए 'है रोम-रोम बिंबित तेरा' होना चाहिए।

(घ) एक ही पुलिन में जीवन-सरिता बाँधी।

—गीतपर्व : गीत ७६

राधिका छंद का प्रारंभ त्रिकल से होने के कारण अपेक्षित प्रवाह नहीं आ सका है।

(३) यति-भंग-दोष

(क) स्निग्ध किरणें चंद्र की तुझ/को हँसाती थी सदा।

—नीहार : मुझाया फूल

(ख) वे सूने से नयन, नहीं जिन/में बनते आँसू मोती।

—नीहार : अधिकार

(ग) उर्मियों में झूलता रा/केश का आभास।

—रश्मि : मेरा पता

(घ) क्षीण शिखा से तम में लिख बी/ती घड़ियों के नाम।

—रश्मि : अंत

(ङ) अश्रु की ही हाट बन आ/ती करुण बरसात।

—नीरजा : गीत ६

(च) राग लिए, मन खोज रहा को/लाहल में खोया खोया सा।

—सांध्यगीत : १५, पृ० २०५

(छ) फैलती आलोक की झं/कार मेरी स्नेह-गीली ।

—दीपशिखा : गीत ५

प्राचीन छंदःशास्त्रियों की दृष्टि में ऐसी पंक्तियों में यति-दोष स्पष्ट है । और महादेवी के काव्य में ऐसी पंक्तियाँ अनगिनत हैं । पर आधुनिक छंदःशास्त्री इन जैसी पंक्तियों में दोष नहीं मानते । उनकी दृष्टि में यति विषयक ऐसी अनियमितता (Irregularity) मनोहारी विविधता (Variation) के निदर्शन हैं ।[1] यदि ऐसी ही बात हो, तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि महादेवी का काव्य यति-दोष से सर्वथा मुक्त है । नीचे ऐसी पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं, जो यति-दोष से निर्विवादतः पीड़ित हैं । अवश्य ऐसी पंक्तियाँ बहुत नहीं हैं ।

(क) कूल भी हूँ कूल-हीन प्र/वाहिनी भी हूँ ।
दूर तुमसे हूँ अखंड सु/हागिनी भी हूँ ।
नाश भी हूँ मैं अनंत वि/कास का क्रम भी ।

—नीरजा : गीत १०

(ख) मर्मर की वंशी में गूँजे/गा मधु ऋतु का प्यार ।
'आज्ञा कौन' नीड़ तज पूछे/गा विहगों का रोर ।

—नीरजा : गीत १५

(ग) अलि-गुंजित मीलित पंक/ज नूपुर रुमझुन ले ।

—नीरजा : गीत १६

(घ) सुभग ! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गु/लाब ही सा आज ।

—नीरजा : गीत ५३

(ङ) धीर वट की दी न नीप अ/शोक मन-विश्राम की दी ।

—गीतपर्व : गीत ८६

(च) दे रही मेरी चिरंतन/ता क्षणों को साथ फेरे ।

—सांध्यगीत : २६, पृ० २१६

(छ) चाप से आहूत पहुचा/ने न पथ का अंत पाया ।

—संधिनी : गीत ६३

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २०८

(४) पाद का अश्रव्य होना

(क) दे रही मेरी चिरंतन/ता क्षणों के साथ फेरे ।

—सांध्यगीत, गीत २६, पृ० २१६

(ख) पथ विन अंत, पथिक छायामय, साथ कुहकि/नी रात री ।

—सांध्यगीत, गीत २३, पृ० २१३

यहाँ 'क' में माधवमालती की लय के लिए 'चिरंतनता' को तथा 'ख' में 'कुहकिनी' को विषम के बाद विषम के लिए दो खंडों में विभाजित कर पढ़ना पड़ता है ।

(क) तारों में प्रतिविंवित हो मुस्कायेंगी अनंत आँखें ।

—नीहार : मिटने का खेल

(ख) भर देती प्रभात का अंचल सौरभ से विन दाम ।

—रश्मि : मैं और तू

यहाँ 'भर प्रभात का अंचल देती' होने से लय ठीक हो जाती है ।

(ग) मिल दिन में असीम हो जाता जिसका लघु आकार ।

—रश्मि : मैं और तू

(घ) लघु उर के अनंत सौरभ से ।

—नीरजा : गीत १८

उक्त सभी पंक्तियों में रेखांकित जगण छंद की अप्रतिहत लय में वाधा उपस्थित कर पाठ को अश्रव्य वना देता है ।

महादेवी की इन सव प्रकार की छंद: त्रुटियों पर ध्यान रखते हुए तुलनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रसाद और निराला की अपेक्षा छंद:-प्रयोग में महादेवी अधिक सजग हैं । पंत और महादेवी के काव्य छन्दोदृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक निर्दोष हैं । पर जहाँ यह निर्दोषता विशेषत: पंत की प्रारंभिक कृतियों में है, वहाँ महादेवी की उत्तरवर्ती रचनाओं में । पंत की वाद की रचनाओं में शब्द-संस्थापन-विपर्यय से उत्पन्न दोष कवि के सचेतन प्रयास से आए हैं और महादेवी के पूर्ववर्त्ती काव्य में कवि-स्खलन के परिणाम-स्वरूप टपक पड़े हैं ।

छन्द: प्रयोग में कवि के द्वारा प्रयुक्त छन्दों की भावानुकूलता पर भी विचार किया जाता है । महादेवी ने कोई प्रवंध काव्य नहीं लिखा । अत: उसमें प्रयुक्त अनेक छन्दों के पीछे मनोवैज्ञानिकता का जो रहस्य रहता है, वह इनके काव्य में नहीं देखा जा सकता । इनकी रचना फुटकल पद्यों और गीतों

का संग्रह है, जो समय-समय पर उमड़ते हुए भावों की अभिव्यक्ति है। फुटकल पद्य एकविषयनिष्ठ होता है। अतः एक छन्द में उसका लिखा जाना रस-परिपाक में सहायक होता है। 'नीहार' और 'रश्मि' के अधिकांश पद्य एक ही छन्द में लिखे गए हैं। कुछ ही पद्य ऐसे हैं, जिनमें दो छन्दों का विनियोग है। पर जहाँ शृंगार-सरसी (चाह-नीहार) तथा ताटंक-चौपाई (निभृत मिलन-रश्मि) के मिश्रण में छोटे-बड़े भावों को समेटने का प्रयत्न है, वहाँ ताटंक-वीर तथा शृंगार-गोपी के मेल में केवल रचना-सौविध्य एवं कुछ अंश तक समरसता मिटाने का थोड़ा सचेतन प्रयास। गीत एकभावनिष्ठ होता है। संपूर्ण गीत में आत्माभिव्यक्ति की एक ही भाव-धारा प्रवाहित होती है। यह धारा कभी तो ऋजु तथा सहज गति से अग्रसर होती जाती है, कभी तरंगों को उछालती एवं बुद्बुदों को बनाती चलती है, कभी थोड़ा रुक जाती है और कभी जोर से आगे सरक जाती है। महादेवी ने भाव-धारा के इस बहुविध संचरण को अपने छन्दों की भंगिमा-द्वारा सम्यक् रूप से प्रकट किया है। कोई गीत तो एक ही छन्द में लिखा गया है, कोई दो-तीन छंदों के मिश्रण से निर्मित हुआ है, और किसी लंबे छन्द में निबद्ध गीत में छोटे छन्द के दो चरण ऐसे रक्खे गए हैं, जैसे भाव-धारा कुछ रुककर आगे के लंबे चरणों में फिर जोर से सरक गई हो। यदि क्षिप्रगामी भाव सरसी, ताटंक, समानसवैया आदि समप्रवाही छन्दों में अभिव्यक्त किया गया है, तो मन्दगामी के लिए सप्तकाधृत मनोरम, गीतिका, माधवमालती आदि छन्द चुने गए हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि महादेवी ने छन्दों के प्रयोग में भाव का बराबर ध्यान रक्खा है।

भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि लोग कभी-कभी नूतन छन्द भी गढ़ लिया करते हैं। महादेवी में नूतन छन्द के निर्माण की प्रवृत्ति नहीं दिखलाई पड़ती। इनका सारा काव्य शास्त्रोल्लिखित छन्दों में ही निबद्ध है। फिर भी दो छन्द ऐसे हैं, जो प्रथम-प्रथम महादेवी के काव्य में ही प्राप्त होते है। वे छन्द हैं—भ्रमरावली मात्रिक और मधुगीता। भ्रमरावली तो वर्णवृत्त भ्रमरा-वली का मात्रिक रूप है, पर मधुगीता इनकी अपनी सृष्टि है। भ्रमरावली के अतिरिक्त इन्होंने जिन दो वर्णवृत्तों को (कंद, द्रुतविलंबित) मात्रिक रूप में उपस्थित किया है, उनमें कंद का प्रयोग तो निराला में देखा जाता है, पर द्रुतविलंबित का किसी में नहीं। इसके अतिरिक्त सूरदास-द्वारा आविष्कृत माधवमालती को प्रकाश में लाने का श्रेय संभवतः इन्हीं को दिया जायगा।

यह छन्द छायावाद-युग में उसी प्रकार चल पड़ा, जिस प्रकार द्विवेदी-युग में हरिगीतिका।

महादेवी ने छोटे-बड़े सभी प्रकार के मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। इनके साहित्य में जहाँ सप्तमात्रिक सुगति छंद मिलता है, वहाँ ३२ मात्रापादी समानसवैया और मत्तसवैया भी। हिंदी के मात्रिक छंद त्रिकल, चतुष्कल, पंचकल, षट्कल, सप्तकल तथा अष्टकल के आधार पर चलते हैं। महादेवी के काव्य में इन सभी आधारों पर चलने वाले छंद मिल जाते हैं। इन्होंने जहाँ त्रिकल के आधार पर चलने वाली लीला, पंचक के आधार पर चलने वाले दीप, भुजंगप्रयात मात्रिक, मंजुतिलका तथा कंद मात्रिक का प्रयोग किया है, वहाँ सप्तकाधृत हरिगीतिका (ऽ ऽ । ऽ) मधुमालती (ऽ ऽ । ऽ) सुलक्षण (ऽ ऽ ऽ ।) गीतिका (ऽ । ऽ ऽ) रूपमाला (ऽ । ऽ ऽ) विजात (। ऽ ऽ ऽ) तथा विधाता (। ऽ ऽ ऽ) छंद को भी प्रश्रय दिया है। प्रसाद ने नवक के आधार पर एक ग्रह छंद का निर्माण किया है। नवकाधृत कोई छंद निराला, पंत एवं महादेवी में नहीं मिलता। प्रचलित छंदों में सरसी, सार, मरहट्ठामाधवी, ताटंक, समानसवैया, वीर सब का प्रयोग इनके काव्य में मिल जाता है। पर पद-रचयिताओं के प्यारे छंद सार और मरहट्ठामाधवी का प्रयोग इन्होंने बहुत ही कम किया है। अपने कवि-जीवन के प्रभात में इन्होंने संभवतः पंत के प्रभाव-वश शृंगार और सखी का विशद प्रयोग किया है। ये दो छोटे छंद इनकी रहस्यानुभूति के सफल वाहक बन गए हैं। अतः ये दोनों छंद इनके प्रारंभिक काल के प्रिय छंद कहे जा सकते हैं। इसके उपरांत इन्होंने जब गीत-शैली को अपनाया, तो ये दोनों छंद एक प्रकार से बहिष्कृत हो गए। अपने गीतों में यों तो इन्होंने अनेक छंदों का प्रयोग किया है, पर मनोरम और माधवमालती बहुशः प्रयुक्त हुए हैं। मनोरम का स्वतंत्र प्रयोग कहीं प्राप्त नहीं होता। माधवमालती स्वतंत्र और मिश्र दोनों रूपों में प्रयुक्त हुई है। चूँकि मनोरम (जो माधवमालती का अर्द्ध चरण है) और माधवमालती का प्रयोग गीतों में विपुल परिमाण में हुआ है और इन दोनों छंदो में इनकी सफलता भी असंदिग्ध है; अतः ये दोनों छंद इनके गीत-काल के सर्वाधिक प्रिय छंद माने जा सकते हैं।

महादेवी का सारा काव्य एक प्रकार से मात्रिक छंदों में ही निबद्ध है। प्रसाद की तरह इन्होंने वर्णिक छन्दों का प्रयोग नहीं किया। इनके काव्य में जो दो-तीन वर्णवृत्त प्रयुक्त हुए हैं, उनमें गण-क्रम के कठोर शासन की उपेक्षा

की गई है और इस प्रकार उन्हें मात्रिक रूप प्रदान किया गया है। वर्णवृत्तों में केवल सवैये का प्रयोग मात्र दो पद्यों में किया गया है। यह संभवतः इसलिए कि गणात्मक होते हुए भी सवैये में गुरु को लघु पढ़ने की पूरी छूट है। एक गुरु की जगह दो लघु रखने की स्वतंत्रता नहीं होने के कारण सवैया मात्रिक छन्द की भूमि पर तो उतर नहीं सकता; पर शासन की शिथिलता के कारण वह मात्रिक की तरह आसानी से लिखा जा सकता है। इस सवैये का प्रयोग प्राचीन-नवीन के संगम पर स्थित प्रसाद में तो मिलता है, पर निराला और पंत में प्राप्त नहीं होता। छाया-वाद के युग में महादेवी के द्वारा इसका जो स्मरण किया गया; वह आगे चलकर दिनकर के लिए ध्यातव्य हो गया जिन्होंने अपने 'कुरुक्षेत्र' में इसे विपुल सम्मान दिया।

१६, फरवरी '७४]

इतर कवियों के नूतन प्रयोग

अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कवि कभी-कभी प्राचीन छंदों को असमर्थ पाकर नूतन छंद गढ़ लेता है। या यों कहिए कि उसकी उमड़ती भाव-धारा कभी-कभी पुराने छंदों के कूल-किनारों को वहा-ढहा कर अपने लिए नूतन मार्ग वना लेती है। 'हिन्दी-साहित्य का छंदोविवेचन' नामक ग्रन्थ के विवेचित कवियों से लेकर छायावादी-चतुष्टय पर्यन्त हम देख आए हैं कि किस प्रकार अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए अनेक कवियों ने कतिपय नूतन प्रयोग किए हैं; जिनका किसी छंदःशास्त्र में उल्लेख नहीं है। यह नूतन प्रयोग का क्रम कभी टूटा नहीं। संस्कृत से लेकर हिन्दी तक यह निरंतर चलता रहा। अतः वहुत संभव है कि 'हिन्दी-साहित्य का छंदोविवेचन' के विवेचित कवियों तथा छायावादी-चतुष्टय के अतिरिक्त और कवियों ने भी कुछ ऐसे प्रयोग किए हों, जो सर्वथा नूतन हों। इसी विचार के वशीभूत संपूर्ण हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त नवीन प्रयोगों को प्रकाश में ले आने के उद्योग का फल यह अध्याय है। इस कार्य के लिए विशेषतः छायावाद और छायावादोत्तर युगों के छंदोबद्ध कविता लिखने वाले प्रायः सभी प्रसिद्ध और मान्य कवियों के यथासंभव उन समस्त ग्रन्थों को उलट गया, जो मुझे सुलभ हो सके। ऐसे सभी ग्रन्थों की सूची, ग्रन्थकार के सहित, परिशिष्ट (४) में दे दी गई है, ताकि पाठकों को पता लग जाय कि इस प्रयास में मैंने कितनी दूरी की परिधि का चक्कर लगाया है। उन ग्रन्थों को उलटने के फलस्वरूप जो नए प्रयोग सामने आए, उनमें जिनके नाम प्राचीन अथच नवीन छन्दःशास्त्रों में मिल गए, वे तो प्रायः उन्हीं नामों से पुकारे गए। जिनके नाम शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हुए उनका नामकरण किया गया और छंदःशास्त्र में प्रतिष्ठित किए गए। इतर कवियों के नूतन प्रयोग से मेरा अभिप्राय उन कवियों के उन नूतन प्रयोगों से है, जिनका प्रयोग 'हिन्दी-साहित्य का छंदोविवेचन' के विवेचित कवियों तथा छायावादी-चतुष्टय ने नहीं किया है। ये नूतन प्रयोग भी दो प्रकार के हैं—

(क) जिस प्रयोग का उल्लेख किसी शास्त्र में नहीं हुआ है—जो कवि की सर्वथा नूतन सृष्टि है।

(ख) जिसका उल्लेख शास्त्र में तो हुआ है, पर कवि-विशेष के पूर्व जिसका प्रयोग हिन्दी काव्य में नहीं हो पाया था।

आगे की पंक्तियों में दोनों प्रकार के प्रयोगों का नामकरण कर उनके लक्षण और उदाहरण दिए जाते हैं।

प्रथम प्रकार के नूतन प्रयोग

मात्रिक सम

(१) मनोरमण (१६ मा०)

स्वर्ग भी मैं ही, नरक भी मैं।
मग्न-लय मैं ही, गमक भी मैं।
और बू मैं ही, महक भी मैं।
मौन भी मैं ही, चहक भी मैं।

—उदयशंकर भट्ट (युगदीप : पद्य १४)

मनोरमण छंद में १६ मात्राएँ होती है। ससक (ऽ।ऽऽ) की दो आवृत्तियों के आधार पर निर्मित मनोरम के अंत में दो मात्राएँ जोड़ कर इसका आविष्कार कर लिया गया है। रूपमाला-रजनी में निबद्ध उक्त पद्य के टेक-रूप में इसकी छह पंक्तियाँ मिलती हैं। दिनकर के 'नए सुभाषित' नामक ग्रन्थ में भी इसकी पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यथा—

शब्द जब मिलते नहीं मन के,
प्रेम तब इंगित दिखाता है,
बोलने में लाज जब लगती
प्रेम तब लिखना सिखाता है।

—दिनकर : नए सुभाषित (प्रेम ६, पृ० ३)

उदयशंकर भट्ट और रामधारीसिंह 'दिनकर' दोनों के समसामयिक होने के कारण यह कहना आसान नहीं कि किसने इस छंद का सर्वप्रथम प्रयोग किया?

(२) मधुवर्षिणी (१८ मा०)

मेरे मनोरम! मत बनो अनुदार!
यह भूल है मेरे निठुर सुकुमार!
अरविंद! कर लो बंद मत उर-द्वार।
मन में इसी से प्यार की मनुहार।

——नरेन्द्र शर्मा (मिट्टी और फूल : अनुनय)

मधुवर्षिणी छंद में १६ मात्राएँ होती हैं। अंत में ऽ। रहता है। सप्तक (ऽ ऽ । ऽ) की दो आवृत्तियों के आधार पर बनी मधुमालती के अंत में पाँच मात्राओं (तगण का आधार) के योग से इस छन्द का निर्माण हुआ है। पीयूष-वर्षी (१६ मा०) के आधार पर इस १६ मात्रापादी छन्द को मधुवर्षिणी नाम दिया गया है। उक्त कविता में टेक के रूप में इसकी कतिपय पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(३) रामपद (१६ मा०)

नील नभ में यह किसका जीवन है।
बिगड़ता बनता जिसका लघु तन है।
अपरिचित नभ का यह अति निर्जन है।
अपरिचित छवि का नव आवाहन है।
—रामकुमार वर्मा (चित्ररेखा, गीत ३४)

रामपद छंद में १६ मात्राएँ होती हैं, आदि में त्रिकल का रहना आवश्यक है। इसका निर्माण राम छंद के अंत में दो मात्राओं के योग से हुआ है। शृंगार-निबद्ध उक्त गीत में इसकी केवल चार पंक्तियाँ छंदक-रूप में मिलती हैं।

(४) कोदंड (२२ मा०)

जंजीर टूटती कभी न अश्रुधार से
दुखदर्द दूर भागते नहीं दुलार से
हटती न दासता पुकार से, गुहार से
इस गंग-तीर बैठ आज राष्ट्रशक्ति की
तुम कामना करो किशोर, कामना करो।
—गोपालसिंह 'नेपाली' (नवीन : नवीन, पृ० १)

यह छंद वस्तुतः चतुर्दशाक्षर त र ज र ल ग का मात्रिक रूप है। इस गण-क्रम वाला कोई छंद शास्त्रों में उपलब्ध नहीं। कवि ने अनंद छंद (ज र ज र ल ग)[1] के प्रारंभिक जगण की जगह तगण रख कर इसका आविष्कार कर लिया है। अतः इसमें अनंद की २१ मात्राओं के स्थान पर २२ मात्राएँ होती हैं। इसी छन्द में निबद्ध 'केसरी' की भी एक कविता मिलती है। यथा—

१. द्रष्टव्य : छंदः प्रभाकर : जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', पृ० १६७

निकला दहाड़ता हुआ गुहा से केसरी
चौंका हिला जमीन-आसमान देश का
मुरझी हुई रगों में खून खौलने लगा
फिर रौद्र तेज पुंज भासमान देश का !

—केसरी (कदंब : स्वस्ति-प्रशस्ति)

(रेखांकित वर्णों का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित)

'केसरी' की उक्त कविता में 'नेपाली' के विपरीत कतिपय पंक्तियों में त र ज र ल ग का पूर्णतया पालन नहीं हुआ है। अतः ऐसी पंक्तियों में २२ की जगह २३ मात्राएँ हो गई हैं। यथा—

कहता 'उठो-उठो' मलय-पवमान देश का ! (२३ मा०)

+ +

फिर शाण का सिंगार चढ़ा वज्र सार पर (२३ मा०)

(५) पीयूषसरी (२२ मा०)

देख लो वह बह रही है जेठ की सरी !
किन्तु अब भी दे रही है आँख में तरी !
यह महा दुर्दिन कठिन है दुपहरी खरी !
आग में भी गा रही वह इन्द्र की परी

—केसरी (आम महुआ : जेठ की सरिता)

पीयूषसरी में २२ मात्राएँ होती हैं, अन्त में त्रिकल (। ऽ) रहता है। पीयूषवर्षी (१९ मा०) के अन्त में । ऽ के योग से इसका निर्माण हुआ है। उक्त कविता पीयूषवर्षी छन्द में निबद्ध है, जिसमें टेक के रूप में लिखी पीयूषसरी की चार पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

(६) रूपमाली (२४ मा०)

आज इस त्योहार में यह प्रार्थना हमारी।
माँ ! हमें वर दो कि हों हम शक्ति के पुजारी।
हों हमारे प्राण वैसे आज तेज-धारी।

—केसरी (आम महुआ : प्रार्थना)

रूपमाली छन्द सप्तक के आधार पर चलता है, जिसमें २४ मात्राएँ होती हैं और अंत में यगण (। ऽ ऽ) रहता है। २४ मात्रापादी रूपमाला के उत्तरार्द्ध दशमात्रिक (ऽ । ऽ ऽ ऽ ।) खंड के अंतिम तगण की जगह यगण (। ऽ ऽ) रख

कर इसका निर्माण कर लिया गया है। तगण के स्थान पर यगण रखने से इसकी लय रूपमाला से भिन्न हो जाती है। अतः इसे नया नाम देना पड़ा।

(७) सुवर्णा (२८ मा०)

मार्गी न सुवर्णा खंडकाव्य, देशज यह लोक-कथा;
पर जैसा इसका रूप यहाँ, वैसा ही वहाँ न था।
क्या मूल रूप, देखा न सुना; साक्षात नहीं जाना,
क्षत्रिय-कन्या को जीत कर्ण ले आया, यह माना।

—नरेन्द्र शर्मा (सुवर्णा : आमुख)

सुवर्णा छन्द में १६-१२ पर यति देकर २८ मात्राएँ होती हैं। सार से इसका अंतर यह है कि सार का निर्माण चौपाई और महानुभाव के चरणों को एक इकाई मान कर हुआ है। पर सुवर्णा की सृष्टि पद्धरिया पदपादाकुलक के चरणांत में १२ मात्राओं (पदपादांक छन्द) के योग से हुई है। नरेन्द्र शर्मा के 'सुवर्णा' काव्य के आमुख में इसका आद्योपांत प्रयोग हुआ है। नरेन्द्र के अतिरिक्त शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने भी सुवर्णा का प्रयोग अपनी एक कविता में किया है। यथा—

कल का सपना संघर्ष-दोल पर सहज सत्य बन कर
युग की पुतली की इंगित पर अविराम झूमता है।
सोने के गुंबद चूर घूर का मेरु सँवरता है
हर ओर घनों की चोटों से फौलाद निखरता है।

—शि० मं० सिंह 'सुमन' (विश्वास बढ़ता ही गया : स्वर्ग और धरती को मिल कर हो जाना है एक)

इन दोनों कवियों के अतिरिक्त 'बच्चन' की 'प्रणय पत्रिका' (पद्य ३७) में भी सुवर्णा छंद का प्रयोग हुआ है।

(८) शांता (२९ मा०)[१]

इन सब नक्षत्रों के गिनने में है कोई न समर्थ।
यों है ब्रह्माण्डों की गिनती का सदा सकल श्रम व्यर्थ।

× × ×

ये अपनी अपनी चाल चलैं पर जावैं नहिं टकराय।
पड़ती है इनकी चालों में कर्त्ता का मति दरसाय।

—मिश्रबन्धु (कविता-कौमुदी, पृ० ३३८, ईश्वरवाद)

शांता छंद में १६-१३ पर विश्राम देकर २९ मात्राएँ होती हैं। अंत में ऽ। रहता है। मत्तसवैये के पादांत की तीन मात्राओं को निकाल कर इसका आविष्कार किया गया है। पदपादाकुलक और पदपादांकुर के चरणों के योग से भी इसका निर्माण हो जाता है। मत्तसवैये के चरण से तीन मात्राओं के हट जाने से इसकी चाल में शांत गरिमा आ जाती है। अतः इसका नाम शांता रक्खा गया है। मिश्रबंधु ने इसका स्वतंत्र प्रयोग नहीं किया है। मत्त-सवैये की एक-एक अर्द्धाली के वाद इसकी एक-एक अर्द्धाली रक्खी गई है। भगवती चरण वर्मा की 'अंतिम दर्शन' और 'होली' नामक कविताओं में भी शांता की कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं। यथा—

कह अरी दानवी दिल्ली ! तेरा यह कैसा अभिसार ?
तू बोल रही है कर्कश स्वर में किसकी जय जयकार ?
—भ० च० वर्मा (मेरी कविताएँ, अंतिम दर्शन, पृ० २२०)

(९) माधवमालती श्री (३० मा०)

शांत है पर्वत समीरण, मौन है यह चीड़ का वन भी।
रुकेंगे निश्वास मेरे, शांत होगा चिर विकल मन भी।
खुलेगा निस्सीम नभ-सा एक दिन यह शून्य जीवन भी।
खुली कलियों से खुलेंगे ही हमारे मोह-बंधन भी।
—नरेन्द्र शर्मा (पलाशवन : रानीखेत की वात)

माधवमालती के चरणांत में दो मात्राओं के योग से माधवमालती श्री छंद का निर्माण हुआ है। उक्त कविता में इसका प्रयोग टेक में हुआ है। 'पलाशवन' के अतिरिक्त नरेन्द्र ने इसका प्रयोग 'मिट्टी और फूल' के 'मध्य निशा का गीत' की टेक में तथा 'हंसमाला' की 'सुधि' कविता की तीन पंक्तियों में भी किया है। 'वच्चन' ने भी अपनी एक कविता की टेक को इसी छंद में निवद्ध किया है। यथा—

आ गई वरसात, मुझको
आज फिर घेरे हुए वादल।
—वच्चन (प्रणय पत्रिका, पद्य २०)

इस प्रकार इसमें १४-१६ पर विश्राम देकर ३० मात्राएँ होती हैं। चतुर्दशमात्रिक खंड मनोरम का चरण है और षोडशमात्रिक मनोरमण का

(१०) माधवमालतीलता (३१ मा०)

रुकी झंझा, फिर खड़ी दृढ़
सामने गिरि पर असित तरु-पाँत,
नील नभ ऊपर, हृदय ज्यों
सह चुका आघात पर आघात।
यह खुला नभ, यह धुला नभ,
खिल रही यह चाँदनी अनमोल;
यह अमृत की वृष्टि, खिलती
कुमुदिनी-सी सृष्टि दृग-उर खोल।
—नरेन्द्र शर्मा (पलाशवन : रानी खेत की बात)

माधवमालतीलता में १४–१७ पर विश्राम देकर ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु-लघु रहते है। १४ मात्रिक खंड मनोरम का और १७ मात्रिक उर्मिला छन्द का है। माधवमालती के चरणांत में एक त्रिकल (ऽ।) रखने से यह बन जाता है। डॉ० शुक्ल ने इसे मधुमालतीलता कहा है,[1] पर मधुमालती का प्रारम्भ ऽऽ।ऽ से होता है, न कि ऽ।ऽऽ से। अतः पाठक को भ्रम हो जाने की आशंका है। नरेन्द्र ने माधवमालती के चरणांत में कतिपय मात्राएँ जोड़कर अनेक छन्दों की सृष्टि की है और सब का नामकरण मुझे करना पड़ा है। अपने नामों के क्रम में मुझे इसका नाम माधवमालतीलता ही उपयुक्त प्रतीत हुआ, जो पाठक को माधवमालती से बने इस छंद को तत्काल समझने में सुविधा प्रदान करेगा। इसका प्रयोग उक्त कविता में माधवमालतीश्री में निबद्ध टेक की छह पंक्तियों के साथ हुआ है। नरेन्द्र ने उक्त कविता के अतिरिक्त इसका प्रयोग 'मिट्टी और फूल' की 'रात' शीर्षक कविता की टेक में भी किया है। 'बच्चन' की 'प्रणय-पत्रिका' (पद्य ४०), 'त्रिभंगिमा' (मौन यात्री) और 'धार के इधर उधर' (आजाद हिन्दुस्तान का आह्वान) में भी इसका प्रयोग उपलब्ध होता है।

(११) ज्वाला-शर (३१ मात्राएँ)

डूब रहे नभ के तारे झर
रहे जुही के फूल जैसे।

---

१. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० ३०६।

आसमान सब सोना-सोना,
धरती सोना धूल जैसे।
लाल किरण ज्वाला-शर ऐसी
बादल जलती तूल जैसे।
अरुणोदय के बादल दिखते
हिलता दूर दुकूल जैसे।
—नरेन्द्र शर्मा (मिट्टी और फूल : सुबह)

समप्रवाही ज्वालाशर में १६-१५ पर विराम देकर ३१ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु रहते हैं। ३१ मात्रापादी वीर छन्द से इसका अंतर यह है कि वीर के अंत में ऽ। और इसके अंत में ऽ ऽ होते हैं। 'हिलता दूर दुकूल जैसे' की जगह 'हिलता दूर दुकूल विशाल' कर देने से पंक्ति वीर की हो जायगी। इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ है। उक्त कविता की टेक के रूप में इसकी छह पंक्तियाँ मिलती हैं।

उक्त कविता में अरुणोदय का वर्णन है। पर अरुणोदय नाम अरुण छन्द से निर्मित होने का भ्रम उत्पन्न करता। अतः इसका नाम ज्वालाशर रक्खा गया, क्योंकि इसका अंतिम कर्ण (ऽ ऽ) वीर छन्द से भिन्न लय उत्पन्न करता है।

(१२) विनिमय (३१ मा०)

मैं पहन सकूँगा हार नहीं,
लगता यह मुझको बंध-सा,
संकीर्ण गली में तो मुझसे
चलता न बनेगा अंध-सा।
तेरे आँखों के पानी से
विनिमय अंतर की आग का,
कर क्षमा, जान पड़ता मुझको
यह कटु, कृत्रिम संबंध-सा।
—जानकी वल्लभ शास्त्री (रूप और अरूप : खंड २, पद्य ४३)

विनिमय छन्द में १६-१५ पर विश्राम देकर ३१ मात्राएँ होती है। वीर छन्द की तरह यह चौपाई पर आधारित न होकर पद्धरि पर आश्रित है। यह वस्तुतः पदपादाकुलक (पद्धरि भी रह सकता है) और उज्ज्वला मात्रिक

(१५ मा०) के चरणों के योग से बना है। अतः इसके अंत में । ऽ का रहना आवश्यक है। उक्त कविता में इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप में हुआ है।

(१३) स्वर्णसरसी (३२ मा०)

पधारो, बैठे रहो इस/अमराई की/सघन कुंज में आज।
यहाँ आने में लगती/है, निदाघ की/दोपहरी को लाज।
जल रहे हैं पल क्षण, तुम/यहाँ बिता लो/कुछ घड़ियाँ बिन काज।
कि केवल कोयल गाती/है पंचम में/अपने स्वर को साज।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (हम विषपायी जनम के)

स्वर्णसरसी छन्द में १३-८-११ पर यति देकर ३२ मात्राएँ होती हैं, अंत में ऽ। रहता है। सरसी के आदि में पाँच मात्राओं के योग से इसका निर्माण हुआ है। अतः इसका नाम स्वयं सरसी रक्खा गया है। इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से नहीं हुआ है। केवल टेक में इसकी पाँच पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

मात्रिक दंडक

(१४) प्रवीर (३३ मा०)

आ पड़ा हाय ! संसार कूप में,
भाग्य-दोष से गिर कर ओस।
पर हर्षित होकर किया सुशोभित
उसने स्फुट गुलाब का कोष।
उस ओर व्योम पर तारादल ने
किया बड़ा उसका उपहास।
इस ओर घेर कर काँटों ने भी
दिया व्यर्थ ही उसको त्रास।

—मुकुटधर पांडेय (कविताकौमुदी, भाग २, ओस की निर्वाण-प्राप्ति, पृ०५५७)

प्रवीर का निर्माण वीर छन्द के आदि में दो मात्राओं के योग से हुआ है। इस प्रकार इसमें १८-१५ पर विराम देकर ३३ मात्राएँ होती हैं। अंत में ऽ। रहता है। उक्त कविता में इसका प्रयोग स्वतंत्र रूप से हुआ है।

(१५) माधवमालती मंजरी (३३ मा०)

कह रहा था ईश से उस/रात
अपनी बात पापी मनुज यों—

'यदि मनुज के बिन तुम्हारी /
सृष्टि चलती थी बनाया मनुज क्यों ?'
'सृष्टि का शृंगार, है अव/तार
मेरा मनुज ही' प्रभु ने कहा—
प्रगति के नेतृत्व का श्रम/भार भी
सुन मनुज, तू ने ही सहा।'
—नरेन्द्र शर्मा (अग्निशस्य : पापी मनुज)

माधवमालती मंजरी में १४-१९ पर विश्राम देकर ३३ मात्राएँ होती हैं। अंत में रगण (ऽ। ऽ) रहता है। माधवमालती के अंत में पाँच मात्राओं (रगण आधार) के योग से इसका निर्माण हुआ है। मनोरम (१४) और पीयूषवर्षी (१९ मा०) के चरणों के योग से भी यह बन जाती है। उक्त कविता के अतिरिक्त इसकी दो पंक्तियाँ नरेन्द्र के 'पलाशवन' के 'सामने का नीम' में भी उपलब्ध होती हैं। 'वच्चन' ने भी इसका प्रयोग 'त्रिभंगिमा' (तुम्हारी नाट्य-शाला) और 'धार के इधर उधर' (आजादी की दूसरी वर्षगाँठ) में किया है। यथा—

काम जो तुमने कराया, कर गया;
जो कुछ कहाया, कह गया।

(१६) विपाण (३४ मा०)

खड़ा हो कि धौंसे वजा कर जवानी
सुनाने लगी फिर धमार ;
खड़ा हो कि अपने अहंकारियों को
हिमालय रहा है पुकार।
खड़ा हो कि फिर फूंक विष की लगा
धूर्जटी ने वजाया विपाण;
खड़ा हो, जवानी का झंडा उड़ा,
ओ ! मेरे देश के नौजवान !
—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा : जवानी का झंडा)

(रेखांकित 'मे' का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित)

विपाण छन्द में २०-१४ पर यति देकर ३४ मात्राएँ होती हैं। अंत में ऽ। रहता है। इसका २० मात्रिक ;खंड भुजंगप्रयात (य य य य) का मात्रिक

रूप है और १४ वाला खंड छयकीर्त्ति-द्वारा उल्लिखित वृहत्य (य य य)[1] के अंतिम यगण के स्थान पर जगण रख कर बना लिया गया है। अर्थात् अंतिम गुरु को लघु (। ऽ ऽ की जगह । ऽ ।) कर दिया गया है। उक्त कविता संपूर्णतः इसी छन्द में निवद्ध है।

(१७) माधवमालती सहचरी (३५ मा०)

चित्र मन नित नव बनाता,
किंतु सब कोई, कहीं कोई कहीं है।
×
मन किसी को खोजता है
इसलिए हर वार निज को खो रहा है।
—नरेन्द्र शर्मा (हंसमाला : स्वप्न बनते और ढहते)

माधवमालती सहचरी छन्द में १४-२१ पर विश्राम देकर ३५ मात्राएँ होती हैं। १४ मात्रिक खंड मनोरम का और २१ मात्रिक पीयूषनिर्झर का चरण है। माधवमालती के चरणांत में सात मात्राओं के योग से इसका निर्माण हो जाता है। उक्त कविता में दो पंक्तियों के अतिरिक्त 'प्रवासी के गीत' में भी दो पंक्तियाँ (पद्य २८) इसकी मिलती हैं। नरेन्द्र के अतिरिक्त 'बच्चन' ने भी इसका प्रयोग 'प्रणय-पत्रिका' तथा त्रिभंगिमा (तुम्हारी नाट्यशाला) में किया है। यथा—

क्लेश है इस बात का जो
देखता तुमको फला-फूला नहीं मैं।
भावना तूने उभारी
थी कभी मेरी, इसे भूला नहीं मैं।
—बच्चन (प्रणय पत्रिका : पद्य २६)

(१८) विधाता-प्रपंच (३६ मा०)

बहुत सों को दिखी पगडंडियाँ
सीधी, सुगम, जाती/हुई जग बीच;
मिली कवि को कँटीली राह
जो टेढ़ी, कठिन, अनजा/न पग-पग कीच।

१. द्रष्टव्य : छंदोऽनुशासन २।७३ (वृहत्यां वृहत्यं त्रयो याः)

बहुत सों को क्रियात्मक कामनाएँ दीं
अमल के रू/प में आदर्श;
मिली कवि को सुनहली स्वप्न छाया
और जागृत रू/प में संघर्ष।

—नरेन्द्र शर्मा (हंसमाला : जग और कवि)

विधाता-प्रपंच का निर्माण विधाता छन्द के चरणांत में ८ मात्राओं (सप्तक । ऽ ऽ ऽ + लघु = छवि छन्द) के योग से हुआ है। इस दृष्टि से इसमें १४-१४-८ पर यति होनी चाहिए। पर विधाता छन्द में, शास्त्र की आज्ञा का पालन नहीं कर, उर्दू के ढंग पर कवि लोग प्रायः १४वीं मात्रा पर विराम नहीं देते। यहाँ विधाता और छवि के चरणों के योग से बने विधाता-प्रपंच में तो कवि ने विधाता की अंत्य यति की भी अवहेलना की है।

नरेन्द्र की उक्त कविता की केवल छह पंक्तियाँ इस छन्द में निबद्ध है।

(१९) माधवमालती आच्छादन (३७ मा०)

और जब मधुगंध-भीनी/वात
बहती है तुम्हारी/बात कह कह कर।

—नरेन्द्र (हंसमाला : सुधि)

माधवमालती आच्छादन में ३७ मात्राएँ होती है। १४-२३ पर विश्राम होता है। १४ मात्रिक खंड मनोरम का और २३ मात्रिक रजनी का चरण है। माधवमालती के चरणांत में ९ मात्राओं (सुगति + २) के योग से इसका निर्माण हो जाता है। इस प्रकार इसमें १४-१४-९ पर भी यति हो सकती है।

नरेन्द्र की उक्त कविता में इसकी केवल एक पंक्ति उपलब्ध होती है।

(२०) माधवमालती-निकुंज (३८ मा०)

नाम ले ले कर हमारा, खींचता आँचल तुम्हारा
क्या कभी सुनसान ?
खँड़हरों में घूमने वाली हवा क्या सुना जाती
तुम्हें मेरे गान ?
गल गया हिम; कब गलेंगे तुम्हें मुझसे छीनने
वाले कुलिश पाषाण ?

—नरेन्द्र शर्मा (प्रवासी के गीत : पद्य २८)

माधवमालतीनिकुंज में ३८ मात्राएँ होती हैं। १४--१४--१० पर विराम

रहता है। १४ मात्रिक खंड मनोरम का और १० मात्रिक ज्योति छन्द का चरण है। माधवमालती के पादांत में १० मात्राओं के योग से इसका निर्माण हो जाता है। उक्त 'प्रवासी के गीत' में इसकी तीन पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

'वच्चन' के काव्य में भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा—

बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही
हो गया आसक्त।
दर्शकों की, कम नवी के हों भले, पर अजनवीपन
के वहुत से भक्त।

—वच्चन (आरती और अंगारे, पद्य ६१)

(२१) माधवमालती पुष्पांजलि (४० मा०)

एक मैं हूँ, सूखता तन और मन में छलकती छल
व्यथा भर दी राम ने।
मैं समाया गर्त्त में अब, शर्म से मुझको दबाया
हर जतन हर काम ने।
सार जीवन का भुलाया, भार जीवन का वढ़ाया
हर घड़ी हर याम ने।
व्यंग्य को कुछ और कड़ुआ वनाया आज इस
मेरे निरर्थक नाम ने।

—नरेन्द्र शर्मा (पलाशवन : सामने का नीम)

माधवमालती पुष्पांजलि में १४-१४-१२ पर विश्राम देकर ४० मात्राएँ होती हैं। १४ मात्रिक दोनों खण्ड मनोरम के हैं और १२ मात्रिक खण्ड मालिका का। माधवमालती के पादांत में १२ मात्राएँ (मालिका छंद) जोड़ देने से यह छन्द वन जाता है। उक्त कविता की टेक में इसकी चार पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं।

(२२) माधवमालती शोभाकर (४२ मा०)

एक दिन निश्चय उगेगा, आँसुओं के मोतियों का
वीज जो मन वो रहा है।

—नरेन्द्र शर्मा (हंसमाला : स्वप्न वनते और ढहते)

माधवमालतीशोभाकर में १४-१४-१४ पर विराम देकर ४२ मात्राएँ होती हैं। इस प्रकार मनोरम के चरण की तीन आवृत्तियों से इसका और दो आवृत्तियों से माधवमालती का निर्माण होता है। उक्त कविता में इसका केवल एक चरण उपलब्ध होता है। 'बच्चन' के काव्य में इससे कुछ अधिक पंक्तियाँ मिलती हैं। यथा---

कौन हंसनियाँ लुभाए है तुझे ऐसा कि तुझको
मानसर भूला हुआ है। (टेक)
---प्रणयपत्रिका (पद्य ४५)

और है क्या खास मुझ में जोकि अपने
आपको साकार करना चाहता हूँ;
खास यह है; सब तरह की खासियत से
आज मैं इन्कार करना चाहता हूँ।
---आरती और अंगारे, पद्य ४३

(२३) माधवमालती कुसुमनिरंतर (४५ मा०)

हवा चलती, पत्र झरते, तो न क्या दो अक्षरों का
पत्र भी लिख भेजतीं तुम, प्राण?
---नरेन्द्र शर्मा (प्रवासी के गीत, पद्य २८)

माधवमालतीकुसुमनिरंतर में १४-१४-१७ पर विश्राम देकर ४५ मात्राएँ होती है। इस प्रकार मनोरम की दो आवृत्तियों और उर्मिला के एक चरण के योग से इसका निर्माण हुआ है। माधवमालती (२८ मा०) और उर्मिला (१७ मा०) के चरणों को एक इकाई मान लेने से भी यह बन जाता है। इसकी केवल एक पंक्ति उक्त गीत में मिलती है।

वर्णवृत्त

(२४) शारदा = त र म ज ग ग।

जै ब्रह्म चित्तभूता जै जैति ब्रह्मवाणी।
जै ब्रह्मचारिणी जै जै ब्रह्मज्ञान-खानी।
जै ब्रह्मवादिनी जै जै तीनि लोक रानी।
जै शुद्ध-बुद्धि अम्बे श्री शारदा भवानी।
---लाला भगवान 'दीन' (दीनग्रंथावली : शारदाष्टक, पृ० ३६३)

शारदा छंद में १४ अक्षर होते हैं, जिसकी गण-व्यवस्था त र म ज ग ग है। इस प्रकार का कोई वर्णवृत्त छंदःशास्त्रों में प्राप्त नहीं। यह कवि की नूतन सृष्टि है। उक्त पद्य में शारदा की वंदना की गई है। अतः इसे शारदा नाम दिया गया है। इस छंद का निर्माण वसंततिलका (त भ ज ज ग ग) के द्वितीय और तृतीय गण अर्थात् भगण और जगण के स्थान पर क्रमशः रगण और मगण रख कर किया गया है।

(२५) कुंदलतिका सवैया (स ८ + ल ग = २६ अक्षर)

कुछ के अपमान के साथ पितामह,
विश्व-विनाशक युद्ध को तोलिए;
इनमें से विघातक पातक कौन
बड़ा है? रहस्य विचार के खोलिए;
मुझ दीन, विपन्न को देख, दयार्द्र हो
देव! नहीं निज सत्य से डोलिए;
नर-नाश का दायी था कौन? सुयोधन
या कि युधिष्ठिर का दल? बोलिए!
—दिनकर (कुरुक्षेत्र : सर्ग ५, पृ० ८३)

डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने इसे नवीन सवैया मान कर इसका निर्माण दुर्मिल सवैये के अंत में। ऽ या अरसात सवैये (७ भ + र) के आदि में दो लघु के योग से बतलाया है।[1] सवैये में गुरु को लघु पढ़ने की पूरी छूट है। इस छूट के अनुसार यदि अंतिम अक्षर 'ए' का ह्रस्वोच्चारण किया जाय तो यह सुख सवैया (स ८ + ल ल)[2] ठहरता है और यह नवीन छंद नहीं रह जाता। यदि अंत्य 'ए' दीर्घ ही माना जाय, तो यह अवश्य नवीन सिद्ध होता है। अतः यह नए नाम का अधिकारी हो जाता है। भानु ने सुख सवैये का अन्य नाम किशोर और कुंदलता बताया है। सुख के अंतिम लघु को गुरु कर देने से यह बन जाता है। इसलिए यह कुंदलतिका कहा जा सकता है। डॉ० शुक्ल ने इसे किसी नाम से अभिहित नहीं किया है। 'कुरुक्षेत्र' में इसका प्रयोग केवल एक पद्य में हुआ है। पर कुरुक्षेत्र के बहुत पहले भारतेन्दु ने 'प्रेममाधुरी'

१. द्रष्टव्य : आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० १६८
२. ,, छंदः प्रभाकर, पृ० २०८

(पद ७६) तथा 'चंद्रावली' में इसी प्रकार का सवैया लिखा है। यथा—

जग जानत कौन है प्रेम विथा
केहि सों चरचा या वियोग की कीजिए।

—चंद्रावली, अंक २

वर्णिक मुक्तक

सम

(२६) मधुराक्षरी (७ अक्षर)

दान ज्ञान-पथ का,
स्नेह भगीरथ का,
पूज्य पितृ-जय से,
आपके सुपत से;
ये उपाधि आई है।
आपको बधाई है।

—रामनारायण शुक्ल।[1]

१५ वर्णवाले मिताक्षरी छंद के वजन पर इस सात वर्ण वाले छंद का नाम मधुराक्षरी रक्खा गया है। यह मनहरण घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध (८–७ वर्ण) का अंतिमांश है। अतः इसके अंत में गुरु अवश्य रहेगा। डॉ० शुक्ल ने अंत में ऽ ऽ ऽ, ऽ । ऽ और । । ऽ रखने का विधान किया है। उन्होंने इसका उल्लेख किया है, कोई नाम नहीं दिया।

अर्द्धसम

(२७) शरण (१२–११ अक्षर)

जिसकी अलभ्य एक विंदु-सुधा .... १२ वर्ण
जाने किस दूर के जगत से .... ११ ,,
जाग्रत करेगी सदा प्राण-क्षुधा .... १२ ,,
प्राण में प्रलुब्ध अनागत से। .... ११ ,,
आज वह विभु का अजस्र दान .... १२ ,,
प्राप्त है विना प्रयास हमको; .... ११ ,,
होता नहीं रंच परिमाण-मान; .... १२ ,,
वह है दिवा-विभास हमको। .... ११ ,,

—सियारामशरण गुप्त (बापू–४)

---

१. आ० हि० का० में छंद योजना से उद्धृत, पृ० १६७

डॉ० शुक्ल ने इस छन्द को शरण नाम से अभिहित किया है।[1] मनहरण घनाक्षरी के पूर्वार्द्ध (१६ वर्ण) और उत्तरार्द्ध (१५ वर्ण) से चार-चार वर्णों को निकाल कर इसका आविष्कार कर लिया गया है। यहाँ इसके प्रथम-तृतीय में १२ और द्वितीय-चतुर्थ में ११ अक्षर हैं। इस प्रकार कवि ने गुंफित अंत्यानुप्रास की योजना कर छन्द का अर्द्धसम रूप प्रस्तुत किया है। पर इसी पुस्तक की तीन और कविताओं में (३, ११, १२) न तो १२–११ वर्णों के चरण का कोई क्रम रक्खा है और न गुंफित अंत्यानुप्रास पर ही वल दिया है। जैसे––

आगे की शताब्दियाँ गवाक्ष खोल,················१२ वर्ण
विलग भविष्य के निकेतन में,················१२ ”
आगे झुक विस्मितदृगी अलोल,················१२ ”
ध्यान निज लाकर श्रवण में,················११ ”
कुछ सुनती है वड़ी दूर वहाँ,················१२ ”
कुछ गुनती है—वड़ी दूर कहाँ,················१२ ”
वोल रहा कौन वह जन है?················११ ”
खोल रहा अंतर कपाट यहाँ।················१२ ”

—वापू–३

इस प्रकार इसका साधारण लक्षण यह दिया जा सकता है कि शरण छन्द के चरणों में कहीं क्रम-सहित और कहीं क्रमरहित १२ और ११ वर्ण होते हैं।

(२८) शरणागति (११–१५ अक्षर)

सोच-सोच आनन मलीन है,
एक ओर पाकिस्तान एक ओर चीन है।
समझ न पड़ता चरित्र है,
रूस-अमरीका में से कौन वड़ा मित्र है।

—दिनकर (परशुराम की प्रतीक्षा : एनार्की)

शरणागति छन्द के प्रथम-तृतीय चरणों में ११ और द्वितीय-चतुर्थ में १५ अक्षर होते हैं। ११ वाला मनहरण घनाक्षरी के उत्तरार्द्ध से चार वर्णों को हटा कर वना है और १५ वाला मिताक्षरी (मनहरण का उत्तरार्द्ध) का चरण है। दिनकर ने सियारामशरण गुप्त के विपरीत ११–१५ वर्णों का क्रम वरावर

१. आ० हि० का० में छंद योजना, पृ० १६६

रक्खा है। युग्मक अंत्यानुप्रास की योजना भी सर्वत्र है। उक्त कविता का प्रथम खंड तो मिताक्षरी में निबद्ध है। शेष पाँच खंड इसी छन्द में लिखे गए हैं। सियारामशरण गुप्त ने भी इस छन्द का प्रयोग 'बापू' (पृ० १४) में किया है।

द्वितीय प्रकार के नूतन प्रयोग

(२९) महालक्ष्मी मात्रिक (१५ मा०)

कौन तुम मौन-पद आ गई।
नयन में, प्राण में छा गई।
—जानकी वल्लभ शास्त्री (पाषाणी : वासंती)

यह प्राकृत पैंगलम् में उल्लिखित महालक्ष्मी (र र र)[1] का मात्रिक प्रयोग है। भानु ने भी छन्दःप्रभाकर में इसका इसी नाम से उल्लेख किया है।[2] इस छन्द की केवल उक्त दो पंक्तियाँ उक्त कविता में उपलब्ध होती हैं।

(३१) राग मात्रिक (२० मा०)

आज आसुरी बनी समस्त सभ्यता
गिर पड़ा तुषार लुट गई लता-लता
छिन्न भिन्न सी ममत्व-सत्व-श्रृंखला
खो गई कहीं मनुष्य की मनुष्यता।
—शिवमंगल सिंह 'सुमन' (विश्वास बढ़ता ही गया :
मैं मनुष्य के भविष्य से नहीं निराश)

संस्कृत छन्दःशास्त्रों में इस प्रकार का कोई छन्द प्राप्त नहीं। भानु ने एक १३ अक्षर का राग नामक वर्णवृत्त का उल्लेख किया है, जिसकी गण-व्यवस्था र ज र ज ग है।[3] यह राग चामर (र ज र ज र=१५ अक्षर) के अंत्य ल ग को निकाल कर बनाया गया प्रतीत होता है। इसी राग का यह मात्रिक प्रयोग है। २० मात्रापादी योग छन्द भी त्रिकलाधृत है। पर उसमें दो त्रिकल की जगह एक षट्कल का व्यवहार भी होता है। उक्त छन्द में ऐसी बात नहीं है। प्रत्येक चरण में र ज र ज ग का पालन हुआ है। केवल गुरु की जगह, कहीं-कहीं दो लघु का प्रयोग हुआ है। अतः इसे राग का मात्रिक

१. प्रा० पैं० २।७६
२. छंदःप्रभाकर, पृ० १२९
३. वही, पृ० १६१

रूप मानना सर्वथा समीचीन है। उक्त कविता आद्योपांत इसी छन्द में निबद्ध है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की भी एक कविता इसी छन्द में लिखी पाई जाती है। यथा—

बाट जोहती जहाँ सखी सहेलियाँ।
संगिनी अधीर आज की नवेलियाँ।
और वह पिता उदार स्नेह का धनी।
तुम जहाँ किशोरि ! रूप गर्विता बनीं।

—गो० सि० 'नेपाली' (कविभारती : आज तुम चली)

(३१) अनंद मात्रिक (२१ मा०)

प्रचंड शत्रु से घिरा घिरा स्वदेश है,
कि धूर्त पंचमांग से भरा स्वदेश है;
इधर विश्रृंखलित समाज स्वार्थ भर गया,
कि स्वार्थ का पिशाच ध्येय, ज्ञेय चर गया।

—उदयशंकर भट्ट (यथार्थ और कल्पना : पद्य २६)

भानु-द्वारा उल्लिखित अनन्द वर्णवृत्त (ज र ज र ल ग)[1] का यह मात्रिक रूप है, जो पंचचामर (ज र ज र ज ग) के अंतिम ल ग को निकाल कर बना लिया गया है। क्योंकि संस्कृत छन्दःशास्त्र में इस प्रकार का कोई छन्द नहीं मिलता। उक्त कविता आद्योपांत इसी छन्द में निबद्ध है।

इन उपर्युक्त प्रयोगों के अतिरिक्त एक और नूतन प्रयोग देखने में आया; जिसका उल्लेख डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने भी किया है,[2] यद्यपि उसे कोई नाम नहीं दिया है। वह निम्नलिखित है—

राष्ट्र ने कहा कि महा / युद्ध का नियोग करो।······२४ मा०
कँपा दो विश्व को, अब / शक्ति का प्रयोग करो।······२४ ,,
हटा दो दुश्मनों को, / डट के असहयोग करो।······२५ ,,
स्वतंत्र माता को कर / के स्वराज्य भोग करो।······२४ ,,

—सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल : स्वागत-गीत)

१. छंदः प्रभाकर, पृ० १६७
२. आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २६१

उनके अनुसार दिगपाल से भिन्न यह छन्द १२, १२ मात्राओं के चरण का है। जिसमें कभी चार त्रिकलों के योग से और कभी दो पंचकों और द्विकल के योग से १२ मात्राएँ बनती है। अन्त निश्चित रूप से त्रिकलात्मक होता है। डॉ० शुक्ल का यह लक्षण उक्त पद्य के प्रथम तीन चरणों पर तो किसी प्रकार ('डट के' के 'के' का ह्रस्वोच्चारण कर) घटित हो जाता है, पर चतुर्थ चरण का पूर्वांश उस पर नहीं उतर पाता। यह अंश स्पष्टत: तीन चतुष्क के योग से बना है। इस पद्य के अतिरिक्त इस कविता में दो और पद्य हैं, जिनके दो चरणों में ही २४ मात्राएँ हैं, शेप में २५ और २६ है। साथ ही अनेक चरणों में न तो १२वीं पर यति है और न उनका निर्माण चार त्रिकलों अथवा दो पंचकों और द्विकल के योग से हुआ है। नीचे दोनों पद्य दिए जाते हैं—

तुम्हारा कर्म चढ़ाने को हमें डोर हुआ।......२४ मा०
तुम्हारी बातों से दिल में हमारे जोर हुआ।......२६ ,,
तुम्हें कुचलने को दुश्मन का जी कठोर हुआ।......२५ ,,
तुम्हारे नाम का हर ओर आज शोर हुआ।......२४ ,,
तुम्हारे बच्चों को कष्टों में आज याद हुई।......२६ ,,
तुम्हारे आने से पूरी सभी मुराद हुई।......२५ ,,
गुलाम खानों में राष्ट्रीयता आबाद हुई।......२५ ,,
मादरे हिंद यों बोली कि मैं आजाद हुई।......२५ ,,

रेखांकित सभी वर्णो का ह्रस्वोच्चारण करने पर सभी चरण २४ मात्राओं के हो जाते हैं और प्रथम-सप्तम को छोड़ कर शेप चरणों पर डॉ० शुक्ल का लक्षण भी घटित हो जाता है। पर पूरी कविता में तीन चरण ऐसे निकल आते हैं, जो लक्षण के अंदर नहीं आ पाते। प्रथम चरण न तो चार चतुष्कों से बना है और न उसमें १२वीं मात्रा पर यति ही है। अत: ऐसे अस्त-व्यस्त चरण वाले प्रयोग के लिए कोई निर्दिष्ट लक्षण नहीं दिया जा सकता। इस प्रयोग की प्रकृति संस्कृत अथवा हिंदी छंदों की प्रकृति से मेल नही खाती। इसमें न तो संस्कृत छंदों की गणबद्धता है और न हिंदी छंदों के त्रिकल, चतुष्कल, पंचकल आदि का सर्वमान्य आधार। संभव है, यह प्रयोग उर्दू के छंदों पर आधृत हो। पर उर्दू की बहरों का पालन सुभद्रा कुमारी ने कहाँ तक किया है, वह फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन बहर में लिखी निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है—

छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को।

× ×

है, तो बड़े हाथ, राखी पड़ी है।

——मुकुल : राखी की चुनौती, पृ० ५९-६०

यहाँ स्पष्टतः दोनों पंक्तियों के आदि में एक-एक लघु छोड़ दिया गया है। जो हो, संस्कृत-हिंदी से भिन्न-प्रकृति वाले इस प्रयोग को मैंने कोई नाम इसलिए नहीं दिया कि इसका कोई एक सामान्य लक्षण नहीं दिया जा सकता।

इस प्रसंग में यह बतला देना भी आवश्यक है कि नूतन प्रयोगों की खोज के अध्ययन में मुझे इस कविता के अतिरिक्त और भी कुछ कविताएँ मिलीं जिनमें मैंने चरणों की मात्रागत समानता तथा चतुष्कल-पंचकल आदि आधार की एकता नहीं देखी। इसीलिए उन्हें भी मैंने नूतन प्रयोगों में सम्मिलित नहीं किया। संभव है, वे भी उर्दू बहरों में लिखी गई हों। उर्दू की कतिपय बहरें पीयूषवर्षी, सुमेरु, दिगपाल आदि नाम पाकर हिंदी छंदःशास्त्र में अवश्य विराजित हैं। डॉ० शुक्ल ने भी उर्दू बहरों में लिखित निराला के कुछ पद्यों को नूतन प्रयोग मान कर पुराण[1], बेला[2] आदि नामों से विभूषित किया है। पर मेरा विचार है कि दो-चार कवियों के द्वारा प्रयुक्त होकर उर्दू की बहरें जब तक अपना उर्दूपन छोड़ कर हिन्दी के साँचे में पूर्ण रूप से ढल नहीं जातीं, तब तक वे हिन्दी छंदःशास्त्र में स्थान नहीं पा सकतीं। पुराण और बेला के विपरीत विहंग[3] हिन्दी छंदःशास्त्र की संपत्ति इसलिए माना जायगा कि श्रीधर पाठक, हरिऔध आदि कई कवियों के द्वारा प्रयुक्त होकर उसने अपने को पूर्णतः हिन्दी में रूपायित कर दिया है। उर्दू के उन प्रयोगों को छोड़ कर जो नए प्रयोग प्रस्तुत किए गए, उनमें कतिपय प्रयोग कई कवियों में मिलते हैं। ये कवि प्रायः समसामयिक हैं। अतः इस पर विचार करना बड़ा ही कठिन कार्य है कि अमुक प्रयोग सर्वप्रथम किस कवि ने किया? हाँ, शांता छंद का प्रयोग मिश्रबंधु और भगवती चरण वर्मा दोनों के काव्यों में मिलता है तो यह अनुमान किया जा सकता है

१. द्रष्टव्य : आ० हि० का० में छंदयोजना, पृ० २७२

२. वही, पृ० २८५

३. वही, पृ० २६७

कि इसका प्रयोग मिश्र-बंधु ने पहले-पहल किया होगा। पर यह अनुमान ही है, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

अंत में पाठकों से यह निवेदन करना है कि इन नूतन प्रयोगों की खोज में मैंने जितने ग्रंथों का मंथन किया और जो रत्न प्राप्त हो सके, वे उनके आगे प्रस्तुत कर दिए गए। इतना परिश्रम करने के बाद भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त सारे-के-सारे छंद इन दोनों ग्रंथों (हिन्दी-साहित्य का छंदोविवेचन और छायावाद का छंदोऽनुशीलन) में समाविष्ट हो गए—एक छंद भी छूट नहीं पाया। नूतन प्रयोग का क्रम सदा से चलता आ रहा है, आगे भी चलता रहेगा। अतः भविष्य में होने वाले नूतन प्रयोग तो इसमें आ ही नहीं सकते। भूत और वर्त्तमान कालीन मान्य कवियों के जो कतिपय दो-चार ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सके, उसके लिए मुझे हार्दिक खेद है। सम्भव है, उनमें भी एकाध नूतन प्रयोग मिल जाता। किन्तु, अपनी रुग्णावस्था पर ध्यान देते हुए अब इतने से ही संतोष कर लेना पड़ता है। मनुष्य की कृति में पूर्णता कब आ पाती है ! शायद ईश्वर भी उसे पूर्ण देखना नहीं चाहता !

यह भी तेरी ही इच्छा है
मेरी इच्छा हो पूर्ण नहीं।
—आरसी।

परिशिष्ट (१)

छंदोऽनुक्रमणिका

प्रयोक्ताओं के सहित अकारादि-क्रम से छंदों की तालिका

संकेताक्षर—मा० = मात्रिक छंद । व = वर्णिक छंद ।

उ० = उदयशंकर भट्ट । के० = केसरी । जा० = जानकीवल्लभ शास्त्री । दि० = दिनकर । दी० = भगवान 'दीन' । न० = नरेंद्र शर्मा । नवी० = बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' । नि० = निराला । नी० = नीरज । ने० = गोपालसिंह 'नेपाली' । पं० = पंत । प्र० = प्रसाद । ब० = बच्चन । भ० = भगवतीचरण वर्मा । भा० = भारतेन्दु । म० = महादेवी । मि० = मिश्रबन्धु । मु० = मुकुटधर पांडे । राकु = रामकुमार वर्मा । राना = रामनाथ शुक्ल । सि० = सियारामशरण गुप्त । सु० = शिवमंगल सिंह 'सुमन' ।

तारांकित (*) छंदों का नामकरण लेखक ने किया है । संख्या मात्रा तथा वर्ण के सूचक हैं ।

अ

अखंड (मा०) ८ — नि०पं०
अणिमा (मा०) १७ — नि०पं०
अनंद (मा०) २१ — उ०
अरुण (मा०) २० — नि०
अर्चना (व०) १६ — नि०
*अलिपद (मा०) ६ — नि०पं०
अहीर (मा०) ११ — प्र०नि०पं०म०
*आलोक (मा०) १२ — प्र०

उ

उज्ज्वला मात्रिक (मा०) १५ — प्र०नि०पं०
उत्कंठा (मा०) ३० — पं०
उर्मिला (मा०) १७ — नि०पं०म०
उर्वशी (मा०) १३ — प्र०
उल्लाला (मा०) १३ — प्र०नि०पं०

क

कज्जल (मा०) १४ — नि० पं०
कंद (मा०) २१ — नि०म०
कुंडल (मा०) २२ — नि०पं०
कुंदलतिका (व) २६ — भा०दि०
कोकिला (मा०) १४ — नि०
*कोदंड (मा०) २२ — ने०के०

ग

गंग (मा०) ६ नि०पं०
ग्रह (मा०) १८ प्र०
गीतिका (मा०) २६ नि०प्र०
गोपी (मा०) १५ प्र०नि०पं०म०

च

चतुष्पद (मा०) ३० नि०पं०
*चंग (मा०) १३ नि०
चंचला (मा०) २४ नि०पं०
चंद्र (मा०) १७ प्र०
चांद्रायण (मा०) २१ नि०पं०म०
*चिदंबर (मा०)२६ पं०
चौपई (मा०)१५ प्र०नि०पं०म०
चौपाई (मा०) १६ प्र०नि०पं०म०
चौबोला (मा०) १५ प्र०नि०पं०

छ

छप्पय (रोला + उल्लाला) प्र०नि०
छवि (मा०) ८ नि०पं०

ज

जलहरण (व) ३२ प्र०
ज्योति (मा०) १० नि०पं०म०
*ज्वालाशर (मा०) ३१ न०

त

तमाल (मा०) १९ प्र०नि०पं०म०
तरलनयन (मा०) १८ पं०
ताटंक (मा०) ३० प्र०नि०पं०म०
तारक (मा०) १८ नि०पं०
तांडव (मा०) १२ नि०पं०म०
तिलोकी (मा०) २१ प्र०
तोटक (व) १२ प्र०
तोमर (मा०) १२ प्र०नि०

द

द्रुतविलंबित (व) १२ प्र०
द्रुतविलंवित (मा०) १६ म०
*दिग (मा०) १२ नि०
दिगपाल (मा०) २४ प्र०-नि०
दिगंबरी (मा०) २६ नि०
दीप (मा०) १० नि० म०
दुर्मिल सवैया (व) २४ प्र० म०
दोहकीय (मा०) १३-१३ प्र०
दोहा (मा०) १३-११ प्र०

ध

धारी (मा०) ६ नि० पं०

न

नयन (मा०) १० नि०
निधि (मा०) ९ नि० पं०
निश्चल (मा०) २३ नि० पं०

प

पदपादाकुलक (मा०) १६ प्र० नि० पं० म०
*पदपादांक (मा०) नि० पं०
*पदपादांकुर (मा०) १३ नि० पं० म०
पद्धरि (मा०) १६ प्र० नि० पं० म०
पयार (व०) १४ प्र०
पंचचामर (व०) १६ प्र०
पंचचामर (मा०) २४ पं०
प्रणय (मा०) २१ नि० पं०
प्रदोष (मा०) १३ पं०
प्रमाणिका (मा०) १२ पं०
*प्रवीर (मा०) ३३ मु०
प्रियंवदा (व०) १२ प्र०
*पीयूषनिर्झर (मा०) २१ नि० पं० म०

ल

लक्ष्मी (मा०) १३ नि०
*लघिमा (मा०) १६ नि०
लघुत्रिपदी (व०) ६-६-८ प्र०
लीला (मा०) १२ नि०पं०म०
*लीलाधर (मा०) १५ नि०
*लीलाधिका (मा०) १३ पं०
*लीलावृत्त (मा०) १८ नि०

व

वसंतचामर (मा०) १८ पं०
वसंततिलका (व०) १४ प्र०
*वसंतमालती (मा०) १६ नि०
वंशस्थ (व०) १२ प्र०
विजात (मा०) १४ नि०पं०म०
*विजातक (मा०) १२ पं०
विधाता (मा०) २८ प्र०नि०म०
*विधाता-प्रपंच (मा०) ३६ न०
वित्रंगमाला (मा०) १९ नि०प्र०
*विनिमय (मा०) ३१ जा०
विमोहा (मा०) १० प्र०नि०पं०
वियोगिनी (व०) १०-११ प्र०
*विरहिणी (मा०) २३ प्र०
*विशुद्धगा (मा०) ३० नि०
*विपाण (मा०) ३४ दि०
विष्णुपद (मा०) २६ प्र०नि०पं०म०
विहंग (मा०) १६ प्र०नि०
वीर छन्द (मा०) ३१ प्र०नि०पं०म०

श

शक्तिपूजा (मा०) २४ नि०पं०म०
शरण (व०) सि०
*शरणागति (व०) दि०
शशिवदना (मा०) १० प्र०नि०पं०
*शारदा (व०) १४ दी०
शास्त्र (मा०) २० पं०
*शांता (मा०) २९ मि०भ०
शिखंडी (मा०) ११ नि०पं०
शिव (मा०) ११ प्र०नि०पं०
शृंगार (मा०) १६ प्र०नि०पं०म०
*शृंगारकल्प (मा०) १३ प्र०नि०पं०
*शृंगाराभास (मा०) ६ प्र०नि०पं०
श्येनिका (मा०) १७ नी०

स

सखि (मा०) १४ प्र०नि०पं०म०
समानसवैया (मा०) ३२ प्र०नि०पं०म०
सरसी (मा०) २७ प्र०नि०पं०म०
*साधिका (मा०) २१ नि०पं०
सार (मा०) २८ प्र०नि०पं०म०
सारस (मा०) २४ नि०पं०
सुखदा (मा०) २२ नि०पं०
सुगति (मा०) ७ प्र०नि०पं०म०
सुमेरु (मा०) १९ प्र०नि०पं०
सुलक्षण (मा०) १४ प्र०नि०पं०म०
*सुवर्णा (मा०) २८ न०सु०
सोरठा (मा०) ११-१३ प्र०
*संसार (मा०) ३० पं०
स्वच्छन्द छन्द (मा०) नि०पं०
*स्वर्णसरसी (मा०) ३२ नवी०

ह

हरिगीतिका (मा०) २८ प्र०नि०म०
*हरिगीतामृत (मा०) ३० नि०
हाकलि (मा०) १४ प्र०नि०पं०
हीर (मा०) २३ नि०पं०
हंसगति (मा०) २० प्र०नि०पं०

परिशिष्ट (२)

सहायक ग्रंथ

[जिनका उपयोग इस पुस्तक में हुआ है]

छंदोविषयक ग्रन्थ

आधुनिक हिन्दी काव्य में छंदयोजना : डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित ।

कविदर्पण (अज्ञात) : सं० एच० डी० वेलणकर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

छंदार्णव : भिखारीदास ग्रन्थावली, प्रथम भाग : सं० विश्वनाथ प्र० मिश्र

छन्दोऽनुशीलन (जयकीर्त्ति) जयदामन में संकलित ।

छन्दोऽनुशीलन (हेमचन्द्र) ,, ,,

छन्दोमंजरी (गंगादास)—चौखंबा संस्कृत सिरीज, वाराणसी

छंदःप्रभाकर : जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' जगन्नाथ प्रेस, विलासपुर

छंदःशास्त्र (पिंगलाचार्य) निर्णय सागर प्रेस, वम्वई ।

जयदामन : एच० डी० वेलणकर, हरितोष समिति, वम्वई

प्राकृतपैंगलम्, भाग ४ : सं० भोलाशंकर व्यास : प्राकृत ग्रन्थ परिषद्; वाराणसी

मात्रिक छन्दों का विकास : डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

वाणीभूषण (दामोदर मिश्र) निर्णय सागर प्रेस, वम्वई

वृत्तजातिसमुच्चय (विरहांक) : सं० एच० डी० वेलणकर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

वृत्तरत्नाकर (केदार भट्ट) जयदामन में संकलित

सूरसाहित्य का छन्दःशास्त्रीय अध्ययन : डॉ० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र', परिमल प्रकाशन, इलाहावाद

स्वयंभूच्छन्दः (स्वयंभू) सं० एच० डी० वेलणकर : रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर

हिन्दी साहित्य का छन्दोविवेचन : डॉ० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेंद्र' : बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना

अन्य ग्रन्थ

अ

अजातशत्रु	जयशंकर 'प्रसाद'
अणिमा	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
अतिमा	सुमित्रानंदन पंत
अनामिका	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
अपरा	,,
अभिज्ञानशकुन्तलम्	कालिदास
अभिषेकिता	सुमित्रानंदन पंत
अर्चना	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

आ

आधुनिक कवि	सुमित्रानंदन पंत
आराधना	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
आर्य संस्कृति के मूलाधार	बलदेव उपाध्याय
आँसू	जयशंकर 'प्रसाद'

उ

उत्तरा	सुमित्रानन्दन पन्त
उर्दू साहित्य का इतिहास	सरला गुप्ता

ऋ

ऋता	सुमित्रानन्दन पंत

ए

एक घूँट	जयशंकर 'प्रसाद'

क

करुणालय	जयशंकर 'प्रसाद'

कला और बूढ़ा चाँद	सुमित्रानन्दन पंत
कविता कलाप	सं० महावीर प्रसाद द्विवेदी
कविता-कौमुदी, भाग २	सं० रामनरेश त्रिपाठी
कवितावली	तुलसीदास
कवि निराला : एक अध्ययन	रामरतन भटनागर
कवि प्रसाद : एक अध्ययन	रामरतन भटनागर
कवि-भारती	सं० सुमित्रानंदन पंत आदि
कविरत्न मीर	रामनाथ 'सुमन'
कबीर-वचनावली	सं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
कादंबिनी	सं० कपिल और आनंद नारायण शर्मा
कानन-कुसुम	जयशंकर 'प्रसाद'
कामना	,,
कामायनी	,,
काव्यप्रकाश	मम्मट
क्रांतिकारी कवि निराला	बच्चन सिंह
किरण-वीणा	सुमित्रानंदन पंत
कीर्त्तिलता	विद्यापति
कुकुरमुत्ता	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

ख

खादी के फूल	सुमित्रानंदन पंत और हरिवंश राय 'बच्चन'

ग

गंधवीथी	सुमित्रानन्दन पन्त
ग्रन्थि	,,
ग्राम्या	,,
गीतगोविन्द	जयदेव
गीतगुंज	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
गीत पर्व	महादेवी वर्मा
गीत हंस	सुमित्रानन्दन पन्त
गीतावली	तुलसीदास

गीतिका	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
गुंजन	सुमित्रानन्दन पंत
गोरखबानी	गोरखनाथ : सं० पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

च

चंदवरदाई और उनका काव्य	विपिन बिहारी त्रिवेदी
चंद्रगुप्त	जयशंकर 'प्रसाद'
चंद्रावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
चित्राधार	जयशंकर 'प्रसाद'
चित्रांगदा	सुमित्रानन्दन पंत
चिदंबरा	,,

ज

जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर 'प्रसाद'
जानकी मंगल	तुलसीदास
ज्योत्स्ना	सुमित्रानन्दन पंत

झ

झरना	जयशंकर 'प्रसाद'

त

तारापथ	सुमित्रानन्दन पन्त
तुलसीदास	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

द

दीन ग्रन्थावली	सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
दीपशिखा	महादेवी वर्मा
दोहा कोश	राहुल सांकृत्यायन

ध

ध्रुव स्वामिनी	जयशंकर 'प्रसाद'

न

नए पत्ते	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
नवीन	गोपालसिंह 'नेपाली'

नवीन पद्य संग्रह	सं० भगवती प्रसाद वाजपेयी
निराला की साहित्य-साधना	रामविलास शर्मा
नीरजा	महादेवी वर्मा
नीहार	,,

प

पतझर	सुमित्रानन्दन पन्त
पत्रावली	मैथिलीशरण गुप्त
पद्माकर-पंचामृत	सं० विश्वनाथ प्र० मिश्र
पद्य-प्रसून	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
परिमल	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
पल्लव	सुमित्रानन्दन पन्त
पल्लविनी	,,
प्रसाद-संगीत	जयशंकर 'प्रसाद'
पारिजात	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
पार्वती	रामानन्द तिवारी
पाषाणी	जानकीवल्लभ शास्त्री
प्रियप्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
पुरुषोत्तम राम	सुमित्रानंदन पंत
पृथ्वीराज रासो	चंदवरदाई
प्रेम-पथिक	जयशंकर 'प्रसाद'
पौ फटने से पहले	सुमित्रानंदन पंत

ब

बिहारी-सतसई	बिहारी
बेला	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

भ

भस्मांकुर	नागार्जुन
भारतेन्दु ग्रन्थावली	सं० ब्रजरत्न दास

म

मधुज्वाल	सुमित्रानन्दन पन्त

विनयपत्रिका	तुलसीदास
विशाख	जयशंकर 'प्रसाद'
वीणा	सुमित्रानन्दन पन्त
वैदेही वनवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श

शकुन्तला	कालिदास
शिल्पी	सुमित्रानन्दन पन्त

स

सप्तपर्ण	महादेवी वर्मा
समाधिता	सुमित्रानन्दन पन्त
संचयिता	,,
संधिनी	महादेवी वर्मा
संयोगिता	सुमित्रानंदन पन्त
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त
सावित्री	गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र'
साहित्यदर्पण	विश्वनाथ
सांध्यकाकली	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
सांध्यगीत	महादेवी वर्मा
सूरसागर	सूरदास
सौवर्ण	सुमित्रानन्दन पन्त
स्कंदगुप्त	जयशंकर 'प्रसाद'
स्वर्णकिरण	सुमित्रानन्दन पन्त
स्वर्णधूलि	,,
स्वर्णिम रथचक्र	,,

ह

हम विषपायी जनम के	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
हरी बाँसुरी सुनहरी टेर	सुमित्रानन्दन पन्त
हिमालय	सं० महादेवी वर्मा
हिन्दी काव्य-धारा	राहुल सांकृत्यायन
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	हजारीप्रसाद द्विवेदी

बँगला

मेघनाद-वध — माइकेल मधुसूदन दत्त

संचयिता — रवीन्द्रनाथ ठाकुर

साहित्य प्रवेश (बँगला भाषार व्याकरण) — प्रसन्नचन्द्र विद्यारत्न

अंग्रेजी

Faerie Queen — Spenser

Golden Treasury — Palgrave

Paradise Lost — Milton

Rhetoric & Prosody — Radhika Nath Bose

Tempest — Shakespeare

The Love Song of J. Alfred Prufrock — T. S. Eliot

पत्रिका

सम्मेलन पत्रिका—

परिशिष्ट (३)

ग्रन्थकारों के सहित उन ग्रन्थों की सूची, जिनका अध्ययन नूतन प्रयोग के अन्वेषण के निमित्त किया गया है।

ग्रन्थकार	ग्रन्थ
अनूप शर्मा	सिद्धार्थ
आरसी प्रसाद सिंह	आरसी, संजीविनी
इलाचंद्र जोशी	विजनवती
उदयशंकर भट्ट	युगदीप, यथार्थ और कल्पना, मुझमें जो शेष है, विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य, कालिदास
केदार नाथ मिश्र 'प्रभात'	कैकेयी, ऋतंवरा, राष्ट्रपुरुष, प्रवीर, व्रतबद्ध, तप्तगृह, कालदहन, संवर्त्त,
केसरी	मराली, कदंब, आममहुआ
गुरुभक्तसिंह 'भक्त'	नूरजहाँ, विक्रमादित्य
गोपालशरण सिंह	सागरिका
गोपालसिंह 'नेपाली'	नवीन, पंछी, पंचमी, रागिणी, उमंग, हिमालय पुकार उठा
चंद्रप्रकाश सिंह	विजया
जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'	बलिपथ के गीत
जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'	अंतर्ध्वनि
जानकीवल्लभ शास्त्री	राधा, शिप्रा, गाथा, पाषाणी, मेघ-गीत, अवंतिका, संगम, रूप और अरूप
नगेन्द्र	वनबाला
नरेन्द्र शर्मा	मिट्टी और फूल, हंसमाला, पलाशवन, अग्निशस्य, प्रभातफेरी, द्रौपदी, रक्त-चंदन, सुवर्णा, प्रवासी के गीत

नीरज	दर्द दिया है, दो गीत
पुत्तूलाल शुक्ल 'चंद्राकर'	अनंग
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	क्वासि, हम विषपायी जनम के, रश्मिरेखा
भगवतीचरण वर्मा	मेरी कविताएँ, विस्मृति के फूल, एक दिन, मानव
माखनलाल चतुर्वेदी	वेणु लो गूँजे धरा, हिमतरंगिनी, माता, युगचरण, समर्पण, हिमकिरीटिनी
मुरलीधर श्रीवास्तव	गीतांजलि (अनुवाद)
मोहनलाल महतो 'वियोगी'	निर्माल्य, आर्यावर्त्त
रामकुमार वर्मा	अंजलि, रूपराशि, चंद्रकिरण, चित्र-रेखा, निशीथ, एकलव्य, आधुनिक कवि
रामचरित उपाध्याय	रामचरितचिन्तामणि, रामचन्द्रिका,
रामदयाल पांडेय	गणदेवता
रामधारी सिंह 'दिनकर'	हुंकार, रसवन्ती, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा, रश्मिलोक, धूपछाँह, बापू, द्वन्द्वगीत, नीम के पत्ते, नए सुभाषित, सीपी और शंख, मृतितिलक, सामधेनी, धूप और धुआँ, नीलकुसुम, इतिहास के आँसू, रेणुका, उर्वशी
रामनरेश त्रिपाठी	पथिक, मिलन
रामानन्द तिवारी	पार्वती
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	प्राथमिका, वर्षान्त के बादल
लाला भगवान 'दीन'	दीन-ग्रन्थावली
लक्ष्मीनारायण मिश्र	अंतर्जगत्
विश्वनाथ प्रसाद	मोती के दाने
शिवमंगल सिंह 'सुमन'	मिट्टी की बारात, विश्वास बढ़ता ही गया
श्यामनारायण पांडेय	हल्दीघाटी

सियारामशरण गुप्त	नकुल, गोपिका, उन्मुक्त, सुनन्दा, आर्द्रा, बापू, मौर्यविजय, मृण्मयी, अमृतपुत्र, दूर्वादल, विषाद
सुभद्राकुमारी चौहान	मुकुल
सोहनलाल द्विवेदी	युगाधार
हवलदार त्रिपाठी	शशि-दर्शन
हरिकृष्ण 'प्रेमी'	अनंत के पथ पर
हरिवंश राय 'बच्चन'	खादी के फूल, खैयाम की मधुशाला, मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशानिमंत्रण, एकांत संगीत, आकुल अंतर, सतरंगिनी, हलाहल, प्रणय-पत्रिका, त्रिभंगिमा, बुद्ध और नाच-घर, आरती और अंगारे, मिलन-यामिनी, बंगाल का काल, सोपान, प्रारंभिक रचनाएँ—२, सूत की माला, बहुत दिन बीते, धार के इधर उधर, दो चट्टानें

संपादित ग्रन्थ

अमृतलाल नागर	भगवतीचरण वर्मा
भगवती प्रसाद वाजपेयी	नवीन पद्य-संग्रह
महावीर प्रसाद द्विवेदी	कविता-कलाप
रामकुमार वर्मा	आधुनिक काव्य-संग्रह
रामनरेश त्रिपाठी	कविता-कौमुदी, भाग २
सुमित्रानन्दन पन्त आदि	कवि-भारती
हरिकृष्ण 'प्रेमी'	माखनलाल चतुर्वेदी

